जयशेखर सूरि कृत जैनकुमारसम्भव महाकाव्य का साहित्यिक अध्ययन

2002

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

निर्देशिका

डॉ० श्रीमती मंजुला जायसवाल

उपाचार्य संस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

शोधार्थी

श्याम बहादुर दीक्षित

संस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

मङ्गलाचरण

१. नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वती चैव ततो जयमुदीरयेत्।।

२. नमो भगवते तस्मै कृष्णायाद्भुतकर्मणे।
रूप-नाम-विभेदेन जगत् क्रीडति यो यतः।।

३. शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशम्।
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम्।।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यम्।
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम्।।

प्राक्कथन

भारतीय काव्य साहित्य अपने सूक्ष्म एवं गहन विचारों के लिए जगत प्रख्यात है। अनेक काव्यशास्त्रियों ने समय-समय पर अपने नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के सहारे इसे परिवर्तित एवं सुसज्जित किया है। जैन आचार्य महाकवि जयशेखरसूरि उन काव्य मर्मज्ञों में विशेष स्थान रखते है यद्यपि उन्होंने उन्नीस ग्रन्थों का प्रणयन किया है तथापि जैनकुमारसम्भव महाकाव्य की रचना से ही वे महाकवि की प्रतिष्ठापूर्ण पदवी से विभूषित हुए, क्योंकि महाकाव्य का निर्माण किसी भी कवि का चरम लक्ष्य होता है जो उसे महाकवि कहलाने का अधिकारी बनाता है। अतः इस महाकाव्य की काव्यशास्त्रीय समालोचना के उपरान्त विद्वानों ने इसे एक श्रेष्ठ महाकाव्य की श्रेणी में गणना की है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को नव अध्याय में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय 'जैनकुमारसम्भव महाकाव्य का महाकाव्यत्व' में काव्य का स्वरूप, काव्य वैशिष्ट्य, काव्य-भेद तथा जैनकुमारसम्भव के महाकाव्यत्व पर प्रकाश डाला गया है।

द्वितीय अध्याय "जैनकुमारसम्भवकार की जीवनवृत्त, कृतियाँ तथा जैनकाव्य साहित्य की तत्कालीन परिस्थितियाँ एवं प्रेरणाएं" के अंतर्गत महाकवि जयशेखर सूरि की जीवनवृत्त, रचनाएं तथा जैन-काव्य साहित्य के निर्माण की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक अवस्थाओं का सूक्ष्म विवेचन किया गया है तथा जैन काव्य साहित्य के निर्माण के मूल प्रेरणाओं के सम्बन्ध में उल्लेख किया गया है।

तृतीय अध्याय "जैनकुमारसम्भव की कथा का मूल, कथावस्तु तथा उस

पर प्रभाव" में इस महाकाव्य की रचना कहाँ और कैसे की गयी, इसमें वर्णित कथानक का मूल किन ग्रन्थों से ग्रहण किया गया तथा कथावस्तु का सर्गानुसार संक्षिप्त वर्णन तथा ग्रन्थ लेखन की प्रेरणा इत्यादि का संक्षिप्त वर्णन है।

चतुर्थ अध्याय "पात्रों का विवेचन" में इस महाकाव्य के नायक ऋषभदेव के चरित्र-चित्रण के साथ नायिका सुमंगला और सुनन्दा के अतिरिक्त अंगभूत नामक इन्द्र तथा अंगभूत नायिका सची के द्वारा इस महाकाव्य में किये गये योगदान का संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

पंचम अध्याय "जैनकुमारसम्भव में रस, छन्द, अलङ्कार, गुण एवं दोष" में मुख्य रूप से शृङ्गार तथा गौण रस के रूप में वात्सल्य, हास्य, भयानक एवं शान्त रस तथा इस महाकाव्य में प्रयुक्त सत्तरह प्रकार के छन्दों का विवेचन, माधुर्य एवं प्रसाद आदि गुणों के सम्पन्नता के साथ-साथ कतिपय दोषों का परिचय दिया गया है।

षष्ठम अध्याय "जैनकुमारसम्भव की कलापक्षीय समीक्षा" के अंतर्गत भाषा, भाव, कल्पना एवं परम्परा के आधार पर इस महाकाव्य की समीक्षात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है।

सप्तम अध्याय "जयशेखरसूरि कृत जैनकुमारसम्भव एवं महाकवि कालिदास कृत कुमार सम्भव का तुलनात्मक अध्ययन" के अंतर्गत कथावस्तु, भाषा-शैली, गुण, वृत्ति, रीति, भाव सौन्दर्य, प्रकृति निरूपण, रस, छन्द, अलङ्कार आदि की दृष्टि से दोनों महाकाव्यों का तुलनात्मक समीक्षा संक्षिप्त रूप से किया गया है।

अष्टम अध्याय "जैनकुमारसम्भव एक प्रेरणास्रोत" के अंतर्गत इस महाकाव्य का परवर्ती महाकाव्यों पर पड़े हुए प्रभाव का संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

नवम् अध्याय के अंतर्गत इस महाकाव्य में प्रयुक्त कतिपय सूक्तियों का उल्लेख करते हुए शोध-प्रबन्ध का उपसंहार किया गया है।

आभार

यह शोध-प्रबन्ध मेरे पूर्व पर्यवेक्षक परमपूज्य गुरुवर्य स्वर्गीय डॉ० रुद्रकान्त मिश्र (पूर्व उपाचार्य संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय) के स्मृति में प्रस्तुत है। जिनके कुशल निर्देशन कृपा व सज्जनता से यह शोध-प्रबन्ध अनुप्राणित हुआ है साथ ही मैं वर्तमान पर्यवेक्षक श्रद्धेय गुरुवर्य डॉ० श्रीमती मंजुला जायसवाल (उपाचार्य संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय) के प्रति हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने अपनी कृपा व स्नेह का पात्र मुझे समझकर इस शोध-प्रबन्ध के प्रस्तुतीकरण में मेरा सहयोग किया। इसी प्रसङ्ग में मैं श्रद्धेय गुरुवर्य डॉ० सुरेशचन्द्र पाण्डेय जी (पूर्व अध्यक्ष संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय) का भी हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने इस महाकाव्य के विषय में सर्वप्रथम मुझे अवगत कराकर इस पर शोधकार्य करने के लिए उत्प्रेरित किया और समय-समय पर प्रोत्साहित करते रहे। इसी परिप्रेक्ष्य में उन्हीं के शिष्य डॉ० श्री अशोक सिंह (प्राध्यापक पार्श्वनाथ विद्यापीठ, करौंदी, वाराणसी) के प्रति भी मैं अत्यन्त आभारी हूँ जिनके सहयोग से मुझे यह महाकाव्य उपलब्ध हो पाया। साथ ही मैं अपने समस्त गुरुजनों का भी हृदय से कृतज्ञ हूँ जिन्होंने अनेक सद्परामर्श प्रदान किया है तथा मैं अपने माता जी, पिता जी, चाचा जी, दादी माँ एवं बड़े भाई का भी हृदय से कृतज्ञ हूँ जिनका आशीर्वाद व स्नेह मेरे अवलम्ब रहे।

मुझे अपने मित्रों से सदा इस कार्य को सम्पन्न करने हेतु प्रेरणा और उत्साह प्राप्त होता रहा, जिसकी अभिलाषा मुझे सदैव ही रहेगी।

इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालय ग्रन्थालय इलाहाबाद, केन्द्रीय पुस्तकालय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी एवं पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध-संस्थान, वाराणसी के कर्मचारियों को भी अनेकशः धन्यवाद देता हूँ जिनके सहयोग से

अनेक ग्रन्थों का अवलोकन तथा उपयोग करने की सुविधा प्राप्त हुई।

गुण दोष तो सर्वत्र सम्भव है इस शोध-प्रबन्ध में भी अनेक दोष व कुछ गुण हो सकते हैं आशा है कि 'एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दो किरणेष्विवाङ्कः" के आदर्श का पालन करने वाले विद्वतगण मेरे उन दोषों के लिए क्षमा करेगें एवं अपने उचित मार्ग-दर्शन द्वारा इस पर और गहन चिंतन के लिए मुझे उत्प्रेरित करेंगे।

श्यामबहादुर दीक्षित

श्याम बहादुर दीक्षित

अध्यायीकरण

प्रथम अध्याय

जैनकुमारसम्भव महाकाव्य का महाकाव्यत्व

(अ) काव्य का स्वरूप तथा उसकी विशेषता–

काव्य क्या है? अथवा इसका स्वरूप क्या है? निश्चय ही यह अत्यन्त विवादास्पद एवं समस्या पूर्ण प्रश्न है। क्योंकि सर्वप्रथम किसने काव्य निर्माण किया? और कब किया? इसका समाधान असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। साधारणतः साहित्यशास्त्र समीक्षक 'वाल्मीकि' को 'आदि कवि'' और उनकी कृति 'रामायण' को 'आदि काव्य' स्वीकार करते हैं और उसे ही प्राप्त रचना के आधार पर सर्वप्रथम 'महाकाव्य' भी मानते है। इसके पश्चात् वेदव्यासकृत 'महाभारत' आता है, जो द्वितीय महाकाव्य है जिसके विषय में वह उक्ति प्रसिद्ध है– ''**यदि हास्ति तदन्यत्र पन्ने हास्ति न तत् क्वचित्**''।

'मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है[१] और सर्वाधिक चेतन एवं अनुकरणशील भी'। अब तक किये गये साहित्यिक सर्वेक्षणों के आधार पर यह निष्कर्ष सहज ही प्राप्त होता है कि 'प्रकृति मनुष्य की सहचरी है' और उसकी सर्वाधिक विशेषता है– परिवर्तनशीलता।

'परिवर्तन विकास का मूल है' और इसी लक्ष्य (विकास) की प्राप्ति हेतु मनुष्य सतत् प्रयत्नशील रहा है। यदि यह कहा जा सकता है कि वह अपनी सहचरी के प्रत्येक परिवर्तन पर दृष्टिपात करने में समर्थ नहीं है, तो इतना निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि प्रकृति का प्रधान परिवर्तन उसकी दृष्टि से ओझल नहीं रहा। किन्तु सर्वप्रथम वह अपने मन की स्वाभाविक प्रवृत्तियों के कारण विकल था अर्थात् ''मानव मन अपने आप को व्यक्त करने के लिए आकुल रहता है, वह अपने को अनेक हृदयों में अनुभूत

कराना चाहता है" अपनी इस विकलता को दूर करने के लिए उसने क्या नहीं किया? कभी जाह्नवी के तट पर तपरत हो, अपने जीवन का विसर्जन, तो कभी देवी मन्दिर में जाकर अपनी जिह्वा का उच्छेदन। कभी पाया- 'नवरत्नों की शोभा का सम्मान' तो कभी देश- निष्कासन का अपमान।

(काव्य) इतिहास साक्षी है, अपनी इस घनघोर तपस्या में उसने घोर कष्ट उठाया। किन्तु संसार की कोई भी प्रबलतम् बाधा उसे (उसके) पथ से विरत न कर सकी। वह दृढ़ था और अपने उद्देश्य की प्राप्ति हेतु स्थिर मना। भला स्थिर मन वाले दृढ़ व्यक्ति और नीचे की ओर मुख किये हुए जल प्रपात को रोकने में कोई समर्थ है, नहीं- कदापि नहीं।[२]

फिर क्या था, बस उसकी दृढ़ता के समक्ष प्रसन्न होकर 'प्रकृति देवी', ने उसे आजस्त्र वरदान (प्रसाद) दिया। वह प्रसाद और कुछ नहीं- वाणी था। फल प्राप्त होते ही उसका तपोजन्य कष्ट दूर हो गया, उसमें नवीनता आ गई और अपने कर्म के प्रति नया उत्साह[३]। वह धीरे-धीरे अपने 'काव्य' कर्म में प्रवृत्त हुआ और फिर अन्ततः (अपने जीवन काल में ही) उसने किसी सीमा तक उस (काव्य) की सम्पूर्ण सीमाएं तोड़ दी। दूसरे शब्दों में वह हद से भी आगे निकल गया।

उपर्युक्त कार्य सिद्धि के लिए उसके पास- 'सार्थवती वाणी' नामक अस्त्र था और उसने अपने इस अस्त्र का खूब प्रयोग किया।

शायद वह 'अभिव्यक्ति' स्वतंत्रता का सशक्त माध्यम है और 'त्याग प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन'[४] जान गया था।

इसी बोध के फलस्वरूप उसे अत्यधिक आनन्दानुभूति हुई और इतनी हुई कि उसने निःसंकोच अपना सर्वस्व निछावर कर दिया। उसके पास स्वयं के अतिरिक्त कुछ भी शेष न था सो उसने स्वयं को भी उसे समर्पित कर दिया, क्योंकि वह उसकी सहाचरी थी।

किन्तु उसका यह समर्पण अपूर्व, अलौकिक और निःस्वार्थ था। उसके बदले हुए स्वरूप को देखकर किसी ने उसे पागल, किसी ने प्रेमी और किसी ने निरंकुश (निरङ्कुशा कवयः[५]) कहा। अस्तु! कहने का आशय मात्र इतना है कि एक ने दूसरे में दृढ़ता और दूसरे ने 'पल-पल' परिवर्तित वेश (स्वरूप) देखा। दोनों ने एक-दूसरे को अपने अनुरूप पाया और इसी अनुरूपता वश दोनों में अन्योऽन्य सम्बन्ध स्थापित हो गया अर्थात् वे एक दूसरे के पूरक बन गये। काव्य की पूर्णरूपेण प्रकाशित करने के पूर्व उसके कर्ता 'कवि' की विवेचना प्रत्येक दृष्टि से उचित प्रतीत होता है, क्योंकि कर्ता के अभाव में क्रिया भ्रामक न सही, उतनी प्रभावशाली नहीं होती, जितनी कि उससे अपेक्षा होती है।

कवि-

'कवते श्लोकान् ग्रथते, वर्णयति वा कवि[६]' श्लोक रचना या वर्णन करने वाले को कवि कहते हैं। ऐसी व्युत्पत्ति 'अमरकोश' के टीकाकार भानुजीक्षित ने की है। 'शब्दकल्पद्रुम' में 'कुशब्दे' धातु से 'अचइ' सूत्र द्वारा 'इ' प्रत्यय करने पर कवि की उत्पत्ति सिद्ध की गयी है। विद्याधर ने एकावलि में कवयति- इति कवि, तस्य कर्म काव्यम्' ऐसी व्युत्पत्ति की है। 'ध्वन्यालोक'

की व्याख्या में 'कवनीयं काव्यम्' व्युत्पत्ति की गयी है। इस प्रकार वर्णन करने वाले या जानने वाले को कवि तथा उसके कर्म या कृति को काव्य कहते है। यद्यपि 'कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः' के द्वारा कवि का (अर्थ) प्रयोग सर्वज्ञ परमेश्वर के लिए हुआ है, 'तया तेने ब्रह्मदृवा च आदि कवये' के अनुसार 'आदि कवि' शब्द का अर्थ ब्रह्मा के अर्थ में मिलता है। "शुक्रदैत्यगुरु काव्य उशना भार्गवः कविः[७]" आदि कोश के अनुसार 'कवि' शब्द दैत्यगुरु शुक्राचार्य अर्थ में और "विद्वान विब्चिदोषज्ञः ------- पण्डितः कवि" पण्डित कवि अर्थ में उपलब्ध होता है तथापि आदि कवि वाल्मीकि, व्यास के लिए भी 'कवि' शब्द का प्रयोग मिलता है। इसी से महर्षि वाल्मीकि प्रणीत 'रामायण' की प्रत्येक सर्ग की पुष्पिका में 'ईष्यार्थे आदि काव्ये' सर्वत्र लिखा हुआ प्राप्त होता है[७]। महर्षि व्यास कृत 'महाभारत' की गणना भी काव्य में की गई है। इन्होंने स्वयं इसका प्रतिपादन किया है– "कृतं मयेदं भगवन् काव्यं परम पूजितम्" तथा साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ ने भी "अस्मिन्नार्षे पुनः सर्वाभन्त्याख्यान संज्ञका" पुनः इस कारिका की व्याख्या में "अस्मिन् महाकाव्ये यथा महाभारतम्" कहते हुए महाभारत को स्पष्ट रूप में महाकाव्य स्वीकार किया है[८]।

पाश्चात्य साहित्यकारों ने 'कवि' के सम्बन्ध में अधिक न लिखकर काव्य के सम्बन्ध में ही अपने-अपने विचार व्यक्त किये हैं तथापि कवि के सम्बन्ध में कुछ प्रमुख विद्वानों के मत उद्धृत है–

१. अरस्तु के अनुसार–

'चित्रकार अथवा अन्य कलाकार की तरह कवि अनुकर्ता है[९]।

२. आचार्य होरेस के अनुसार–

कवि कहलाने का अधिकारी वही व्यक्ति हो सकता है जो दिव्य प्रतिभा तथा अन्तदृष्टि से सम्पन्न हो और विदग्ध वाणी के प्रयोग में कुशल हो।[१०]

पाश्चात्य काव्यशास्त्रियों की दृष्टि में काव्य–

जैसाकि पूर्वोक्त उल्लिखित है कि पाश्चात्य काव्यशास्त्रियों ने 'काव्य' का विस्तृत विवेचन किया है तथापि यहाँ कुछ प्रमुख काव्यशास्त्रियों के मतों का उल्लेख करना अभीष्ट है।

१. अरस्तु के अनुसार–

काव्य भाषा के माध्यम से प्रकृति का अनुकरण है[११] इस प्रकार अरस्तु ने अपने गुरु प्लेटो के मत "काव्य अनुकरण का भी अनुकरण है अतः त्याज्य है" का खण्डन करते हुए उसे 'आदर्श जीवन का चित्रण' मानकर अपना मत व्यक्त किया है।

२. होरेस के अनुसार–

अर्थात् होरेस ने कवि और चित्रकार को समान रूप में स्वीकार किया है।[१२]

३. शेक्सपीयर के अनुसार–

शेक्सपीयर ने कल्पनातत्व को प्रधानता प्रदान करते हुए कहा है कि कवि इसी के द्वारा लौकिक और पारलौकिक सभी दृष्यों को अपनी लेखनी द्वारा मधुर झंकार प्रदान करती है।[१३]

इसके विपरीत प्रकृति के कवि वड्र्सवर्थ ने काव्य में कल्पना के स्थान पर भाव को महत्त्व देते हुए काव्य की परिभाषा इस प्रकार दी है। "कविता प्रबल भावों का सहज उच्छलन है, जिसका स्रोत शान्ति के समय में स्मृत मनोवेगों से फूटता है।"[१४]

महाकवि मिल्टन ने काव्य के सम्बन्ध में अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है–

"कविता सरल, प्रत्यक्षमूलक तथा रागात्मक होती है"।[१५]

प्रसिद्ध कवि कालरिज के अनुसार–

"कविता सर्वोत्तम शब्दों का सर्वोत्तम क्रम है।[१६]

मैथ्यू अनाल्ड के अनुसार–

Poetry at bottom is criticism of life [१७]

"कविता जीवन की आलोचना है"।

उपर्युक्त पाश्चात्य साहित्य शास्त्रियों द्वारा काव्य विषयक मतों के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि उन्होंने कल्पना को काव्य का प्रमुख तत्व स्वीकार

किया है। किसी-किसी ने काव्य को दार्शनिक और किसी ने संगीतमय विचार कहा है। अकेले महाकवि वड्र्सवर्थ ने काव्य में भावों को प्रमुखता से स्वीकार करते हुए उसके स्वरूप का यथार्थप्राय प्रकाशन किया है।

जैन कवियों का काव्य-विषयक मान्यता–

सामान्य जनता के हृदय में दर्शन एवं धर्म के दुरूह तथ्यों को पहुँचाने के लिए जैन धर्म प्रचारक बहुत पुराने समय से कविता का सहारा लेते आये है और आज भी ले रहे है। जैन दार्शनिकों का काव्य कला की ओर आकृष्ट होने का यही रहस्य है।

जैनाचार्यों ने काव्य के प्रमुख तत्त्वों (रस, छन्द और अलंकार आदि) की तरह ही अपने-अपने ग्रन्थों में उसके स्वरूप का भी प्रतिपादन किया है।

जैनाचार्यो में हेमचन्द्र का प्रमुख स्थान है उन्होंने काव्य की परिभाषा इस प्रकार की है–

"अदोषौ सगुणौ सालङ्कारों च शब्दार्थो काव्यम्[१८]" और इस मूल की वृत्ति करते हुए उन्होंने लिखा है–

''चकारो निरलंङ्कारयोरपिशब्दार्थयोः क्वचित्काव्यत्वख्यापनार्थः''।

आचार्य हेमचन्द्र के पश्चात् दूसरे जैनाचार्य वाग्भट है। उन्होंने काव्य की परिभाषा–

"शब्दार्थौ निर्दोषो सगुणौ प्रायः सालङ्कारौ च काव्यम्" इस प्रकार करके इस सूत्र की वृत्ति में–

"प्रायः सालङ्कारविति निरलङ्कारयोरपि शब्दार्थयोः क्वचित्काव्यत्वख्यापनार्थम्" लिखा है।[१९]

जैन कवियों ने अपने महाकाव्यों में भी काव्य सम्बन्धी विचारधाराओं को व्यक्त किया है।

'धर्मशर्माभ्युदय' महाकाव्य के रचयिता हरिचन्द्र सूरि की काव्य परिभाषा इस प्रकार है–

> हृद्यार्थवन्ध्या पदवन्धुराऽपि वाणी बुधानां नमनोधिनेति।
> न रोचते लोचन वल्लभाऽपि स्नुहीक्षरत्क्षीर सरिन्नरेभ्यः।।
> जयन्ति ते केऽपि महाकवीनां स्वर्गप्रदेशाइव वाग्विलासाः।
> पीयूसनिष्यन्दिषु येषु हर्षं केषां न धन्ते सुरसार्थ लीलाम्।।[२०]

जिनपाल उपाध्याय ने अपने 'सनत्कुमार चरित' में भानुमति की कन्याओं का वर्णन करते हुए काव्य के अनिवार्य तत्वों पर प्रकाश डाला है। उनके अनुसार–

> जात्याजाम्बूनदालं कृतिप्रोज्जवला–
> श्चक्रिरेऽङ्गे समस्तेऽपि ता कन्यकाः।
> सद्रसाः दोषरिक्ता सुशब्दाश्रियः
> सत्कवेः काव्यवाधो यथा सद्गुणा।।[२१]

अभयकुमार चरितकार तिलकचन्द्र उपाध्याय ने काव्य की परिभाषा इस प्रकार की है–

> ''महाकवे काव्य कृतौ यथा रसौ
> जल्पे यथा तार्किक चक्रचक्रिणः।
> तथा क्वचिद्देशश्राम मनोऽस्य भूरुहे
> काव्ये प्रसन्ने सरसे कर्वेयथा''।।[२२]

जिन प्रभु सूरि ने भी अपने 'श्रेणिक चरित' में अनेक स्थलों पर काव्य के स्वरूप को व्यक्त किया है उनके अनुसार–

> पक्वदाडिमवीजानि राजादनफलानि च।
> रसाढ्याः मृदुमृद्विकाः काव्यमाला इवोज्जवलाः।।
> व्यन्जनानि रसादयानि विनिर्माय प्रभूतशः।
> केऽपि संचस्करुः क्वाऽपि काव्यानि कवयो यथा।।[२३]

> अभूतस्य प्रिया रम्यपदालङ्कार धारिणी।
> धरिणी नाम हृद्येव सुकवैः काव्य पद्धतिः।।
> मनोरम पदन्यासा सदङ्गरुचिरा सदा।
> नन्याद गीर्विशदश्लोका जिनमूर्तिरिवालमला।।[२४]

यही काव्य का स्वरूप है। हम्मीर महाकाव्य' के रचयिता नयचन्द्र सूरि की काव्य परिभाषा है–

> कविता वनितागीति-प्रायो नादो रसप्रदाः।

उद्गिरन्ति सदोरसोद्रेकं गृह्यमाणाः पुरः-पुरः।।[२५]

इस प्रकार प्रायः प्रत्येक जैन काव्य शास्त्री ने काव्य में रस की अनिवार्यता को स्वीकार किया है।

प्राचीन भारतीय ग्रन्थों की काव्य-सम्बन्धी मान्यताएं-

वेद ज्ञान का अनन्त भण्डार है तथा वह धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, दार्शनिक एवं साहित्यिक क्रिया कलापों का सार-संग्रह है। काव्य के सम्बन्ध में भी हमें सर्वाधिक प्राचीन सूचना वेद (ऋग्वेद) में प्राप्त होती है जहाँ 'उषा' सम्बन्धित एक ऋचा में बार-बार उपमाओं की योजना हुई है। एक अन्य मन्त्र में वहाँ अतिशयोक्ति का सुन्दर चित्रण किया गया है। इसी प्रकार उपनिषद् ग्रन्थों में भी 'रूपशतिशयोक्ति' का वर्णन देखने योग्य है। यास्क की निरुक्त में 'भूतोपमा', 'सिद्धोपमा', लुप्तोपमा तथा रूपक आदि के विषय में कुछ मौलिक बातें कही गयी है।

यास्क के पूर्व 'भागुरि' नामक कवि का उल्लेख है, जिसे सोमेश्वर ने अपने 'साहित्य द्रुम' ग्रन्थ के संख्यालङ्कार प्रकरण में उद्धृत किया है।

अभिनव गुप्त ने भी ध्वन्यालोक[२६] में भागुरि का एक रस विषयक मन्तव्य दिया है। वैयाकरण पाणिनि ने अष्टाध्यायी[२७] में उपमा के उपमित उपमान एवं सामान्य आदि धर्मों का उल्लेख किया है, जिससे यह प्रतीत होता है कि 'अष्टाध्यायी से विस्तृत संस्कृत के लौकिक पक्ष का उदय हुआ है। आचार्य राजशेखर ने काव्य की उत्पत्ति का सम्बन्ध नटराज शंकर से

योजित किया है। शारदातनय के 'भाव प्रकाशन' ग्रन्थ में नाट्यशास्त्र पर रचे गये भगवान शंकर के 'योगमाला' नामक ग्रन्थ का उल्लेख करते हुए यह बताया गया है कि 'योगमाला संहिता' में भगवान शंकर ने विवस्वान को ताण्डव, लास्य, नृत्य और नृत्त का उपदेश दिया था। किन्तु राजशेखर का कहना है कि शंकर ने सर्वप्रथम ब्रह्मा को उपदेश दिया था और ब्रह्मा ने अपने अट्ठारह शिष्यों को।

यद्यपि आज उक्त ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है तथापि वे अति प्राचीन है और इसे पुष्ट प्रमाणों द्वारा विश्वस्त रूप में प्रमाणित किया गया हैं[२८], जैसे- सूक्ति-ग्रन्थ में पाणिनि की स्तुति प्रसंग में राजशेखर द्वारा विरचित 'जाम्बवती जय' नामक काव्य का स्पष्ट उल्लेख है–

नमः पाणिनये तस्मै यस्मादाविरभूदिह।
आदौ व्याकरणं, काव्यमनु जाम्बवती जयम् ।।[२९]

और पुनः 'सदुक्ति कर्णामृते' कवि विशेष की प्रशंसा पर आधारित एक पद्य है, जहाँ कुछ कवियों के साथ ही पाणिनि की स्पष्ट चर्चा की गई है–

सुबन्धौ भक्तिनः क इह रघुकारे न रमते
धृतिर्दाक्षी पुत्रे हरति हरिश्चन्दोऽपिहृदयम्।
विशुद्धोक्तः शूरः प्रकृतिमधुरा भारवि गिरः
स्तयाप्यन्तर्मोदं कमपि भवभूतिर्वितनुते।।

दाक्षी पुत्र कोई और नहीं व्याकरणाचार्य पाणिनि ही है, जैसा कि भाष्यकार पतंजलि ने कहा है– 'सर्वे सर्व पदादेशः दाक्षीपुत्रस्य पाणिने।[३०]'

इस प्रकार हम देखते है कि उपर्युक्त प्राचीन ग्रन्थों में यद्यपि सुव्यवस्थित काव्य लक्षणों का अभाव है तथापि काव्य निर्माण सम्बन्धी प्रमुख तत्व प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं, जो किसी भी सामान्य जन को काव्य निर्माण के प्रति प्रेरित करने में समर्थ हैं और इनके अध्ययन के अभाव में काव्य न केवल अधूरा रहेगा बल्कि उपहास का पात्र बन कर काल कवलित भी हो जायेगा।

वेद पुराणों के बाद काव्य का सर्वाधिक प्राचीन लक्षण हमें आचार्य भरत के 'नाट्यशास्त्र' में प्राप्त होता है। यद्यपि उनका यह काव्य-लक्षण, काव्य के भेद 'दृष्यकाव्य' के सन्दर्भ में निर्दिष्ट है तथापि यह काव्य-स्वरूप को प्रकाशित करने में पूर्ण समर्थ है। आचार्य भरत का काव्य-लक्षण इस प्रकार है–

> मृदुललित पदाद्यं गुढशब्दार्थहीनं।
> जनपदसुखवोध्यं युक्तिमन्नृत्तयोग्यम्।।
> बहुकृत रसमार्गं सन्धि-संधान युक्तं।
> भवति जगति योग्यं नाटकं प्रेक्षकाणाम्।।[३१]

तदुपरान्त अग्निपुराण में काव्य का सर्वप्रथम लक्षण इस प्रकार दिया गया है–

संक्षेपाद् वाक्यमिष्टार्थवच्छिना पदावली।

काव्यं स्फुरदंलङ्कारं गुणवद् दोषवर्जितम् ।।[३२]

आचार्य वामन ने काव्य लक्षण के सम्बन्ध में इस प्रकार अपना मत व्यक्त किया है–

काव्यशब्दोदयं गुणलङ्कारसंस्कृतयोः शब्दार्थयोवर्तते[३३]

आचार्य भामह प्रदत्त काव्य परिभाषा–

शब्दार्थौ सहितौ काव्यं गद्यं-पद्यं च द्विधा[३४]

आचार्य रुद्रट की काव्य परिभाषा इस प्रकार है–

शब्दार्थौ काव्यम्।[३५]

आचार्य दण्डी ने काव्य-स्वरूप को इस प्रकार व्यक्त किया है–

शरीर तावदिष्टार्थ-व्यवच्छिन्ना पदावली।[३६]

आचार्य कुन्तक ने रस को काव्य की आत्मा स्वीकार करते हुए काव्य का लक्षण बताते है–

शब्दार्थौ सहितौ वक्रकवि व्यापारशालिनी।

वन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणी।।[३७]

आचार्य मम्मट का काव्य लक्षण न केवल अन्य काव्यशास्त्रियों के काव्य लक्षणों से (पर्याप्त) भिन्न है, वरन् अपनी मौलिकता एवं स्पष्टता के कारण सर्वाधिक लोकप्रिय भी है। उनका काव्य लक्षण इस प्रकार है–

"तददोषौ शब्दार्थो सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि"।[३८]

साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ के काव्य लक्षण की भी विद्वानों ने प्रशंसा की है, उनका काव्य लक्षण है-

वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।[३९]

और पण्डितराज जगन्नाथ के काव्य-लक्षण को अत्यधिक आदरपूर्वक स्वीकार किया जाता है जो इस प्रकार है-

"रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्"।[४०]

इस प्रकार और भी काव्यशास्त्रियों ने काव्य-स्वरूप के सम्बन्ध में अपने-अपने विचार व्यक्त किये है। परन्तु उपर्युक्त इन तीनों (आचार्य मम्मट, विश्वनाथ और पण्डितराज जगन्नाथ) के अतिरिक्त इस समय किसी भी आचार्य की काव्य परिभाषा को उतना महत्त्व नहीं मिला है और इस कारण वे लोकप्रिय नहीं हुए।

आचार्य मम्मट के काव्य लक्षण की विशेषता-

आचार्य मम्मट ने सर्वप्रथम काव्य को शब्दार्थौ युगल कहा है और फिर उसे दोषों से रहित, गुणों से युक्त, साधारणतः अलङ्कार सहित, किन्तु कही-कही अलङ्कार रहित होना भी बताया है। इस प्रकार आचार्य मम्मट ने काव्य के प्रमुख तत्त्वों का समावेश अपने काव्य लक्षण में किया है। मेरे विचार में यह काव्य का सर्वोत्कृष्ट लक्षण है क्योंकि इसमें काव्य के समस्त तत्त्वों का समावेश है।

किन्तु आचार्य विश्वनाथ और पण्डितराज जगन्नाथ ने मम्मट के इस (काव्य लक्षण विषयक) मत की कटु आलोचना की है।

विश्वनाथ कृत आलोचना-

आचार्य मम्मट द्वारा काव्य को 'अनलङ्कृती' और इसके उदाहरण स्वरूप यः कौमारहरः --------- चेतः समुत्कण्ठते।। प्रस्तुत किये जाने की आचार्य विश्वनाथ ने कटु आलोचना की है। उन्होंने इस श्लोक में विभावना 'विभावना तु विना हेतुं कार्योत्पत्तिरुच्यते' और विशेषोक्ति 'सति हेतौ फलाभावो विशेषोक्तिस्तथा द्विधा' अर्थात् जहाँ बिना कारण के कार्य का वर्णन किया जाये वहाँ 'विभावना' और इसके विपरीत जहाँ कारण होने पर भी कार्य की उत्पत्ति न हो वहाँ 'विशेषोक्ति' अलङ्कार इन्हें निकालने का प्रयास किया है परन्तु उनकी यह धारणा युक्ति संगत नहीं है क्योंकि ये दोनों अलङ्कार भावमुखेन नहीं, अभावमुखेन निकलते है।[४१]

अदोषौ पद की आलोचना-

आचार्य विश्वनाथ के मत में दोष-रहित काव्य संसार में हो ही नहीं सकता। यदि कहीं मिल भी गया, तो बहुत कम मिलेगा। जबकि वस्तुस्थिति यह है कि स्वयं साहित्यदर्पणकार ने साधारण दोषों के रहते हुए भी काव्य में काव्यत्व स्वीकार किया है-

"कीटानुविद्दरत्नादि साधारण्येन काव्यता।
दुष्टेष्वपि मता यत्र रसाद्यनुगमः स्फुटः।।[४२]"

अर्थात् जहाँ कीडों आदि से खाया हुआ प्रवाल आदि रत्न, रत्न ही कहलाते है, उसी प्रकार जिस काव्य में रसादि की अनुभूति स्पष्ट रूप में होती है, वहाँ दोष के होते हुए भी काव्यत्व की हानि नहीं होती।

कोई भी दोष स्वरूपतः दोष नहीं होता जब तक कि वह रसानुभूति में बाधक नहीं।

इस प्रकार आचार्य मम्मट के 'अदोषौ' पद की आलोचना करके आचार्य विश्वनाथ ने स्वयं अपनी ही आलोचना की है अर्थात् उनका यह मत भी निराधार है।

सगुणौ पद की आलोचना–

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार गुण रस के धर्म है। वे शब्द या अर्थ के धर्म नहीं है। इसलिए शब्द या अर्थ में नहीं रह सकते है। ऐसी दशा में रस ही सगुण कहा जा सकता है, शब्द या अर्थ को सगुण नहीं कहा जा सकता है। इसलिए काव्य प्रकाशकार ने जो 'सगुणौ पद को शब्दार्थो के विशेषण रूप में प्रयुक्त किया है, वह उचित नहीं है।[४३]

मम्मटाचार्य भी यह मानते हैं कि गुण रस के धर्म हैं। फिर भी गौण रूप से शब्द और अर्थ के साथ भी उनका सम्बन्ध हो सकता है। काव्यप्रकाश के अष्टम उल्लास में– "गुणवृत्त्या पुनस्तेषां वृत्तिः शब्दार्थयोमता" लिखकर उन्होंने गौणी वृत्ति से शब्द और अर्थ के साथ भी गुणों के सम्बन्ध का प्रतिपादन किया है और उसी दृष्टि से यहाँ शब्दार्थो के विशेषण रूप

में 'सगुणौ' पद का प्रयोग किया है।

इस प्रकार विश्वनाथ द्वारा की गयी उपर्युक्त आलोचना न केवल तथ्यहीन है, बल्कि मम्मट के महत्त्व को कम करने में भी असफल सिद्ध हुई है–

रसगंगाधर कृत आलोचना–

काव्य प्रकाश के इस लक्षण की रसगंगाधरकार पण्डितराज जगन्नाथ ने भी आलोचना की है किन्तु उनका दृष्टिकोण विश्वनाथ से भिन्न है। उन्होंने केवल शब्दार्थो पर आपत्ति उठाई है। उनका मत है कि काव्यत्व शब्द और अर्थ की समष्टि में न रहकर केवल शब्द में ही रहता है उन्होंने लिखा है–

"यत्तु प्राञ्चः (काव्यप्रकाशकारादयः) ----- शब्दार्थो काव्यमित्याहुः, तत्र विचार्यते -------- अपि च काव्य पद प्रवृत्ति निमित्तं शब्दार्थयोर्व्यासक्तं (व्यसण्यवृत्ति) प्रत्येक प्रयाप्तं वा? नाथः एको न द्वौ इति व्यवहारस्टोव शलोक वाक्यं न काव्यमिति व्यवहारस्थापते। न द्वितीयः एकस्मिन् पद्ये काव्य द्वयव्यवहारापत्तेः।[४४]

तस्माद्वेदशाऽत्रपुराणलक्षणेस्व काव्य लक्षणस्यापि शब्द निष्ठतेवोचिता[४५]।।

अर्थात् जो काव्य प्रकाशकार आदि प्राचीन आचार्य शब्द और अर्थ दोनों को काव्य कहते हैं, उस दशा में वह काव्य न रहकर 'शलोक काव्य' रह जायेगा। वे केवल शब्द को काव्य मानते है। इनका काव्य लक्षण पहले उल्लिखित किया जा चुका है।[४६]
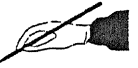
इस प्रकार समस्त काव्य लक्षणों के आलोक में जहाँ पाश्चात्य काव्य शास्त्रियो ने कल्पना, सौन्दर्य और दर्शन को काव्य का प्रमुख तत्त्व स्वीकार करते हुए उसे अलौकिक आनन्द का प्रमुख साधन बताया है, वही जैनाचार्यो ने काव्य को धर्म और दर्शन के दुरूह सिद्धान्तों को सामान्य जनता तक पहुँचाने के लिए माध्यम बनाया है। जैनाचार्यों ने संस्कृत काव्याचार्यो के मतों का अनुकरण करके अपने काव्य लक्षण को प्रस्तुत किया है और संस्कृत काव्याचार्यो की तरह ही 'रस' को उसकी आत्मा स्वीकार किया है।

संस्कृत काव्य के अति प्राचीन मनीषियों ने धर्मानुप्राणित सत्य की प्रतिष्ठा हेतु काव्य के उद्भव को स्वीकार किया है। वहीं उनसे अर्वाचीन काव्यशास्त्रियों ने काव्य के "शब्दार्थौ" मानकर उसमें सत्य की प्राण-प्रतिष्ठा हेतु प्रयास किया है, और ब्रह्मानन्द सहोदर 'रस' को काव्य की आत्मा स्वीकार किया है।

इस प्रकार काव्य उत्पत्ति सम्बन्धी सिद्धान्तों का सर्व सामान्य उल्लेख न वेदों, न पुराणों और न ही उपनिषदों में प्राप्त होता है। वहाँ सङ्केत मात्र अवश्य दिये गये है, जो काव्यशास्त्रियों के लिए प्रकाश रूप है। क्योंकि आज भी उन्हीं के खण्डन-मण्डन द्वारा काव्य विषयक नये-नये विचारों का उदय हो रहा है।

काव्य वैशिष्ट्य-

यह कहावत है-

'विद्वान कदाचित ही एक मत होते है'। दूसरे शब्दों में हम इसे इस प्रकार कह सकते है।

'नैको मुनिर्यस्य मतं न भिन्नम्'।

अर्थात् एक भी मुनि ऐसा नहीं है, जिसका मत भिन्न नहीं है। किन्तु जब काव्य वैशिष्ट्य (महत्त्व) के सन्दर्भ में इस सूक्ति की व्याख्या करते हो, तो यह सूक्ति असहाय दिखाई पड़ती है अर्थात् इस सूक्ति का प्रभाव लोप हो जाता है। क्योंकि एक भी विद्वान, मुनि दिखाई नहीं देता, जिसने काव्य वैशिष्ट्य के प्रतिपादन में सन्देह किया हो। अपितु प्रत्येक ने उसके महत्त्व के प्रति अपना दृढ़ समर्थन किया है। यह महत्त्वपूर्ण है और इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण यह तथ्य है कि पाश्चात्य जगत के साथ आचार्य एवं अरस्तु के गुरु प्लेटो ने भ्रमवश (दृढ़ता पूर्वक नहीं क्योंकि बाद में इन्होंने इसे सुधार लिया) काव्य के एकांगी एवं असुन्दर पक्ष को काव्य का उद्देश्य मानकर अपने देश वासियों से इसे त्यागने का जो सन्देश दिया था[४७]। वह स्थापित होने के पूर्व ही उन्हीं के शिष्य अरस्तु द्वारा खण्डित होकर हवाओं में विलीन हो गया। भला हो अरस्तु का, जिसने काव्य को 'जीवन का आदर्श चित्रण' कहकर, उसके वैशिष्ट्य का प्रतिपादन कर पाश्चात्य जगत् के माथे पर कलंक का टीका लगने से पूर्व ही उसे मिटा दिया। वरन् कलंक का जो टीका लगता, उससे न केवल काव्य जगत, अपितु सम्पूर्ण समाज निश्चित ही दयनीय अवस्था को प्राप्त होता, क्योंकि प्लेटो काव्यशास्त्र का ही नहीं, ज्ञान की अनेकानेक शाखाओं का अधिष्ठाता भी थे।

गुरु पराजित हुआ, ज्ञान के क्षेत्र में और वह भी अपने ही शिष्य से कितनी विचित्र स्थिति है, कितना विचित्र भाव है, प्रश्न उभरता है आखिर क्यों? तो इसका सटीक उत्तर है– 'गुरु द्वारा काव्य महत्त्व की अस्वीकृति'।

महाकवि 'शेली' ने अपने काव्य विषय प्रबन्ध में काव्य महत्त्व को स्वीकार करते हुए अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है–

'कविता सब वस्तुओं को सौन्दर्य से मण्डित बना देती है। जो स्वयं सुन्दर होता है, उसके सौन्दर्य को बढ़ा देती है और जो वस्तु कुत्सित होती है, उसके साथ सौन्दर्य का योग करती है।'[४८]

टी०एस० ईलियट ने पहले काव्य महत्त्व पर विचार नहीं किया था, परन्तु बाद में उन्होंने इसे स्वीकार करते हुए अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है–

"कोई भी कवि चाहे अपने पाठक या स्रोता को प्रभावित न करना चाहे, परन्तु उसकी कृति पाठकों पर प्रभाव डाले बिना नहीं रहती।"

इस प्रकार पाश्चात्य साहित्यकारों ने काव्य वैशिष्ट्य को स्वीकार कर उसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। वस्तु का महत्त्व उसके अन्तर्भाव में निहित होता है। उन भावों के प्रकाशन द्वारा उसके वैशिष्ट्य को उद्घाटित किया जा सकता है। भारतीय काव्य-साहित्य की भावना विश्वव्यापी और सकलजन शुभेच्छु है, परोपकारी है–

"अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्।

उदार चरितानाम तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।[४९]

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वेसन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभागभवेत्।।

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनाद्वयम्।

परोपकारः पूर्ण्याय पापाय परपीडनम्।।

परोपकाराय फलानि वृक्षा, परोपकाराय वहन्ति नद्यः।

परोपकाराय दुहन्ति गावः, परोपकारार्थमिदं शरीरम्।।[५०]

और भी–

श्रोतुं श्रुतेनैव न तु कण्डलेन, दानेन पार्णिन तु कङ्कणेन।

विभातिकायः करुणापराणां, परोपकारेण चन्दनानाम्।।[५१]

किन्तु ऐसा भाग्य (काव्य निर्माण) किसी-किसी को प्राप्त होता है–

नरत्वं दुर्लभं लोके, विद्या तत्र सुदुर्लभा।

कवित्वं दुर्लभं तत्र, शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा।।[५२]

भरतमुनि ने अपने 'नाट्यशास्त्र' में यद्यपि नाटकों को महात्म्य के विषय में लिखा है–

दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्।

विश्रृन्ति जननं काले नाट्यमेतमन्यथा कृतम्।।[५३]

धर्म्य यशस्थमायुष्यं हितं बुद्धिर्विवर्धनम्।

लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद्भविष्यति।।[५४]

न तच्छुतं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।

न स योगो न तत्कर्म यन्नाट्योस्मिन्न दृश्यते।।[५५]

किन्तु काव्य भेद से नाटक 'दृश्य' काव्य है और इसे काव्य से अलग नहीं किया जा सकता। इसके समर्थन में 'रसगंगाधर' में पण्डितराज जगन्नाथ और काव्य मीमांसा में राजशेखर ने अपना मत व्यक्त किया है। इस विषय में आचार्य भामह ने जहाँ एक ओर–

स्वादु काव्यरसोन्मिश्रं शास्त्रमप्युयुन्जते।

प्रथमालीढमद्यवः पिबन्ति कटु भेषजम्।।[५६]

न स शब्दों न तद् वाच्यं न स न्यासो न सा कला।

जायते यन्न काव्याङ्गमाहोभारो महान कोः।।[५७]

पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) की प्राप्ति हेतु सत्काव्य रचना का आग्रह किया है। वहीं दूसरी ओर–

'धर्मार्थ काम मोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।

प्रीतिं करोति कीर्तिं च साधुकाव्य निबन्धनम्।।[५८]

समस्त कलाओं में सर्वश्रेष्ठ स्वीकार किया है और इसके महत्त्व की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

मानव जीवन में धर्म, सत्य, अहिंसा और सदाचरण का महत्त्व किसी से छिपा नहीं है, क्योंकि ये श्रेष्ठ जीवन के विकास में न केवल सहायक

है, प्रत्युत् लोक जीवन के प्रथम सोपान हैं इसका काव्य साहित्य में विशद वर्णन किया गया है–

आहार निद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत् पशुंभिर्नराणां।
धर्मो हि तेषामाधिको विशेषो धर्मेण हीना पशुभिःसमाना।।

श्रुयतां धर्मसर्वस्वयं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।।

सत्यं व्रह्वेति, सत्यं ह्येव ब्रह्मः।
सत्यंत्वेष विजिज्ञासितव्यम्।।

महाकवि कालिदास ने कुमारसम्भव के तृतीय सर्ग में इन्द्र द्वारा कामंदेव के उत्कर्ष प्रसंग में जिस श्लोक को प्रमाण स्वरूप उद्धृत किया है, उससे भी काव्य वैशिष्ट्य की ध्वनि, प्रतिध्वनित हो रही है।

''त्वं सर्वतोगामि च साधकं च''।।[५९]

अर्थात् तुम सर्वत्र जाने वाले हो, तुम्हारी गति भी रूक नहीं सकती और तुम्हारे लिए सब कुछ साध्य है।

महाकवि कालिदास के उक्त विचार काव्य वैशिष्ट्य के सन्दर्भ में यथावत ग्रहण किये जा सकते हैं और मेरे विचार से उपर्युक्त तथ्य काव्य वैशिष्ट्य की दृष्टि से प्रभावशाली और ग्राह्य है।

समय-समय पर शोषण और अन्याय के विरूद्ध अपने मान्य सन्देशों द्वारा क्रान्तिकारी परिवर्तन कराकर काव्य ने अपनी उपयोगिता सिद्ध की है।

क्योंकि इसी के परिणाम स्वरूप देश की अस्त-व्यस्त व्यवस्था को बदलना सम्भव हो सका है। सम्भवतः इसी उद्देश्य की पूर्ति को ध्यान में रखकर वंकिमचन्द्र चटर्जी ने अपनी कृति 'आनन्द मठ' में लिखा था–

वंदे मातरम्।[६०]

इस प्रकार उपर्युक्त काव्यान्तर्भूत तथ्यों के उद्घाटन से काव्य का वैशिष्ट्य सिद्ध है।

(ब) काव्य भेद–

भेद शब्द 'विद्' धातु से भाव (भेदनं भेदः) अथवा करण (मिथतेऽनेति भेदः) अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय लगने से निष्पन्न होता है और इसके अनेक अर्थ होते है जिसमें एक पृथक्करण भी है। इसका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है– किसी वस्तु अथवा पदार्थ का भिन्न-भिन्न स्वरूप। इसी भेद शब्द के अर्थ में विभाग, प्रकार विद्या आदि शब्द भी प्रयुक्त होते है। साहित्यशास्त्र में आचार्यो ने काव्य का वर्गीकरण कई आधारों पर किया है। जिन्हें प्रमुख रूप से निम्न छः आधारों पर दर्शाया जा सकता है।

१. आकार की दृष्टि से

२. बन्ध की दृष्टि से

३. भाषा की दृष्टि से

४. अर्थ की रमणीयता की दृष्टि से

५. इन्द्रिय ग्राह्यता की दृष्टि से

६. वस्तु की दृष्टि से

१. आकार की दृष्टि से-

आकार की दृष्टि से दण्डी, वाग्भट्ट, भोज आदि आचार्यो ने काव्य को गद्य-पद्य एवं मिश्र इन तीन भागों में विभक्त किया है।[६१] भामह, वामन और विश्वनाथ ने इस दृष्टि से श्रव्य के गद्य और पद्य ये दो ही विभाग किये है। लक्षणों के अनुसार उस पद समूह को गद्य कहते है; जिसमें छन्दोबद्धता नहीं रहती है। इस भेद के अन्तर्गत कथा, आख्यायिका आदि काव्य प्रकारों का परिगणन होता है।[६२]

पद्यात्मक काव्य वह होता है, जिसमें पद छन्दोबद्ध होते है।[६३] जिसके छन्दों में यद्यपि विश्वनाथ ने आकार की दृष्टि से श्रव्य काव्य के गद्य एवं पद्य दो ही भेद किये है तथापि उन्होंने गद्य और पद्य दोनों में विरचित चम्पू नामक काव्य का वर्णन किया है। दण्डी ने नाटकादि को मिश्र काव्य के अन्तर्गत माना है। उनके अनुसार चम्पू भी गद्य-पद्यमयी रचना होने के कारण मिश्र काव्य है।[६४]

बन्ध की दृष्टि से-

इस आधार पर दण्डी ने काव्य के सर्गबन्ध (महाकाव्य), मुक्तक, कुलक, कोश तथा संघात ये पाँच भेद किये है और उन्होंने पद्य काव्य में सर्गबन्ध महाकाव्य को मुख्य माना है।[६५] दण्डी ने मुक्तक, कुलक, कोश और संघात नामक पद्य काव्य में दो को उसका अंग मानकर उसका लक्षण

न करते हुए मात्र महाकाव्य का विस्तृत लक्षण दिया है।[६६]

अग्निपुराण[६७] में पद्य काव्य के महाकाव्य, कलापक, पर्यायबन्ध, विशेषक, कुलक, मुक्तक तथा कोष इस सात भेदों का उल्लेख किया गया है। विश्वनाथ ने बन्ध की दृष्टि से पद्य काव्य के महाकाव्य (सर्गबन्ध), खण्डकाव्य, मुक्तक, युग्मक, सान्दानितक, कलापक, कुलक आदि भेदों के अतिरिक्त काल एवं कोषनामक काव्य भेदों का उल्लेख किया है।[६८]

३. भाषा की दृष्टि से–

इस दृष्टि से भी कतिपय विद्वानों ने काव्य का वर्गीकरण किया है। परन्तु यह विभाजन युक्तियुक्त नहीं है क्योंकि इस आधार पर विरचित समस्त काव्य जगत एक काव्य प्रकार मान लिया जायेगा तब तो साहित्य जगत के किसी भी काव्य प्रकार का बोध नहीं होगा। इससे तात्पर्य यह निकलता है कि संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और मिश्र भाषाओं के अतिरिक्त किसी अन्य भाषाओं ने विरचित साहित्य काव्य जगत् से बाहर हो जायेगा।

४. अर्थ की रमणीयता की दृष्टि से–

इस दृष्टि से आचार्य मम्मट ने काव्य के तीन भेद किये है– १. उत्तम काव्य[६९] (ध्वनि काव्य) २. मध्यम काव्य (गुणीभूत[७०] काव्य) ३. चित्र काव्य[७१] (अवर काव्य)।

आनन्दवर्धन[७२] ने इस आधार पर काव्य को दो प्रकार का माना है– १. वाच्य, २. प्रतीयमान। जिस काव्य में वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ अधिक

चमत्कारी होता है, उसे ध्वनि (उत्तम) काव्य कहते है। जिस काव्य में व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ की अपेक्षा अधिक चमत्कारी नहीं होता, उसे मध्यम (गुणीभूत) काव्य कहते है, और जिसमें व्यंग्यार्थ की स्फुटता नहीं रहती, उसे चित्र काव्य (अवर काव्य) कहते है।

५. इन्द्रिय ग्राह्यता की दृष्टि से-

इस दृष्टि से काव्य का विभाजन सम्भव है। कवि की सरस कृति कोस हृदय जिन विशिष्ट्य ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से ग्रहण करता है, वे है- (१) श्रवणेन्द्रिय (२) चक्षुरेन्द्रिय। आचार्यों ने[७३] इसे दो प्रकार से विभक्त किया है-

(१) दृश्य या प्रेक्ष्य या अभिनेय।
(२) श्रव्य अथवा अनभिनेय

जिस काव्य का आस्वाद पढ़कर या सुनकर किया जाय वह श्रव्य काव्य कहलाता है। रस भेद के अन्तर्गत महाकाव्य, खण्डकाव्य, चम्पू, कथा और आख्यायिका आदि आते हैं इसके विपरीत जिसका आनन्द हम अपने नेत्रों से देख (एवं कानों से सुनकर) कर उठा सकते है, उसे दृश्य काव्य कहते है अर्थात् दृश्यकाव्य भी पढ़ा और सुना जा सकता है। आचार्य भरत ने इसी अभिप्राय से नाट्य को दृश्य और श्रव्य दोनों कहा है।[७४]

६. प्रतिपाद्य विषय के आधार पर-

आचार्य भामह ने इस आधार पर काव्य के चार भेद किये हैं[७५]

देवादि के वृत्त से सम्बद्ध (ख्यात वृत्त), (२) कल्पित वस्तु से सम्बद्ध (३) कलाश्रित (४) शास्त्राश्रित। रुद्रट ने काव्य के लिए 'प्रबन्ध' शब्द का प्रयोग किया है और वस्तु के आधार पर प्रथमतः उत्पाद्य और अनुप्राद्य भेद करके पुनः दोनों के महान और लघु ये दो भेद किये है।[७६]

भोज[७७] ने वर्ण्य विषय के आधार पर श्रव्य काव्य के काव्य, शास्त्र, इतिहास आदि छः भेद किये है।

वर्गीकरण के अन्य आधार–

स्वरूप विधान की दृष्टि से भामह[७८] ने काव्य के पाँच भेद बताये हैं–

१. सर्गवन्ध
२. अभिनेयार्थ
३. कथा
४. आख्यायिका
५. अनिवद्ध

इस प्रकार भामह ने श्रव्य और दृश्य काव्य को समेटने का प्रयास किया है। दृश्य काव्य के लिए 'अभिनेयार्थ' संज्ञा प्रयुक्त कर उन्होंने पाँच भेदों का उल्लेख किया है।[७९]

१. नाटक
२. द्विपदी

३. शम्पा

४. रासक

५. स्कन्धक

भामह ने रूपको में केवल नाटक को उल्लिखित किया है।

नाट्य स्वरूप–

धनञ्जय, विद्यानाथ तथा श्रीकृष्ण कवि आदि ने अवस्था की अनुकृति (अनुकरण) को नाट्य कहा है। इसकी विशद व्याख्या करते हुए धनिक ने कहा है। काव्य अथवा नाट्य में वर्णित धीरोदात्त, धीरललित, धीरोद्धत तथा धीर प्रशान्त प्रकृति के नायकों तथा (अन्य पात्रों) की अवस्थाओं का आंगिक, वाचिक, सात्विक तथा आहार्य– इन चार प्रकार के अभिनयों से जो अनुकरण किया जाता है, उसी को नाट्य कहते है।[८०]

नाट्य के पर्यायवाची के रूप में रूपक शब्द अपेक्षाकृत अधिक प्रचलित है। जिस प्रकार रूपक अलंकार ने उपमेयभूत मुख आदि पर उपमान-भूत चन्द्रादि का आरोप (अभेदारोप) किया जाता है, उसी प्रकार नाट्य में नट वर राम आदि अनुकार्य पात्रों की अवस्था का आरोप किया जाता है, इसी अभेदारोप के कारण ही अनुकार्य तथा नट में तादात्म्य की प्रतिपत्ति होती है। जो रसाश्रयभूत नाट्य का मूल वीज है[८१] और इसी कारण नाट्य को इस नाम से भी अभिहित किया जाता है।[८२]

नाट्य के लिए आचार्यों ने रूपक शब्द का अधिक प्रयोग किया है।

रूपक के भेद–

आचार्य भरत की रूपक नामक अभिनेय कायवन्ध के दश भेद किये है। वे दश भेद है– नाटक, सप्रकरण (प्रकरण) भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार, वीथी, अंक, ईहामृग।[८३]

इस दस रूपकों के अतिरिक्त आचार्य भरत ने 'नाटिका' का भी उल्लेख किया है, जो उनके अनुसार प्रकरण– नाटकों से उत्पन्न होता है।[८४]

इस सन्दर्भ में रामचन्द्र गुणचन्द्र की कुछ ऐसी ही मान्यता है। उनके अनुसार अभिनेय काव्य के अनेक भेद होते हैं। उनकी दृष्टि में रस प्रधान नाटकादि है, अप्रधानरस दुर्मल्लिका-श्रीगदित, भाणी, प्रस्थानक, रासकादि हैं। रामचन्द्र गुणचन्द्र ने रूपक के जिन १२ भेदों को बताया है। वे हैं– नाटक, प्रकरण, नाटिका प्रकरणी, व्यायोग, समवकार, भाण, प्रहसन, डिम, उत्सृष्टिकांक, ईहामृग और वीथी।[८५]

भरत और रामचन्द्र गुणचन्द्र के रूपक भेद विवरण में केवल इतना अन्तर है कि भरत ने जहाँ ग्यारह रूपकों की चर्चा की है वही रामचन्द्र गुणचन्द्र ने बारह रूपकों का उल्लेख किया है। धनञ्जय और भरत में केवल परिगणन क्रम भेद है तथा दोनों ने उत्सृष्टिकांक के स्थान पर 'अंक' नामक रूपक का उल्लेख किया है। विश्वनाथ ने भी इनका पूर्णतः अनुकरण किया है।

आचार्य विश्वनाथ ने उपर्युक्त दस रूपकों का उल्लेख किया है और

उनके साथ अठारह उपरूपकों का भी उल्लेख किया है। वे इस प्रकार है– नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थान, उल्लास्य काव्य, प्रेक्षक, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्म्मलिका, प्रकरणी, हल्लीस और भाणिका।[८६]

शारदातनय के अनुसार रूपक तीस माने गये हैं। उनमें दस नाट्क, प्रकरण (रसाश्रयभूत) भी परिगणित है। शेष बीस जिन्हें भावात्मक कहा जाता है, ये है– त्रोटक, नाटिका, गोष्ठी, संल्लाप, शिल्पक, डोंवी, श्रीगदित, भाणी, प्रस्थान, काव्य, प्रेक्षक सट्टक, नाट्य, रासक, उल्लापक, हल्लीत, दुर्माल्लिका, मल्लिका, कल्पवल्ली तथा परिजातक।[८७]

भोजराज ने दृश्य काव्य के चौबीस भेद किये है। इस प्रकार रूपक के ये दश निर्विवाद भेद हुए– नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार, वीथी, उत्सृष्टिकांक अथवा अंक तथा ईहामृग।[८८]

नाटक–

नाटक नाम की अन्वर्थकता बताते हुए आचार्य अभिनवगुप्त ने कहा है कि वह (नाटक) इसलिए नाटक कहलाता है कि वह सहृदयों के हृदय में प्रवेश कर रञ्जनोल्लास द्वारा उनके हृदय तथा व्युत्पत्ति से परिचलित चेष्टा द्वारा उनके हृदय एवं शरीर दोनों को नचा देता है अर्थात् नाटक दर्शन से सहृदयों के हृदय तथा शरीर दोनों ही अपूर्व उल्लास के सरोवर में अवगाहन करने लगते है।[८९]

रामचन्द्र गुणचन्द्र ने नमनार्थक 'नट' धातु से नाटक शब्द की व्युत्पत्ति पर आपत्ति की है। वे नर्तनार्थक 'नह' धातु से नाटक शब्द की व्युत्पत्ति मानकर उसका अर्थ प्रतिपादित करते हुए कहते है कि नाटक नाना प्रकार के सौन्दर्य के प्रवेश द्वारा ही सहृदयों के हृदय को आह्लादित है।[१०]

आचार्य भरत के अनुसार नाटक की विषय वस्तु प्रख्यात् होनी चाहिए, जिसका नायक प्रसिद्ध उदात्त गुणयुक्त हो। राजर्षि वंश में उत्पन्न नायक का चरित्र, उसमें निबद्ध होना चाहिए। उसका दिव्य आश्रय से अङ्गीकृत होना उपयुक्त होता है।[११]

२. प्रकरण–

'प्र' उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से ल्युट प्रत्यय लगाकर प्रकरण पद निष्पन्न होता है। जिसका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है– प्रकृष्ट या उत्कृष्ट रचना आचार्य रामचन्द्र गुणचन्द्र के अनुसार प्रकरण वह है, जिसमे नायक, फल अथवा कथावस्तु पृथक-पृथक (एक-एक अथवा दो-दो) अथवा सभी (अर्थात् तीनों) प्रकृष्ट रूप से कल्पित किये जाते हैं।[१२]

उपर्युक्त पद निर्वचन से एक बात स्पष्ट है कि प्रकरण में कल्पना की प्रधानता होती है– प्रकर्षेण क्रियते कल्प्यते। अर्थात् जिसमें नायक, फल, वस्तु तीनों कल्पित हो, या जिससे एक या दो की कल्पना हो अन्य इतिहासाश्रित हो। प्रकरण का वास्तविक चमत्कार उसकी कल्पना में ही होती है।[१३]

प्रकरण में वस्तु, नायक तथा अन्य पात्रों की रचना कवि अपनी मौलिक कल्पना से करता है।[९४] जो प्रकरण को नाटक से भिन्न बनाती है। प्रकरण का नायक ब्राह्मण, मन्त्री या वैश्य इनमें से कोई एक होता है। धनञ्जय विश्वनाथ आदि के अनुसार इसका नायक धीर शान्त प्रकृति का होता है[९५] परन्तु नाट्यदर्पणकार इस मत से सहमत नहीं है।[९६] वे उसका नायक धीरोदात्त तथा धीर प्रशान्त दोनों को मानते हैं।

३. भाण–

'भष्' धातु से 'घत्र्' प्रत्यय जोड़ने पर 'भाण' शब्द निष्पन्न होता है। जो अभिनव गुप्त के मत में भाण का निर्वचन है, चूंकि इसमें एक ही पात्र के द्वारा (रंगमंच पर) अप्रविष्ट भी पात्र विशेष उक्तिमान् (बोलते हुए की भांति) चित्रित किये जाते हैं, अतः उसे भाण कहते है।[९७]

धनिक की दृष्टि में इस रूपक भेद का नाम भाण इसलिए रखा गया है कि उसमें वाचिक अभिनय की प्रधानता रहती है। भारती वृत्ति शब्द वृत्ति है और उसमें वाचिक अभिनय की प्रधानता होती है। विशेषतः वाचिक व्यापार (भंजन) के कारण ही यह रूपक भेद 'भाण' कहलाता है।[९८]

प्रतापरुद्रीय की रत्नापणा टीका के अनुसार इस रूपक भेद का नाम 'भाण' इसलिए है[९९], क्योंकि इसमें एक ही बिट स्वकृत अथवा परकृत का भणन (वर्णन) करता है।[१००]

४. प्रहसन–

'प्र' उपसर्ग पूर्वक 'हस' धातु से 'ल्युट' प्रत्यय करने पर प्रहसन पर की निष्पत्ति होती है जिसका अर्थ है : अट्टहास, जोर की हँसी, उपहास आदि। इस रूपक भेद का प्रहसन नाम इसलिए रखा गया है, कि इसके द्वारा सहृदयो अथवा पाठकों के हृदय में हास्य रस की अनुभूति होती है।[१०१]

प्रतापरुद्रीय की 'रत्नापणा' टीका के रचयिता की दृष्टि से भी इस रूपक भेद का प्रहसन नाम इसलिए है, कि उसमें हास्य वचन की प्रचुरता रहती है।

१. रज्जनाप्रधानं हास्य प्राय प्रहसनं लक्षयहि, तथा प्रहसनं रूपं हास्य रस प्रधानमित्यर्थः।।

२. हास्य वचः प्रचुरत्वादिदं प्रहसनमुच्यते-प्रतापरुदीयम् प्र० ८९

५. डिम–

'डिम' धातु से 'क' प्रत्यय जोड़ने पर 'डिम' पद निष्पन्न होता है। 'डिम' पद का निर्वचन करते हुए अभिनवगुप्त ने कहा है कि 'डिम' डिम्ब तथा विद्रव, में सब पर्यायवाची शब्द है जिसका अर्थ होता है– भय, पलायन, झगड़ा आदि।[१०२]

आचार्य धनिक ने "डिम सङ्धाते" धातु से डिम की व्युत्पत्ति मानी है। अतः उनके अनुसार दिन का अभिप्राय इस रूपक भेद से हैं, जिसमें नायक का सङ्घात 'हिंसक' व्यापार हो।

६ व्यायोग–

'वि+आङ् उपसर्ग पूर्वक युज्' धातु से 'घञ्' प्रत्यय लगाकर व्यायोग पद निष्पन्न होता है। व्यायोग पद की अन्वर्थकता पर प्रकाश डालते हुए अभिनवगुप्त कहते है– झगड़े में जहाँ अनेक पुरुष लड़ते हैं, वाहु-युद्ध आदि करते हैं उसे व्यायोग कहा जाता है।[१०३]

धनिक के अनुसार व्यायोग की उत्पत्ति है– "जिसमें अनेक पुरुष प्रयुक्त हों[१०४], इस व्युत्पत्ति में व्यायोग की नायक बहुलता पर प्रकाश डालती है।

नाट्य दर्पणकार के व्यायोग पद के निर्वचन के अनुसार जिसमें विशेष रूप से सब ओर से नायक युक्त होते है। अर्थात् कार्य करने के लिए प्रयत्न करते है, वह व्यायोग कहलाता है।

७. समवकार–

सम+अव उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से 'घञ्' प्रत्यय जोड़कर 'समवकार' पद का निर्वचन होता है। नाट्य दर्पणकार कृत समवकार पद के निर्वचन के अनुसार कहीं मिले और कहीं विखरे हुए त्रिवर्ग के पूर्व प्रसिद्ध उपायों द्वारा जिसको किया या निवद्ध किया जाता है, वह 'समवकार' होता है।[१०५]

विश्वनाथ तथा धनिक के अनुसार इसमें (समवकार में) काव्य के प्रयोजन विकीर्ण किये जाते है अर्थात् छिटकाएं जाते है।[१०६] अतः उसे समवकार कहते है यहाँ स्पष्ट है कि आचार्यद्वय समवकार को 'कृ' (विक्षेप) धातु से निष्पन्न किया मानते हैं।

८. बीथी–

'विथृ पाचने' धातु से 'इन्' तथा 'ङ्गीप' प्रत्यय जोड़कर 'वीथी' शब्द

निष्पन्न होता है। आचार्य धनिक ने 'वीथी' पद का निर्वचन करते हुए लिखा है कि वीथी के समान होने के कारण यह वीथी कहलाती है।[१०७] वीथी के अर्थ-मार्ग, श्रेणी, पंक्ति। नाट्यदर्पणकार[१०८] के अनुसार वत्योक्ति मार्ग से जाने से वीथी को इसलिए वीथी कहा जाता है कि क्योंकि इसमें नाना रसों की माला (पंक्ति) रुप में स्थिति होती है यह विश्वनाथ[१०९] का मत है।

९. उत्सृष्टांक–

अभिनवगुप्त उत्सृष्टिकांक पद का निर्वचन करते हुए कहते है कि जिसकी सृष्टि अर्थात् जीवित (प्राण) उत्क्रमणीय हो, ऐसी शोकग्रस्त स्त्रियां उत्सृष्टिका कहलाती हैं, उससे अंकित रुपक भेद उत्सृष्टिकांक कहलाता है। इस पद-निर्वचन से यह सिद्ध होता है कि इस रूपक भेद में शोकाकुल स्त्रियों की कथा निवद्ध की जाती है।[११०] धनंजय ने रुपकों के परिगणन के समय तो इसे 'अंक' कहा है[१११]। और लक्षण कथन के पूर्व भी 'अंक' परन्तु लक्षण में स्पष्ट रूप से उत्सृष्टिकांक कहा है।[११२]

'नाट्यदर्पणकार थोड़े शब्द परिवर्तन के साथ (उत्सृष्टिकांक) पर की अभिनवगुप्त, जैसी ही व्याख्या करते है।[११३]

१०. ईहामृग–

ईहामृग शब्द का निर्वचन करते हुए आचार्य अभिनवगुप्त कहते है– ईहा चेष्टा मृगस्येवस्त्रीमात्रयोयत्र अर्थात् जिस रुपक भेद में मृग की भांति केवल स्त्री प्राप्ति हेतु चेष्टा हो, उसे ईहा मृग कहते है।[११४] अभिनवगुप्त ने यह स्पष्ट नही किया है कि स्त्री प्राप्ति के लिए चेष्टा किसके द्वारा होती है? इस जिज्ञासा का समाधान आचार्य धनिक द्वारा हो जाता है। उनका कहना है 'मृगवदलभ्यां

नायिकां नायकोऽस्मिन्नीहते इतीहामृगः।[११५] आचार्य विश्वनाथ के अनुसार इस रुपक में नायक मृग के तुल्य इच्छा करता है।[११६] आचार्य रामचन्द[११७] ने अभिनवगुप्त की व्युत्पत्ति की शब्दावली को ही अपनाया है।

महाकाव्य–

शास्त्रीय ग्रन्थों में महाकाव्य का लक्षण प्राप्त नहीं होता है। कुछ प्रमुख अलंकारिकों ने अपने-अपने लाक्षणिक ग्रन्थों में महाकाव्य के लक्षणों का विस्तार-पूर्वक विवेचन किया हैं इनके द्वारा प्रतिपादित महाकाव्यों के स्वरूप को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि इन अलङ्कारिकों ने वाल्मीकि कृत 'रामायण' और कालीदास के दोनों महाकाव्यों 'रघुवंश और कुमारसम्भव' को दृष्टिगत करके ही 'महाकाव्य' का लक्षण प्रस्तुत किया है। आचार्य भामह ने सर्वप्रथम अपने काव्यालंकार में महाकाव्य का लक्षण किया है। उसका लक्षण संक्षिप्त होते हुए भी महाकाव्य के स्वरूप पर पूर्ण प्रकाश डालने में समर्थ है। संक्षिप्तता उनके इस महाकाव्य लक्षण की विशेषता है और महाकाव्य के समस्त तत्वों का समावेश उसकी उपदियता।

भामह कृत महाकाव्य के आवश्यक तत्त्व ये है–[११८]

१. सर्गवद्धता २. महान और गंभीर विषय ३. उदात्तनायक ४. चतुवर्ग का प्रतिपादन ५. नायक का अभ्युदय ६. सदाश्रियत्व ७. पञ्चसन्धि नाट्कीय गुण ८. लोक स्वभाव और विविध रसों की प्रतीति ९. समृद्धि- ऋतुवर्णन आदि।

भामह प्रतिपादित महाकाव्य लक्षण को देखने से यह विदित होता है कि उन्होने महाकाव्य को 'सर्गवद्ध' कहकर महाकाव्य के वाह्य तत्व की ओर

और 'महतांच महच्च यत्' कहकर उसकी विराट् आन्तरिक महत्ता की ओर संकेत किया है। उन्होने महाकाव्य के वाह्य शरीर सम्बन्धी लक्षणों को न तो आवश्यक वताया है और नही उसे सूची रूप में उपस्थित ही किया है यथा न सर्गो की सं०, न वर्ण्य विषयों की सूची, न नायक या पात्रों के गुणों की सूची न छन्द और काव्यरम्भ की आवश्यक वातें– आशीर्वाद– नमस्क्रिया और वस्तुनिर्देश आदि।[११९]

आगे के आचार्यो ने भामह प्रोक्त महाकाव्य लक्षण में यत्र-तत्र परिवर्तन करके उसे ही स्वीकार किया है। आचार्य दण्डी ने महाकाव्य का लक्षण इस प्रकार प्रस्तुत किया है– महाकाव्य सर्गबन्ध रचना है। उसके आरम्भ में आशीर्वचन, स्तुति या नमस्कार एवं कथावस्तु का निर्देश होता है। वह कथावस्तु ऐतिहासिक या सज्जन के सत्य जीवन पर आश्रित होती है इसमें उदात्तादि गुणों से युक्त चतुर नायक की चतुर्वर्ग धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का वर्णन होता है। उसमें नगर, समुद्र, पर्वत, ऋतु, चन्द्रोदय, सूर्योदय, उद्यान आदि का वर्णन होता है। क्रीड़ा, मधुपान, रतोत्सव वर्णन, विप्रलम्भ शृंगार, विवाह, और कुमार जन्म मन्त्रदूत, प्रयाण और नायकाभ्युदयआदिवर्णनों से वह युक्त होता है। महाकाव्य अलंकृत, विस्तृत और रस भावादि से सम्बन्धित होता है। उसके सर्ग अतिविस्त्रीण न हो, उसकी कथा श्रव्यवृत्तों एवं सन्ध्यादि अङ्गों से गठित होनी चाहिए। सर्गान्त में छन्द परिवर्तन होना चाहिए। उपर्युक्त गुणों से युक्त महाकाव्य लोकरंजक और कल्पान्त स्थायी होता है।[१२०]

आगे के आचार्यो ने दण्डी के लक्षणों में से ही कुछ घटा-बढ़ाकर अपने महाकाव्य के लक्षणों का निर्माण किया। उनमें अग्निपुराण, हेमचन्द्र,

विश्वनाथ और रुद्रट आदि प्रमुख है। अग्निपुराण में महाकाव्य का लक्षण इस प्रकार मिलता है– महाकाव्य सर्गवन्ध रचना है, इसमें विभिन्न वृत्तों की योजना है तथा इतिहास प्रसिद्ध अथवा किसी सज्जन के जीवन पर आश्रित कथानक वर्णित होता है। इसमें विभिन्न छन्दो-शक्वरी, अतिशक्वरी, जगती, अतिजगती, त्रिष्टुप, पुष्पिताग्रादि का प्रयोग होता है। उसमें नगर, वन, पर्वत चन्द्र, सूर्य, आश्रम, उपवन, जलक्रीड़ा, आदि उत्सवों का वर्णन तथा समस्त रीतियों, वृत्तियों और रसों का समावेश होता है। उक्ति वैचित्रय की प्रधानता होने पर भी जीवित प्राण रूप में रस की नियोजना होती है।[१२१] विश्वविख्यात् नायक के नाम से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति दिखाई जाती है। आचार्य हेमचन्द्र ने अपने ग्रन्थ 'काव्यनुशासन' में महाकाव्य के लक्षणों को शब्द वेचित्र्य, अर्थवैचित्र्य और उभयवैचित्र्य से विभूषित किया है। उनका महाकाव्य लक्षण इस प्रकार है। शब्द वैचित्र्य के अन्तर्गत उन्होने– असंक्षिप्त ग्रन्थत्व, अविषयवन्धरवादि, आदि नमस्कार, वस्तु निर्देशादि उपक्रम, कवि प्रशंसा, दुर्जन, सुजनादि का स्वरूप निर्देश, दुष्कर चित्रादि सर्गत्व आदि का निर्देश किया है।[१२२] अर्थ वैचित्र्य के अन्तर्गत उन्होने चतुवर्ग (धर्म, अर्थ काम और मोक्ष) की प्राप्ति चतुरोदात्तनायक, रसभावों की योजना, सूत्र संविधान, नगर, आश्रम, शैल सेना आवास, मन्त्र दूत प्रयाण, संग्राम, वन विहार, जल क्रीडा, मधुपान नानाथगम, रतोत्सवादि के वर्णन का निर्देश किया है। और उभयवैशिष्ट्य में रसानुरूप संदर्भ, अर्थानुरूप छन्द, समस्त लोकरंजकता, देश काल पात्रों की क्रियाये तथा गौण या अवान्तर कथाओं की योजना का निर्देश किया है।

आचार्य विश्वनाथ का महाकाव्य लक्षण–

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार– महाकाव्य का नायक धीरोदात्तादि गुणों से युक्त, सदबंशीय, क्षत्रिय, या देवता होता है। सम्पूर्ण रसों की सत्ता (व्यापकता को सीमित करते हुए उन्होनें केवल श्रृगार वीर और शान्त रसों में से किसी एक रस की प्रधानता (अङ्गी) को स्वीकार किया है। विश्वनाथ से पूर्व किसी भी आचार्य ने सर्गो की संख्या निर्धारित नही की थी और दण्डी ने केवल सर्गैकनतिविष्तीर्ण कहा था। किन्तु विश्वनाथ ने इसे सीमित करके महाकाव्य को कम से कम आठ सर्गो का होना आवश्यक माना है और सर्गो के स्वरूप न तो बहुत वड़े न ही अधिक छोटे हों, स्वीकार किया है। प्रकृति चित्रण में विश्वनाथ ने पूर्वाचार्यों के कथन को ही दुहराया है और महाकाव्य में नाटकीयता लाने तथा रस भाव निरन्तरता को स्थिर करने के लिए सर्गान्त में भावी (अग्रिम) सर्ग की कथा का संकेत होना स्वीकार किया है।[१२३]

सर्गवन्धो महाकाव्यं तत्रैको नामकः सुरः।

सद्वंशः-------------------------॥

अङ्गानि सर्वेऽपि----------।

इतिहासो----------------॥

चत्वारस्तस्थ-------------।

आदौ-----------------॥

क्वचिन्मन्द खला--------।

एकवृत्त---------------॥

नातिस्वल्पा-------------।

नानावृत्तमयः-------------॥

सर्गान्ते----------------।

संध्या-----------------॥

प्रातर्मध्या---------------।

संभोग-----------------॥

रणप्रथा----------------।

वर्णनीया----------------॥

कर्णेवृत----------------।

नामास्य----------------॥

अस्मिन्नार्षे----------------।

प्राकृतेनिर्मते--------------॥

छन्दसां----------------।

अपमृंदा----------------॥

तथापभृ--------------------।

भाषा-विभाषा----------------॥

एकार्थ प्रवेणे----------------।

विश्वनाथ कृत साहित्य दर्पण परि०-६

इसके अतिरिक्त आचार्य रुद्रट ने अपने ग्रन्थ 'काव्यालङ्कार'[१२४] में भोजराज ने अपने ग्रन्थ सरस्वती 'कण्ठाभरण'[१२५] में महाकाव्य के लक्षणों का उल्लेख किया है।

जैनकुमारसम्भव का सामान्य परिचय-

महाकवि कालिदास के कुमारसम्भव से प्रेरणा ग्रहण कर आंचलगच्छीय महेन्द्रप्रभुसूरि के शिष्य महाकवि जयशेखरसूरि ने इस महाकाव्य की रचना की है। यह महाकाव्य ११ सर्गो में विभक्त है तथा सम्पूर्ण श्लोक की सख्या ८५० है। कुमार भरत के जन्म को लक्ष्य कर इस महाकाव्य की रचना की गयी है। किन्तु भरत जन्म का उल्लेख नहीं हुआ है। इसके छठे सर्ग में सुमङ्गला के गर्भाधान का सङ्केत अवश्य मिलता है[१२६]। कवि ने इसे महाकाव्य कहा है। किन्तु कुछ विद्वानों के मत में यह एकार्थ काव्य है। सम्भवतः पूरुषार्थ चतुष्टय में से केवल मोक्ष प्राप्ति के प्रधान वर्णन के कारण विद्वानों ने इसे एकार्थ काव्य माना है। काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में एकार्थ काव्य की सूचि में इसका नामोल्लेख मिलता है। जो भी हो देवाश्रित चरित्र के अंकन से यह पौराणिक और भरत आदि के ऐतिहासिक प्रख्यात पात्र के वर्णन से यह ऐतिहासिक महाकाव्य है। इसमें महाकाव्य के भी अधिकांश लक्षण विद्यमान है। जैसा कि आचार्य विश्वनाथ ने अपने महाकाव्य लक्षण में वर्णित किया है। अर्थात् इस महाकाव्य का नायक धीरोदात्तादि गुणों से युक्त सद्वंशीय क्षत्रीय है इसमें शृङ्गार रस, वात्सल्य रस, हास्य रस आदि का वर्णन दृष्टिगत होता है। इसमें विभिन्न छन्दों यथा इन्द्रबज्रा, उपेन्द्रबज्रा, उपजाति, वंशस्थ आदि सत्तरह छन्दों की योजना है। सर्गो की सख्या आठ से भी अधिक ग्यारह है। प्रकृति चित्रण के साथ-साथ महाकाव्य में नाटकीयता लाने तथा रसभाव निरन्तरता को स्थिर रखने के लिए सर्गान्त में भावी सर्ग की कथा का सङ्केत भी दृष्टिगत

होता है। इसमें चतुर्वग प्राप्ति के सन्दर्भ में मोक्ष प्राप्ति, तथा रसभाव की योजना सूत्र सम्बिधान, नगर, दूत-प्रयाण, रतोत्सव, आवास आदि का वर्णन यथा स्थान किया गया है। अतः इसे महाकाव्य कहा जा सकता है।

जैनकुमारसम्भव की कथा-

अयोध्या के राजा नाभिराय और रानी मरुदेवी के पुत्र ऋषभदेव ने जन्म के उपरान्त मनोहर वाल सुलभ क्रीड़ाओं को करते हुए योवन को धारण किया। तुम्बरू और नारद नामक दो देवऋषियों द्वारा इनके जन्म लेने की बात सुनकर इन्द्र को इनके विवाह की चिन्ता हुई। ऋषभदेव द्वारा विवाह के विषय में मौन धारण करने पर इन्द्र ने 'मौनंस्वीकृतिलक्षणं' इस आधार उनके विवाह की तैयारियाँ कर दी और इन्द्र ने इनकी प्रशंसा करते हुए, विवाह मण्डप को सजाया। देवियों ने दो कन्याओं सुमंगला और सुनन्दा का श्रृंगार किया। विवाह के अवसर पर देवताओं ने नृत्य किया। ऋषभदेव तथा सुमंगला-सुनन्दा को पति-पत्नी के सम्बन्धों की शिक्षा दी गयी। इस प्रकार शीलवती सुमंगला गर्भवती हो जाती हैं। एक दिन सुमंगला रात्रि में चौदह स्वप्न देखती है और वह उनके फलों को जानने हेतु उत्कण्ठित हाती है अपनी इस उत्कण्ठा के समाधान हेतु वह प्रभु (ऋषभदेव) के वासगृह में आती हैं और स्त्रीबुद्धि की निन्दा करते हुए प्रभु से उन स्वप्नों के विषय में पूछती है। श्री ऋषभदेव सुमंगला को एक-एक स्वप्नों का फल वताते है, जिसे सुनकर सुमंगला अत्यन्त हर्षित होती है और वह प्रभु का यशोगान करती है। सुमंगला अपने वासगृह में लौट जाती है और समूचे वृत्तात को

अपनी सखियों से बताती है। वह प्रभु का यशोगान करती है तथा अपनी सखियों से हास-परिहास अथवा आलाप-प्रत्यालाप भी करती है। इन्द्र सुमंगला के भाग्य की सराहना करते है और कहते है कि अवधि के पूर्व होने पर संमुगला को पुत्र रत्न की प्राप्ति होगी, इसके पति का वचन मिथ्या नहीं हो सकता, इसके पुत्र के नाम से यह भूमि 'भारत' तथा वाणी 'भारतीय' कहलायेगी। इस प्रकार मध्यान्ह वर्णन के साथ यह महाकाव्य समाप्त हो जाता है।[१२७]

काव्य सौन्दर्य-

काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से जैनकुमारसम्भव महाकवि जयशेखरसूरि की अन्यान्य रचनाओं में सर्वोत्कृष्ट है और कवि को महाकवि की प्रतिष्ठापरक पदवी से अलंकृत करने का एक मात्र आश्रय। इस काव्य की भाषा प्रौढ़ है और शैली परिमार्जित। कवि ने इस काव्य में देश, नगर वन, पर्वत, ऋतु, सन्ध्या, सूर्योदय, चन्द्रोदय आदि का अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन उत्प्रेक्षा, उपमा और रुपक की भूमिका में सम्पन्न किया है। अयोध्या नगरी का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि-

तमिस्रपक्षेऽपि तमिस्रराशे रूध्येऽवकाशे किरणैर्मणीनाम्।
यस्यामभूवन्निशि लक्ष्मणानां श्रेयोऽर्थमेवावसथेषु दीपाः।।

अयोध्या नगरी में धनिकों के घर में रात्रि में दीपक केवल मंगल के लिए ही प्रज्ज्वलित किये जाते है। अतः भवनों में जड़ित मणियों का प्रकाश इतना अधिक होता था कि दीपक प्रज्ज्वलित करने की आवश्यकता ही नही

पड़ती थी।[१२८]

कवि मणियों के प्रकाश के सम्बन्ध में पुनः कहता है कि इस नगरी में कृष्ण पक्ष नहीं रहता है, सदा शुक्ल पक्ष का निवास है इस कारण न तो अभिसारिकाएं यहाँ अभिसार ही कर पाती है और न ही चोर चोरी।

रत्नोकसां रूग् निराकरेण राकी, कृतासुसर्वास्वापि शर्वरीषु।
सिद्धं न मन्त्रा इव दुःप्रयुक्ता, यत्राभिलाषा यथुरित्वरीणाम्[१२९]

कवि ने ऋषभदेव के अङ्ग प्रत्यङ्ग का निरुपण इस प्रकार किया है–

पद्मानि जित्वा विहितस्य दृग्भ्यां, सदा स्वदासी ननु पद्मवासा।
किमन्यथा सावसधानि याति, तत्प्रेरिताप्रेमजुषामरवेदम्।।[१३०]

ऋषभदेव के नेत्रों ने पद्मश्री (लक्ष्मी) को जीत लिया था। अतः वह दसी वन गयी थी। उनके नेत्रों से प्रेरित होकर लक्ष्मी खेदरहित निवास को प्राप्त हो रही थी। अभिप्राय यह है कि ऋषभदेव की दृष्टि से ही भक्त लोगों के दुःख दारिद्रय और दुर्भाग्य आदि दोष (कठर) दूर हो जाते थे।

अन्तरेण पुरुषं न हि नारी, तां विना न पुरुषोऽपि विभाति।
पादपेन रूचिमंचति शाखा, शाखयेवः सकलः किलसोऽपि[१३१]

अर्थात् जिस प्रकार शाखा वृक्ष से और वृक्ष शाखा से सुशोभित होते है, उसी प्रकार पुरुष, नारी से और नारी, पुरुष से सुशोभित होती है अभिप्राय यह है कि एक दूसरे के विना वे सुशोभित नही हो सकते।

इस प्रकार पतिव्रत और कुलटा नारी के मध्य अन्तर बताते है–

या प्रभुष्णुरपि भर्तरि दासी– भावमावहति सा खलु कान्ता।

कोपपङ्ककलुषा नृषु शेषा, योषितः क्षतजशोषजलूकाः।।[१३२]

अर्थात जो स्त्री समर्थ हाते हुए भी अपने को पति की दासी समझती है वह ही एकमात्र पत्नी कहलाने की अधिकारिणी है, शेष स्त्रियाँ तो अपने पतियों के रक्त को चूसने वाली जोंक की तरह हैं।

अपने देश (भारत) की विशिष्ट्ता एवं सौन्दर्य का वर्णन कवि ने अपनी अलौकिक कवि शक्ति द्वारा इस प्रकार निरुपित किया है–

इहापि वर्षं समवाप्य भारतं बभार तं हर्षभरं पुरन्दरः।

घनोदयोऽलं घनवर्त्मलंघनं-श्रमं शमं प्राययति स्मयोऽद्भुतम्।।[१३३]

अर्थात् स्वर्ग से धरती तक आने में इन्द्र का सारा श्रम भारत (देश) में आते ही दूर हो गया और वे बहुत प्रसन्न हुए।

पुनः प्रभु ऋषभदेव के प्रताप के समक्ष इन्द्र की असमर्थता को सुरुचिपूर्ण ढंग से इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है।

तव हृदि निवसामीत्युक्तिरीशे न योग्या

मम हृदि निवसत्वं नेति नेता नियम्यः।

न विभुरूभयथाहं भाषितुं तद्यर्थाहं,

मयिकरूकरुणार्हे स्वात्मनैव प्रसादम्।।[१३४]

अर्थात् में आपके हृदय में निवास करता हूँ, यह उक्ति आपके योग्य नहीं हैं, आप मेरे हृदय में निवास करते है, ऐसा सम्भव नहीं है, क्योंकि आप समस्त संसार के नेता है। इस प्रकार उभय विध कहने में असमर्थ मुझ पर हे करुणाकर कृपा कीजिए और अपना जानकर प्रसन्न होइए। प्रभु

के यश का पुनः वर्णन करता हुआ कवि कहता है–

स एव देव सगुरुः सतीर्थं,
स मङ्गलं सेष सखा स तातः।
स प्राणितं स प्रभुरित्युपासा
मासे जनैस्तद्गतसर्वकृत्यैः।

प्रभु ऋषभदेव ही देव गुरु, तीर्थ, मङ्गल सखा और पिता हैं, वे प्राणियों के जीवनाधार हैं और उनके आदेशानुसार ही प्राणी अपने समस्त कार्यो को सम्पन्न करते है।

उपयुक्त वर्णनों से स्पष्ट है कि काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से जैनकुमारसम्भव एक उत्कृष्ट रचना है और काव्य में अनेक स्थलों पर इसी तरह के काव्य सौन्दर्याधायक सुरूचिपूर्ण वर्णनों से युक्त होकर, अपने पाठकों को बौद्धिक आनन्द देने में समर्थ हैं।

संदर्भ

१. 'नहि मनुष्यात् श्रेष्ठतरं हि किन्चित्– शान्ति पर्व (महाभारत), १८०/१२।।

२ महाकवि कालिदास– कः ईप्सितार्थास्थिरा निश्चलमनः पयस्च निम्नाभिमुखंप्रतीपयेत्– कु० सं० ५/५

३. क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते। कु० सं०-५/८६

४. शुवयः– ४०/८

५. श्रीमद्० भा०

६. अ० को०– १/३/२५

७. वाल्मीकि– 'रामायण'– प्रत्येक सर्ग की पुस्तिका में।

८. महाभारत– अनु० प०– १/६१

९. अ० तू० का० का०– सम्पादक डॉ० नगेन्द्र

१०. होरेस– Who has jinius the divin minds, and the tongue skilled to resound mighty his honour with name of poet, 'सेलयर' नामक कृति से।

११. अरस्तु का काव्यशास्त्र, पृ० २६

१२. होरेस– Art of Poetry

१३. रोम्सपीयर– "A Mind summery might dreem"

१४. वर्ड्शवर्थ– Prefacee of tyrical

१५. मिल्टन– Eassy on edueation

१६. कालरिज– Puoted by shipley inquest for literature–२४

१७. The study of poetry, in 'Easiays in enti Cism' Second series

१८. हेमचन्द्र– 'काव्यानुशासन'

१९. काव्यानुशासन– वाग्भट्ट

२०. हरिचन्द्र सूरी– धर्मशर्माभ्युदय– १/१५९

२१. सनत्कुमार चरित– जिनपालोपाध्याय– १५/४६

२२. अभय कुमार चरित– तिलकचन्द्र उपाध्याय– ४/७२

२३. जिनप्रभुसूरि– श्रेणिक चरित– ४/४२४–११०

२४. वही, १/१३; ३

२५. हम्मीर महाकाव्य– जयचन्द्र सूरि– १४/३७ (क) ऋग्वेद– १/१२४/७ (ख) ऋग्वेद– १/१६४ २० (ग) कठोपनिषद– १/३/३ (घ) अर्थात उपमापद-असद-तत् सदृशभिति गार्ग्यः, निरुक्ति– ३/१३ (च) निरुक्ति– ३/१३/१८ (छ) साहित्यकल्पद्रुम– राजकीय पुस्तकालय मद्रास का हस्तलिपि ग्रन्थों का सूची पत्र भाग–१, खण्ड १ पृ० २८९५।

२६. ध्वन्यालोक उद्योत– ३, पृ० ३८६

२७. अष्टाध्यायी, पृ० ४/३/११०–१११

२८. अष्टाध्यायी– ४/३/७७

२९. वही, ४/३/११९

३०. महाभाष्य– २/१/५५

३१. भरत, नाट्यशास्त्र– अध्याय १७, श्लोक १/११४

३२. अग्निपुराण– ३३६–६०७

३३. काव्यलङ्कारसूत्र, वामन– १–१

३४. वही, भामह– १/१६

३५. वही, रुद्रट– २–१

३६. काव्यादर्श, दण्डी– १–१०

३७. वक्रोक्तिजीवितम्– कुन्तक– १-७

३८. मम्मट, काव्यप्रकाश मम्मट– १-४

३९. साहित्यदर्पण– विश्वनाथ– १-३

४०. रस गंगाधर– पं० राजजगन्नाथ, पृ० ४

४१. साहित्यदर्पण– प्रथम परिच्छेद

४२. शारङ्ग पद्धति में यह श्लोक 'शिलाभट्टारिका के नाम से दिया गया है।

४३. सा०द०प्र०, परि० !

४४. रसगंगाधर, पृ० ५

४५. वही, पृ० ४

४६. रसगंगाधर– प्रथमाननम्।

४७. रिपब्लिक 'फ्रीड्स' और 'आमोन'– प्लेटो

४८. 'ए डिफेन्स ऑफ पोयट्री– शेली।

४९. हितोपदेश– १-६९

५०. कालिदास– विक्रमो– ६६

५१. मीति– १-७२

५२. काव्यालंकार– भामह

५३. नाट्य शास्त्र– ३३७/४

५४. रसगंगाधर की टीका में नोचितां के प्रतीक को लेकर

५५. काव्यमीमांसा– राजश्वर, द्वितीय अध्याय

५६. काव्यालंकार– भामह– ५/३, ४

५७. वही, १/२

५८. हितोपदेश– १–२५

५९. कुमार संभव– ३/१२

६०. आ०म० से– आनन्दमठ से– वंकिम चन्द्र चटर्जी।

६१. काव्यादर्श– १/११, अग्निपुराण, पृ० ३६३, सरस्वती कण्ठाभरण– २/१८ वाग्भटीय काव्या० अध्याय १

६२. काव्यालंकार, पृ० ९, का०वा०सू०वृ०– १/२६, सा०द०– ६/३१३

६३. अग्निपुराण, पृ०२६, काव्यादर्श नृ०– ६, भ०म०, पृ० १८८, सा० द०– ६–३३०

६४. काव्यादर्श, पृ० ४, सा०द०– ६/३१४, ६–३३६

६५. गद्यपद्यमयी साङ्का सोच्छ्वासा चम्पकः– काव्यानुशासन, पृ० ४०८

६६. काव्यादर्श– पृ० ८। का०द०प० ८। काव्या० द०, पृ० ४

६७. अग्निपुराण, पृ० २९

६८. सा०द०– षष्ठ परिच्छेद।।

६९. काव्यप्रकाश– प्र०उ०सू०– २

७०. वही, प्र०उ०सू– ३१

७१. वही, प्र०उ०सू– ४

७२. ध्वन्यालोक, प्र० अध्याय का०– २१

७३. सा०द०– ६/१, काव्यानुशासन अ० पा०, पृ० ३७९, शृंगार प्रकाश अ० ११, ना० दर्पण, पृ० १२

७४. दृश्य श्रव्यं च– यद्भवेत्– ना०शा० १/११

७५. भामह– काव्यालंकार, पृ० १०

७६. रुद्रट– काव्यालंकार, पृ० ४१३

७७. भोज– काव्यं शास्त्रेतिहासौ च काव्यशास्त्रं तथैव च।

काव्येतिहासः शस्त्रेतिहासस्तदपि षड्विधम्। –सरस्वती कण्ठाभरण– २/१३९

७८. काव्यालंकार– भामह, पृ० १०

७९. वही, पृ० १४

८०. तद्रपकम भेदो च उपमानोपमेययोः (उपमानोपययोः यः अभेदः अभेदारोपः तत् कमित्यर्थः) का०प्र० १०/१३९

८१. रूपकं तत्समारोपात्– नटे राधवस्थारोपेण वर्तमानत्वाद्रूपकं मुखचन्द्रद्विपदत्। द०रू० १/७ तथा उस पर वृत्ति

८२. (क) त्रिशद्रूपम भेदाश्च प्रकारयन्तेऽत्र तक्षणैः। भा०प्र० अष्टम् अधिकार, पृ०२२१

(ख) तद्रूपकेषुत्कृष्ट त्वाद्वहुगुणा कीर्णत्वाच्च। ना०ल०र०, पृ० ३

(ग) सन्दर्भेषु दशरूपकं श्रेयः काव्यालंकार सूत्र वृत्ति– वामन– १/३-३०

८३. नाट्य शास्त्र– १८/५,

८४. वही, १/२-४

८५. दशरूपक– ३/४३

८६. साहित्यदर्पण– ६/४-५

८७. भावप्रकाशन– ८/२२१, ३/१०

८८. शृंगार प्रकाश– अध्याय– २०

८९. हृदयानुप्रवेश रज्जनोल्लास तथा हृदयं शरीरं चोपायत्युत्पत्तिपरिघट्टितया चेष्टया नर्तयति 'नटनृन्तौ' नृते इत्युभयथा हि स्मरन्ति। तदिति तस्माद् हेतोः नामास्य नाटकमिति। ना०शा० द्वि०भा० अभि० भारती, पृ० ४१३, गायकवाड़ सीरीज।

९०. नाटकमिति नाटयति विचित्रं रज्जनाप्तवेशेन सय्यानां हृदयं नर्तयति इति नाटकम्। अभिनवगुप्त स्तनुमनार्थस्थापि नहेर्नाटक शब्द व्युत्पादयति। तदतु धटादि लेन हस्वाभावाश्चिन्त्यः। नाट्यदर्पण– वृत्ति भाग, पृ० २३

९१. नाट्यशास्त्र– १८/१०–१२, दशरूपक– ३३/२२–२३ सा०द०– ६/७–८

९२. प्रकर्षेण क्रियते कल्प्यते नेता, फलं वस्तु वा समस्त व्यस्ततया नेति प्रकरणम्– नाट्य दर्पण, द्वितीय विवेक, पृ० २०३

९३. ना०शा०– १८/६५–६७

९४. काव्यानुशसन, पृ० ३८१

९५. दशरूपर– ३/३९–४२

९५. साहित्यदर्पण– ६/२२४–२२६

९६. नाट्य दर्पण, पृ० २०३

९७. एक मुखेनेव भाष्यन्ते उक्तिमन्तः क्रियन्ते अप्रविष्टा अपि पात्र– विशेषायत्रेति– ना०शा० १८ अ०, अभि० पृ० ४४१

९८. भारती वृत्ति प्रधानत्वाद्भाणः– दशरूपक अवलोक, पृ०१६८

९९. यत्रैक एव विटः स्वकृतं परकृतं वा भारती वृत्ति भूमिष्ठं भणति स भाणः– रत्नापणा टीका।

१००. भाण की व्युत्पत्ति ही है– भष्यते गणनोक्तया नामकेन स्वपर वृत्तं यस्मिन्निति भाणः। परिभाषा हेतु द्रष्टव्य– ना० शा०– १८/६०, दशरूपक– ३/४९–५३, सा०द०– ६/२२७, भाव प्रकाशन– ५४४–५४६

१०१. हृदयानुप्रवेश रन्जनोल्लासतया हृदयं शरीरं चोपायत्यूत्पत्तिपरिघट्टितया चेष्टया नर्तयति 'नटनृततो' नृते इत्युभयथा हि स्मरन्ति तदिति तस्माद हेतोः नामास्य नाटकमिति। ना०शा०द्वि०भा० अभि० भारती, पृ० ४१३, गायकवाड़, सीरीज।

१०२. डिमो डिम्वो विद्रव इति पर्याभाः तद्योगादर्य डिमः अन्मे तु डयन्त इति डिमः उद्धट नामकास्तेषामात्मनां वृत्तिर्यत्रेति– अभि०ना०शा०– १८, अ०, पृ० ४४३–४४

१०३. व्याभोग युद्धप्राये नियुध्यन्ते पुरुषा पत्रेति व्यायोग, इत्यर्थः– ना०शा०अभि० भा० १.८ अध्याय, पृ० ४४५

१०४. व्युज्यन्तेऽस्मिन् वहव: पुरुषा इति व्यायोग:– द०रु०दृ०प्र० वृत्ति, पृ० १७२

१०५. संगतैरवकीनर्णश्चार्यै: त्रिवर्गोपाये: पूर्व प्रसिद्धैरेव क्रियते– निवध्यते इति समवकार:– नाट्य दर्पण, पृ० २२१ की वृत्ति।

१०६. (क) समवकीर्यन्ते अस्मिन्नर्था इति समवकार:– दशरूपक, पृ० १७३

(ख) समवकीर्यन्ते वहवोऽर्था अस्मिनिति समवकार:– सा०द० ६, कारिका।

१०७. (क) वीथी व द्वीथी मार्ग: अङ्गानां पङ्क्तिर्वा– दशरूपक, तृ०, पृ० ३/६८ परधनिक वृत्ति

(ख) अवस्को० अमरकोश– ३/३/७१

१०८. वक्रोक्तिमार्गेण गमनाद् वीथी व वीथी– नाट्य द०, पृ०२४०

१०९. वीथीवनानारसानां चात्रमाला पतया स्थितत्वाद्वीश्रीयम्– सा०द०, पृ० ५३०

११०. उत्क्रमणीया सृष्टिजीवितं प्राणा यासां ता उत्सृष्टिका:।

शोचन्त्य: स्मियस्तानिरंकित इति तथोक्त:। –ना०शा०– १८, अभि०भा०, पृ० ४४६

१११. वीय्यङ्केईहामृगा इति।। ३।। द०रु०प्र०प्र०, पृ० ५

११२. अधांक : उत्सृष्टिकांके प्रख्यातं– ।। ७०।। वहीं, पृ० १७४

११३. उत्क्रमणोन्मुखा सृष्टिर्जीवितं यासां ता उत्सृष्टिका।

शोचन्त्य: स्त्रिय: तमिरं किलत्वाद उत्सृष्टिकांक:। –ना०द० द्वितीय विवेक ११, पृ० २३६

११४. अभिनवभारती, पृ० ४४१–४२।

११५. दशरुपक, तृ० पृ० अवलोकवृत्ति, पृ० १७५

११६. नायको मृगवदलभ्यां नायिका– यत्र ईहते वान्द्टीतीहामृग:– सा०द०, पृ० ५१८

११७. नाट्य दर्पण द्वि वि०, पृ० २३९

११८. सर्गवन्धो महाकाव्यं महतां च महच्च मत्।

अग्राम्यशब्दमर्थ च सालंकारं सदाश्रृयम्।।

मन्त्रदूतप्रयाराजि नायकाभ्युदयंच यत्।

पंचभिः संधिभिर्युक्तं नातिव्यायख्येयमृद्धिमत्।।

चतुवर्गामिधानेऽपि भूय सावोपदेशकृत।

युक्तं लोकस्वभावेन रसेश्च सकलेः पृथक्।।

नायकं प्रागुपन्यस्त वंशवीर्य– श्रुतादिभिः।

न तस्यैव वधं ब्रूयादन्योत्कर्षाभिधित्सिया।। १/२५ आचार्य भामह– काव्यालंकार– १/२२-२५

११९. सर्गवन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम्।

आशीर्नमास्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्।। १/१४

१२०. इतिहास कयोद्भूतमितराद्वा तदाश्रयम्।

चतुर्वर्गफलोपेन्तं चतुरोदात्त नायकम्।। १/१५

नागरार्णव– शैलर्तु– चन्द्रौकदियः वर्णनैः।

उद्यान– ललित– क्रीड़ा भधुपान रतोत्सवैः। १/१६

विप्रलम्भेविवाहैश्च कुमारोदय– वर्णनैः।

मन्त्र-दूत-प्रयाणाजि– नायकाश्युदयैरपि।। १/१७।।

अलंकृतममसंक्षिप्तं– रसभाव-निरन्तरम्।

सर्गनतिविष्तीर्णैः श्रव्यवृन्तेः सुसन्धिभिः।। १/१८।।

सर्वत्र भिन्न-हन्तान्तेरुपतेतं लोकरज्जकम्।

काव्यं कल्पान्तरस्थायि जायते सदकंकृति।। १/१९।। –दण्डी काव्यादर्श– १/१४/१९

१२१. अग्निपुराण, अध्याय– ३३७/२४-३४

१२२. पद्यं प्रायः संस्कृतप्राकृतापभ्रंशग्राम्य भाषा निवद्ध भिन्नान्त्य व्रत्तसर्गाश्वास संध्यवस्कन्धकबन्ध सत्संधिशब्दार्थ पैचिल्योपेतं महाकाव्यं।

छान्दोविशेषरचितं प्रायः संस्कृतादिभाषानिवद्धैर्भिनान्त्य-वृत्ते-यथा संख्यं सर्गादिभिनिर्मितं सुश्लिष्ट मुखप्रतिमुख गर्भ विमर्शनिवत्हण संधि सुन्दरं शब्दार्थ वैचित्र्योपेतं महाकाव्यम्।

शब्दवैचित्र्यं यथा- असंक्षिप्तग्रंथत्वं, अविषमवन्धत्वं, अनतिविष्तीर्णपरस्पर संवद्धयसर्गादित्वं, आशीर्नमस्कारवस्तु निर्देशापेकृयत्वं, व्यक्तव्यार्थ-प्रति-ज्ञान तत्प्रयोजनोपन्यास- कवि-प्रशंसा, दुर्जनसुजन स्वरूपदादि-वाक्यत्वं, दुष्करचित्रादिसर्गत्वं, स्वाभिप्राय स्वप्नामे ष्टनामंगलांकित समाप्तित्वमिति।।

अर्थ वैचित्र्य यथा- चतुवर्ग फलोपायत्वं, चतुरोदात्त नायकत्वं, रसभावनिरन्तस्त्वं, विधि निषेध-व्युरत्पादकत्वं सुसूल संन्धि संधानकत्वं, नगराश्रम- सेनावासार्णवादि-वर्णनं-ऋतुरात्रि दिपाकांस्तमथ चन्द्रोदयादि वर्णनं, नायक-नातयका-कुमार-वाहनादि वर्णनं मन्त्रदूत-प्रयाण-संग्रामाभ्युदयादिवर्णनं बन-विहार-जलक्रीड़ा-मधुपान, मानापगमरतोत्सवादि-वर्णनमिति।।

उभयवैचित्रययथा- रसानुरूप- सन्दर्भत्वम् अर्थानुपद्वदन्दस्त्वम् समस्त लोक रञ्जकत्वम् सदलंकारवाक्यत्वम् देशकालपात्रचेष्टा- कथान्तरानुषंजनम् मार्गाद्वयानुवर्तनम् च इति।

प्रायोगृहणादेव रावणाविजम हरिविज सेतुवन्धेष्वादितः समाप्तिपर्यन्तमें कमेव छन्दोभवतीति। गलित कानि तु तलकैरपि विदग्धमानिभिः क्षिप्तानीति तद्विदो भाषन्ते।- हेमचन्द्र, काव्यानुशासन, आ०अ०

१२३. सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।

सद्वंशः--------------------।।

१२४. काव्यालंकार- रुद्रट, अध्याय

१२५. सरस्वती कण्ठाभरण- भोज!

१२६. महाकवि जयशेखर सूरि

कौमारकेलि कलनाभिर मुष्यपूर्व–

लक्षाः षडे कलवतां नयतः सुखाभिः।

आधा प्रिया गरभमेणदृशामभीष्ट

भर्तुः प्रसादमविनश्वरमासादं।। –जै० कु० सं०– ६/७४

१२७. जैन कुमार सम्भव– जयशेखर सूरि– १ से १ सर्गो तक

१२८. जैन कुमार सम्भव– जयशंखर सूरि– १/६

१२९. वही, १/७

१३०. वही, १/५७

१३१. वही, ५/६१

१३२. वही, ५/८१

१३३. वही, २/६०

१३४. वही, २/७

द्वितीय अध्याय
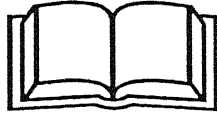
जैनकुमारसम्भवकार की जीवन-वृत्त, कृतियाँ तथा जैनकाव्य साहित्य की तत्कालीन परिस्थितियाँ एवं प्रेरणाएं

महाकवि जयशेखर सूरि–

जैनकुमारसम्भव का रचनाकाल एवं महाकवि जयशेखरसूरि के जीवन-वृत्त का कोई विश्वस्त प्रमाण उपलब्ध नहीं है। महाकवि ने ग्रन्थ के अन्त में अपने नामोल्लेख के अतिरिक्त अपना कोई विशेष परिचय नहीं दिया है। अन्यान्य संस्कृत ग्रन्थों में आंचलगच्छीय परम्परा का उल्लेख इस प्रकार किया गया है[१]–

१. आर्यरक्षित सूरि (आंचलगच्छ संस्थापक)

२. जयसिंह सूरि

३. धर्मघोष सूरि

४. महेन्द्रसिंह सूरि

५. सिंहप्रभु सूरि

६. अजितसिंह सूरि

७. देवेन्द्रसिंह सूरि

८. धर्मप्रभ सूरि

९. सिंहतिलक सूरि

१०. महेन्द्रप्रभ सूरि

(अ) मुनिशेखर सूरि (ब) जयशेखर सूरि (ग) मेरुतुङ्ग सूरि

उपर्युक्त नामावली के आधार पर यह निश्चित होता है कि जयशेखर सूरि महेन्द्रप्रभ सूरि के शिष्य थे और मुनिशेखर के पश्चात् तथा

मेरुतुङ्गाचार्य के पूर्व विद्यमान थे। जैनकुमारसम्भव के प्रत्येक सर्ग की टीका के अन्त में कवि के प्रिय शिष्य धर्मशेखर सूरि ने जयशेखर सूरि की साहित्यिक उपलब्धियों का जो संकेत किया है, उससे विदित होता है कि जयशेखर सूरि काव्य सरिता के 'उद्गम स्थल' तथा 'कविधरा' के मुकुट थे। उनकी कवित्व शक्ति और काव्य कौशल को देखते हुए धर्मशेखर सूरि का यह कथन–

सूरिः श्री जयशेखरः कविघटा कोटीरहीरच्छविः।
धर्मिल्लादिमहाकवित्वकल ना कल्लोलिनीसानुमान।।

गुरुशक्ति से उत्प्रेरित श्रद्धांजलि मात्र नहीं है। धम्मिलकुमारचरित की प्रशस्ति में जयशेखर सूरि ने स्वयं 'कविचक्रधर' विशेषण द्वारा अपनी प्रबल कवित्वशक्ति को रेखांकित किया है। धम्मिलकुमारचरित का रचनाकाल संवत् १४६२ तक जयशेखर की स्थिति असन्दिग्ध है।[२]

महाकवि जयशेखर सूरि द्वारा उल्लिखित ग्रन्थ–

श्री स्तंभतीर्थ श्रीमदन्चलगच्छनभोमण्डलर्मातण्डेन सकलविद्वतवर्ग मानसचकोर सुधारकरेण यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहार्ध्यानधारणासमाध्यात्मकाण्ठाङ्ग परिकलितात्मना निजप्रतिभाधारी कृतामृताशनासूरिणा भारतीप्रदत्तवरेण प्रबोधचिन्तामणि, उपदेशचिन्तामणि, धम्मिलकुमारचरित सच्छास्त्र प्रणेता प्रातः स्मरणीय नाधेयेन पूज्यपादारविन्द-युगलेन तत्र भवता परमगुरु वर्णेय श्री जयशेखरसूरि विरचितं जैन-कुमारसम्भव महाकाव्यम्।

पूर्वोक्त वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि जयशेखर सूरि प्रबोध चिन्तामणि, उपदेशचिन्तामणि, धम्मिलकुमारचरित और जैनकुमारसम्भव की रचना की थी। इनकी रचनाओं की सूची निम्नलिखित है–

१. प्रवोधचिन्तामणि (सं० १४६४) जैनधर्म प्रसारक सभा, भावनगर

२. उपदेशचिन्तामणि (सं० १४३६) हीरालाल हंसराज, जामनगर

३. धम्मिल्लकुमारचरित (सं० १४६२) हीरालाल हंसराज, जामनगर

४. जैनकुमारसम्भव (विक्रम सं० १४८३ जैनकुमारसम्भव की प्रशस्ति)

५. गिरिनारगिरिद्वात्रिंशिका

६. महावीरजिनद्वात्रिंशिका

७. धर्मसर्वस्व

८. उपदेशचिन्तामण्यचूरि

९. पुष्पमालावचूरि

१०. आत्माववोधकुलक

११. शत्रुंजय द्वात्रिंशिका

१२. उपदेशमालावचूरि

१३. क्रियागुप्तस्त्रोत्

१४. छन्दशेखर

१५. नवतत्त्व कुलक

१६. अजितशान्तिस्तव

१७. संवोधसप्ततिका

१८. नैमिनाथ फागु

१९. त्रिभुनदीपक प्रवन्ध

धम्मिलकुमारचरित की प्रशस्ति में जैन कुमारसम्भव के नामोल्लेख से यह निश्चित है कि जैनकुमारसम्भव पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में निर्मित कृति है।[३]

अतएव धर्मसर्वस्व, आत्मकुलक, अजितशान्तिस्तव, संबोधसाप्तिका, नलदमयन्तीचम्पू, न्यायमञ्जरी तथा द्वात्रिंशिकाएं कवि की मौलिक रचनाएं है। त्रिभुवनदीपक प्रबन्ध, परमहंश प्रबन्ध, अन्तरंग चौपाई, प्रबोध चिन्तामणि चौपाई की रचना गुजराती में हुई है।[४]

तत्कालीन परिस्थितियाँ–

किसी भी धर्म या सम्प्रदाय के विाशिष्ट साहित्य का अध्यय न करने के लिए उस युग की राजनीतिक, धार्मिक सामाजिक और साहित्यिक परिस्थितियों का परिचय प्राप्त करना समीचीन होगा।

जैनों के काव्य साहित्य की उपलब्ध सामग्री के आधार पर हम कह सकते हैं कि उसका निर्माण ईसा की पाँचवीं शती से प्रारम्भ हो गया था। राजनीतिक दृष्टि से यह गुप्तवंशी राज्यसत्ता के अस्त का काल था। उत्तर भारत में सन् ४५० के लगभग हूणों का आक्रमण हुआ फलस्वरूप भारत में केन्द्रीय शासन का अभाव हो गया और वह अनेक स्वतन्त्र संघर्षरत राज्यवंशों में विभक्त हो गया। यह स्थिति प्रायः अंग्रेजी शासन स्थापित होने के पूर्व तक बराबर बनी रही।

(क) राजनीतिक परिस्थितियाँ–

जैनधर्म ने गुप्तकाल के समय या उससे कुछ पूर्व पश्चिम और दक्षिण भारत को अपने विशिष्ट कार्य-कलापों का केन्द्र बनाया।[५] वैसे जैनधर्मानुयायी मध्यकाल में बंगाल विहार, उड़ीसा और उत्तरप्रदेश के कतिपय स्थानों में बराबर बने रहे पर उनकी तत्कालीन साहित्यिक गतिविधियों का हमें कोई पता नहीं। मध्यकाल में मालवा, राजस्थान, उत्तरी गुजरात तथा दक्षिण भारत के कर्नाटक आदि प्रान्तों में जैनधर्म का अच्छा समादर रहा और अपने साहित्यिक कार्यकलापों में उन्हें जैन जनता के अतिरिक्त राज्यवर्ग से संरक्षण और प्रेरणा मिलती रही। दक्षिण के पूर्व मध्यकालीन राज्यवंशों जैसे गंग, कदम्ब, चालुक्य और राष्ट्रकूटों ने और उनके अधीन अनेक सामन्तों, मन्त्रियों और सेनापतियों ने जैनधर्म को आश्रय ही नहीं दिया बल्कि वे जैन विधि से चलने के लिए प्रवृत्त भी

सेवा और जीवनयापन में बड़ी प्रगति और सफलता मिली, गुजरात के चालुक्य नरेशों, विशेषकर सिद्धराज जयसिंह और कुमारपाल के आश्रय में जैनधर्म ने अपने प्रतापी दिन देखे और उस युग में कला और साहित्य के निर्माण में जैनों के योगदान ने गुजरात को महान् बना दिया, जो आज भी है। इस समय से गुजरात में साहित्यिक क्रिया-कलाप का एक युग प्रारम्भ हुआ और इसका श्रेय हेमचन्द्र और उनके बाद होने वाले अनेक जैन कवियों को है। राजदरबारों में जैनाचार्यों और विद्वानों के त्यागी जीवन और उसके साथ विद्योपासना की भी बड़ी प्रतिष्ठा की जाती थी और अनेक राजवंशी लोग भी उनके भक्त और उपासक होने में अपना कल्याण समझते थे।

मुस्लिम शासन काल में यद्यपि जैनों के मन्दिर यत्र-तत्र नष्ट किये गये पर सभवतः उतने अधिक परिमाण में नहीं। उस काल में भी जैनाचार्यों और जैन गृहस्थों की प्रतिष्ठा कायम थी। दिल्ली का बादशाह मुहम्मद तुगलक जिनप्रभसूरि का बड़ा समादर करता था। मुगल सम्राट अकबर और जहाँगीर ने आचार्य हीरविजय, शान्तिचन्द्र और भानुचन्द्र के उपदेशों से प्रभावित हो जीवरक्षा के लिए फरमान निकाले। अकबर ने आचार्य हीरविजय जी को जगद्गुरु की उपाधि दी थी और उनके अनुरोध पर पज्जूसण के जैन वार्षिकोत्सव के समय उन स्थानों में प्राणिहिंसा की मनाही कर दी जहाँ कि जैन लोग निवास करते थे।

इस राजनीतिक स्थिति का प्रभाव जैन काव्य साहित्य पर विविध रूप से पड़ा और पांचवी शती ईस्वी से अनवरत जैन काव्य साहित्य का निर्माण होता रहा।

(ख) धार्मिक परिस्थितियाँ-

गुप्तकाल से अबतक भारत में धार्मिक परिस्थिति ने अनेक करवटें बदली हैं। गुप्तकाल में एक नवीन ब्राह्मण धर्म का उदय हो रहा था जिसका आधार वेदों की अपेक्षा पुराण अधिक माने जाते थे। ब्राह्मणधर्म में नाना अवतारों की पूजा और भक्ति की प्रधानता थी।

गुप्त नरेश स्वयं भागवत धर्मानुयायी अर्थात् विष्णु पूजक् थे परन्तु वे बड़े ही धर्मसहिष्णु और अन्य धर्मो को संरक्षण देने वाले थे। बौद्ध धर्म के महायान सम्प्रदाय का गुप्त राज्यों के संरक्षण में अच्छा प्रचार था। पूर्व में नालन्दा और पश्चिम में वल्लभी बौद्धधर्म के नये केन्द्रों के रूप में विकसित हो रहे थे। जैन धर्म भी विकसित स्थिति में था। वल्लभी में देवार्धिगणि क्षमाश्रमण ने जैनागमों का पांचवी शताब्दी में संकलन किया था। इस युग की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि विभिन्न धर्मों में परस्पर आदान-प्रदान और संमिश्रण अधिक मात्रा में बढ़ने लगा था। जैन तीर्थंकर ऋषभदेव और भगवान बुद्ध हिन्दू अवतारों में गिने जाने लगे थे। उस समय के अनेक धार्मिक विश्वासों में उलट-पुलट हो रही थी, धार्मिक जीवन में विधर्मी तत्त्वों का प्रवेश होने लगा था और एक ही कुटुम्ब

और राज्यवंश में विभिन्न धर्मो की एक साथ उपासना होने लगी थी। तांत्रिक धर्म का विस्तार बढ़ने लगा था। हिन्दू धर्म में तांत्रिक धर्म प्रविष्ट हो चुका था। जैनधर्म में वह मंत्रवाद के रूप में प्रविष्ट हो रहा था। तांत्रिक देवी-देवताओं के रूप में चमत्कार-प्रदर्शन के लिए या बाद-विवाद में पराजय के लिए कुछ देवियों- जैसे- ज्वाला, मालिनी, चक्रेश्वरी, पद्मावती आदि का आविष्कार होने लगा था। उनकी स्वतंत्र मूर्तियों व मन्दिरों का निर्माण भी होने लगा था तथा उनके लिए स्त्रोत्र-पूजाएँ भी रची जाने लगी थी। शैव और वैष्णव धर्मो के प्रभाव के कारण तीर्थकरों को कर्ता-हर्ता मानकर उनके भक्तिपरक स्त्रोत बनने लगे। जैनाचार्यों ने ऐसे लौकिक धर्मों को भी अपने धर्म में शामिल कर लिया जो धर्म-सम्मत न होते हुए भी लोक में अपना विशेष प्रभाव रखते थे। नाना प्रकार के पर्व तीर्थ, मंत्र आदि का महात्म्य माना जाने लगा और उसके निमित्त नाना प्रकार के कथा-साहित्य लिखे जाने लगे। इस युग में ससंघ तीर्थयात्रा को महत्त्व भी दिया जाने लगा।

जैन श्रमण संघ की व्यवस्था में भी अनेकों परिवर्तन होने लगे थे। महावीर निर्वाण के लगभग छः सौ वर्ष बाद जैन मुनिगण वन-उद्यान और पर्वतोपत्यका का निवास छोड़ ग्रामों नगरों में ठहरना उचित समझने लगे। इसे 'वसति-वास' कहते है। गृहस्थवर्ग जो पहले 'उपासक' नाम से संबोधित होता था वह धीरे-धीरे नियत रूप से धर्मश्रवण करने लगा और अब वह उपासक-उपासिका की जगह श्रावक--श्राविका कहलाने लगा। वसतिवास के

कारण मुनियों और गृहस्थ श्रावकों के बीच निकट सम्पर्क होने से जैन संघ में अनेक मतभेद, और आचार-विषयक शिथिलताएं आने लगी। ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में मूर्ति तथा मन्दिरों का निर्माण श्रावक का प्रधान धर्म बन गया। मुनियों का ध्यान भी ज्ञानाराधना से हटकर मन्दिरों और मूर्तियों की देखभाल में लगने लगा था। वे पूजा और परम्मत के लिए दानादि ग्रहण करने लगे थें। फलतः सातवीं शताब्दी के बाद से जिनप्रतिमा, जिनालय निर्माण और जिनपूजा के महात्म्य पर विशेष रूप से साहित्य निर्माण होने लगा।

ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में मुनियों के समुदाय कुल गण और शाखाओं में विभक्त थे। जिनमें मुनियों का ही प्रावल्य था पर धीरे-धीरे गृहस्थ श्रावकों के प्रभाव के कारण नये नाम वाले संघ, गण, गच्छ एवं अन्वयों का उदय होने लगा तथा कई गच्छ परम्पराएं चल पड़ी थी। पहले जैन आगम सूत्रों का पठन-पाठन जैन साधुओं के लिए ही नियत थे। पर देशकाल के परिवर्तन के साथ श्रावकों के पठन-पाठन के लिए उनकी रूचि का ध्यान रख आगमिक प्रकरण और औपदेशिक प्रकरणों के साथ नूतन काव्य शैली में पौराणिक महाकाव्य, बहुविध कथा-साहित्य और स्रोतों तथा पूजा-पाठों की रचना होने लगी। पांचवी से दसवीं शताब्दी तक जैन मनीषियों द्वारा ऐसी अनेक विशाल एवं प्रतिनिधि रचनाएं लिखी गयी जो आगे की कृतियों का आधार मानी जा सकती है।

ईसा की ११वीं और १२वीं शताब्दी में देश की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन के साथ जैनसंघ के उभय सम्प्रदायों दिगम्बर और श्वेताम्बर के आन्तरिक संगठनों में नवीन परिवर्तन हुए जिससे जैन साहित्य के क्षेत्र में एक नूतन जागरण हुआ। दिगम्बर सम्प्रदाय में तबतक अनेक संघ गण और गच्छ बन चुके थे और उनके अनेक मान्य आचार्य मठाधीश जैसे बन गये थे। और धीरे-धीरे एक नवीन संगठन भट्टारक व महन्त वर्ग के रूप में उदय हो रहा था जो पक्का चैत्यवासी बनने लगा था। इसी तरह श्वेताम्बर सम्प्रदाय चैत्यवास और वसतिवास के विवादस्वरूप अनेकों गणों और गच्छों में विभक्त होने लगा और विभिन्न गच्छ परम्पराएं चलने लगी। गण-गच्छनायकों ने अपने-अपने दल की प्रतिष्ठा के लिए एवं अनुयायियों की संख्या बढ़ाने के लिए विभिन्न प्रदेशों तथा नगरों में विशेष रूप से परिभ्रमण किया। इन लोगों ने अपने विद्या, बल एवं प्रभावदर्शक शक्ति सामर्थ्य से राजकीय वर्ग और धनिक वर्ग को अपनी ओर आकर्षित किया और बढ़ते हुए शिष्य वर्ग को कार्यक्षम और ज्ञानसमृद्ध बनाने के लिए नाना प्रकार की व्यवस्था की। इसके फलस्वरूप दक्षिण और पश्चिम भारत के अनेक स्थानों में ज्ञानसत्र और शास्त्रभण्डार स्थापित हुए। वहाँ आगम न्याय, साहित्य और व्याकरण आदि विषयों के ज्ञाता विद्वानों की व्यवस्था की गई, स्वाध्यायमण्डल खोले गये तथा अध्यापक और अध्ययनार्थियों के लिए आवश्यक और उपयोगी सामग्री उपलब्ध करायी गई। 'विद्वान् सर्वत्र पूज्यते' इस युक्ति को महत्व देकर जैन

साधु और गृहस्थ वर्ग अपनी विद्या-विषयक समृद्धि बढ़ाने की ओर विशेष ध्यान देने लगे। जैन सिद्धान्त के अध्ययन के बाद अन्य दार्शनिक साहित्य का तथा व्याकरण, काव्य, अलङ्कार, छन्दशास्त्र और ज्योतिःशास्त्र आदि सार्वजनिक साहित्य का भी विशेष रूप से आकलन होने लगा और इस विषय के नये-नये ग्रन्थ रचे जाने लगे।

(ग) सामाजिक परिस्थितियाँ[७]-

हमारे इस आलोच्य युग के पूर्वमध्य काल में सामाजिक स्तब्धता धीरे-धीरे बढ़ने लगी थी। भारतीय समाज जाति प्रथा से जकड़ता जा रहा था और धार्मिक तथा रीति-रिवाज के बन्धन दृढ़ होते जा रहे थे। उत्तरमध्यकाल आते-आते समाज अनेकों जातियों और उपजातियों में विभाजित होने लगा। धीरे-धीरे प्रगतिशील और समन्वय एवं सहिष्णुता के स्थान पर स्थिर रूढिवाद और कठोरता ने पैर जमा लिए। समाज में तन्त्र-मन्त्र टोना-टोटका, शकुन, मुहूर्त आदि अंधविश्वास अशिर्क्षित और शिक्षित दोनों में घर कर गये थे। धार्मिक क्षेत्र तथा सामाजिक क्षेत्र में उत्तरोत्तर भेदभाव बढ़ता जा रहा था। क्रिया काण्ड और शुद्धि-अशुद्धि के कारण ब्राह्मण वर्ग में छूआछूत का विचार बढ़ रहा था। जातियों के उपजातियों में विभक्त होने से उनमें खान-पान रोटी-वेटी का सम्बन्ध बन्द हो रहा था। क्षत्रिय और वैश्य वर्ग में भी इन नये परिवर्तनों का प्रभाव पड़ने लगा था। क्षत्रिय वर्ग के राजवंशों से शासन कार्य प्रायः छिन रहा था। इस काल

के अनेक राजवंश प्रायः अक्षत्रिय वर्ग के थे। उत्तर भारत में थानेश्वर के पुष्यभूति वैष्य थे। बंगाल के पाल और सेन शूद्र थे। कन्नौज के गुर्जन-प्रतिहार विदेशी थे जो पीछे क्षत्रिय बनाये गये थे। इसी तरह परमार और चौहान भी थे। तात्पर्य यह कि क्षत्रिय वर्ग में अनेक तत्त्वों का संमिश्रण हो रहा था। सामान्य क्षत्रिय व्यापार कर वैश्यवृत्ति धारण कर रहे थे और धार्मिक दृष्टि से वे किसी एक धर्म के मानने वाले न थे तथा पश्चिम और दक्षिण भारत में बहुसंख्यक जैनधर्मावलम्बी भी हो गये थे।

इस काल में वैश्यवर्ग में भी नूतन रक्त संचार हुआ। छठीं शताब्दी के लगभग वे जैन और बौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण कृषि कर्म छोड़ चुके थे क्योंकि उत्तर भारत में उस समय कृषकों की अपेक्षा व्यापारिक वर्ग सम्माननीय समझा जाता था। इस काल में अनेक क्षत्रिय वैश्यवृत्ति स्वीकार करने लगे थे। कई जैन स्रोत्रों से मालूम होता है कि कुछ क्षत्रिय अहिंसा के प्रभाव से शस्त्र जीविका बदलकर व्यापार और लेन-देन वृत्ति करने लगे थे। इस युग में वैश्य लोग अनेक जातियों और उपजातियों में बंट गये थे। इस काल का जैन धर्म अधिकांशत व्यापारिक वर्ग के हाँथ में था। दक्षिण भारत में जैनधर्मानुयायों में अब भी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हैं पर प्रायः सभी व्यापार वृत्ति करते हैं। दक्षिण और पश्चिम भारत में धनिक व्यापारिक वर्ग के संरक्षण में जैंन धर्म बड़ा ही फूला-फला। अनेक जैन वैश्यों को राज्य कार्यों में सक्रिय सहयोग देने का अवसर मिला था और वे राज्य के छोटे-बड़े अधिकार पदों पर सुशोभित

हुए थे। अनेक जैन विभिन्न राज्यों के महामात्य और महादण्डनायक जैसे पदों पर भी प्रतिष्ठित हुए थे। दक्षिण और पश्चिम भारत के अनेक शिलालेख उनकी अमर गाथाओं को गाते हुए पाये गये हैं। मुश्लिम काल में भी जैन गृहस्थों के कारण जैनाचार्यों की प्रतिष्ठा कायम भी दिल्ली, आगरा और अहमदाबाद के कई जैन परिवारों का, उनके व्यापारिक सम्बन्धों एवं विशाल धनराशि के कारण, मुगल दरवारों में बड़ा प्रभाव था। राजपूत राज्यों में भी अनेक जैन सेनापति और मंत्रियों के महत्त्वपूर्ण पदों पर थे मुगलों से दृढ़तापूर्वक लड़ने वाले राणाप्रताप के समय के भामाशाह, आशाशाह और भारमल आदि प्रसिद्ध है। ईष्ट इण्डिया कम्पनी के समय में जगत्सेठ, सिंधी आदि विशिष्ट परिवार थे जो राजसेठ माने जाते थे और राज्यशासन में उनका बड़ा प्रभाव था।

राजकीय प्रतिष्ठा के साथ-साथ इस काल में जैन वैश्य बड़ा ही सुपठित और प्रबुद्ध था। जैनाचार्यो के समान ही वह भी साहित्य सेवा में रत था। इस काल में जैन गृहस्थों ने अनेकों ग्रन्थों की रचना भी की है। अपभ्रंश महाकाव्य पद्मचरित के रचयिता स्वयम्भू, तिलकमञ्जरी जैसे पुष्ट गद्य काव्य के प्रणेता धनपाल, कन्नड चामुण्डरायपुराण के लेखक चामुण्डराय, नरनारायणानन्द महाकाव्य के रचयिता वस्तुपाल, धर्मशर्माभ्युदयकार हरिश्चन्द्र, पंडित आशाधर अर्हद्दास, कवि मंडन आदि अनेक जैन गृहस्थ ही थे। जैनाचार्यो द्वारा अनेक ग्रन्थ प्रणयन कराने, उनकी प्रतियों को लिखाकर वितरण करने तथा अनेक शास्त्र भण्डारों के निर्माण कराने में जैन वैश्य

वर्ग का प्रमुख हाँथ रहा है।

(घ) साहित्यिक अवस्था-

आलोच्य युग के पूर्व गुप्तकाल संस्कृत साहित्य का स्वर्णयुग कहा जाता है। उस समय तक वाल्मीकिरामायण, महाभारत, अश्वघोष के काव्य वुद्धचरित एवं सौन्दरनन्द तथा कालिदास के रघुवंश, कुमारसम्भव आदि एवं प्राकृत के गाथासप्तशती एवं सेतुवंध आदि लिखे जा चुके थे और एक विशिष्ट काव्यात्मक शैली का प्रादुर्भाव हो चुका था तथा संस्कृत प्राकृत एवं अपभ्रंश में उत्तरोत्तर उच्चकोटि की रचनाएं होने लगी थी। तब तक ब्राह्मणों के मुख्य पुराण भी अन्तिम रूप धारण कर रहे थे। इस युग में काव्यों को शास्त्रीय पद्धति पर बाँधने के लिए भामह, दण्डि, रुद्रट प्रभृति विद्वानों के काव्यालङ्कार, काव्यादर्श आदि ग्रन्थों का प्रणयन हुआ। रीतिवद्ध शैली के इस युग में अनेक काव्यों की सृष्टि होने लगी थी जिनमें भारवि कृत किरातार्जुनीय, माघकृत शिशुपालवध, श्रीहर्षकृत नैषधीय-चरित वृहत्त्रयी के नाम से विख्यात है। शास्त्रीय पद्धति पर काव्य की अनेक विधाओं जैसे गद्य-काव्य, चम्पू, दूतकाव्य, अनेकार्थकाव्य, नाटक आदि की सृष्टि इस युग में हुई।

जैन विद्वानों ने भी इस युग की मांग को देखा। उनका धर्म-वैसे तो त्याग और वैराग्य पर प्रधान रूप से बल देता है। उनके शुष्क उपदेशों को बिना प्रभावोत्पादक ललित शैली के कौन सुनने को तैयार था?

जैन मुनियो को शृङ्गार आदि कथाओं को सुनने और सुनाने का निषेध था पर श्रावक वर्ग को साधारणतया इस प्रकार की कथाओं में विशेष रसोपलब्धि होती थी। युग की माँग के अनुरूप जैन विद्वद्वर्ग ने न केवल संस्कृत में बल्कि प्राकृत और अपभ्रंश में भी अनेक विध रचनाएं लिखी। जैन विद्वान स्वभावतः संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंस के विद्वान् थे। प्राकृत उनके धर्म ग्रन्थों की भाषा थी और सामान्य वर्ग तक पहुँचने के लिए वे अपभ्रंश में रचनाएँ लिखकर उसका विकास कर रहे थे तथा पंडित एवं अभिजात वर्ग से सम्पर्क के लिए संस्कृत में भी परम निष्णात थे। संस्कृत यथार्थतः उस काल तक पाण्डित्यपूर्ण विवेचनों और रचनाओं की भाषा वन गई थी। एतन्निमित्त जैनों ने न्याय व्याकरण, गणित, राजनीति एवं धार्मिक-उपदेशप्रद विषयों के अतिरिक्त आलङ्कारिक शैली में पुराण चरित एवं कथाओं पर गद्य एवं पद्य काव्य रूप में संस्कृत रचनाएं निर्मित की। साहित्य-निर्माण के क्षेत्र में जैनों का सर्वप्रथम ध्यान लोकरूचित की ओर रहा है इसलिए उन्होंने सामान्य जन भोग्य प्राकृति अपभ्रंश के अतिरिक्त अनेक प्रान्तीय भाषाओं-कन्नड़, गुजराती, राजस्थानी एवं हिन्दी आदि में ग्रन्थों का प्रचुर मात्रा में प्रणयन किया। जैनों के साहित्य-निर्माण कार्य में राजवर्ग और धार्मिक वर्ग की ओर से बड़ा प्रोत्साहन एवं प्रेरणा मिली थी। उसकी चर्चा हम कर चुके हैं।

(ङ) लेखन विधि-

जैन विद्वानों को लेखनकार्य में साधुवर्ग और समाज की ओर से

भी अनेक सुविधाएँ प्राप्त थीं। जब कोई विद्वान् नवीन ग्रन्थ रचने का प्रयास करता था तो वह एतन्निमित्त लकड़ी की पाटी या कपड़े पर शब्दों को लिखा करता था और उन शब्दों की व्युत्पत्ति पर एक-दूसरे से विचार-विमर्श करता था। शब्दों के उपयुक्त प्रयोगों के लिए प्राचीन कवियों के ग्रन्थों से नमूने लिए जाते थे और भावानुकूल रचना का निर्माण कर संशोधन-कर्ताओं से उसका संशोधन करा लिया जाता था। इस प्रकार ग्रन्थ के संशोधित रूप को पत्थर-पाटी-स्लेट अथवा लकड़ी की पाटी आदि पर लिखकर उसे सुलिपिकों द्वारा ग्रन्थरूप से लिखा लिया जाता था। ग्रन्थ रचना करते समय विशेष सूचना देने के लिए विद्वान् शिष्य और साधुगण सहायक रहते थे। कितनी वार विद्वान् उपासक भी इस प्रकार की सहायता करते थे।[८]

जैन काव्य साहित्य के निर्माण में मूल प्रेरणाएँ[९]–

(क) धार्मिक भावना–

पूर्व और उत्तर मध्यकाल की राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक परिस्थितियों तथा लेखन कार्य की सुविधाओं का प्रभाव हमारे आलोच्य युग के जैन काव्य साहित्य पर विशेष रूप से पड़ा। इस साहित्य को देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि जैन काव्यकारों का दृष्टिकोण धार्मिक था। जैन धर्म के आचार और विचारों को रमणीय पद्धति से एवं रोचक शैली से प्रस्तुत कर धार्मिक चेतना और भक्तिभावना को

जाग्रत करना उनका मुख्य उद्देश्य था। जैन कवियों ने काव्यों की रचना एक ओर स्वान्तः सुखाय हेतु की है तो दूसरी ओर कोमलमति जनसमूह तक जैनधर्म के उपदेशों को पहुँचाने के लिए की है। इसके लिए उन्होंने धर्मकथानुयोग या प्रभमानुयोग का सहारा लिया है। जन सामान्य को सुगम रीति से धार्मिक नियम समझाने के लिए कथात्मक साहित्य से बढ़कर अधिक प्रभावशाली साधन दूसरा नही है। उनकी कुछ रचनाओं को छोड़कर अधिकांश कृतियाँ विद्वद्वर्ग के लिए नहीं अपितु सामान्य कोटि के जनसमूह के लिए है। इस कारण से ही उनकी भाषा अधिक सरल रखी गयी जनता को प्रभावित करने के लिए अनेक प्रकार की जीवन घटनाओं पर आधारित कथाओं और उपकथाओं की योजना इन काव्य ग्रन्थों की विशेषता है। इन विद्वानों ने चाहे प्रेमाख्यानक काव्य रचा हो अथवा चरितात्मक, सभी में धार्मिक भावना का प्रदर्शन अवश्य किया है। इस धार्मिक भावना को प्रकट करने में उन्होंने जैनधर्म के जटिल सिद्धान्तों और मुनिधर्म सम्बन्धी नियमों को उतना अधिक व्यक्त नहीं किया है जितना कि ज्ञान-दर्शन-चरित्र के सामान्य विवेचन के साथ अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और परिग्रहस्वरूप सार्वजनिक व्रतों दान शील तप, भाव, पूजा, स्वाध्याय आदि आचरणीय धर्मो को प्रतिपादित किया है।

(ख) विभिन्न वर्ग के अनुयायियों की प्रेरणा-

त्यागी वर्ग- चैत्यवासी, वसतिवासी यति, भट्टारक में क्रिया काण्ड

विषयक भेदों को लेकर नये-नये गण-गच्छों का प्रादुर्भाव हुआ। उनके नायकों ने अपने-अपने गण की प्रतिष्ठा से भिन्न-भिन्न क्षेत्रों का विशेष रूप से भ्रमण करना शुरु किया। उन लोगों ने अपने उच्च चारित्र्य पांडित्य तथा ज्योतिष, तंत्र-मंत्रादि से तथा अन्य चमत्कारों से राजवर्ग ओर धनिक वर्ग को अपनी ओर आकर्षित करना प्रारम्भ किया तथा विभिन्न स्थलों पर चैत्य, उपाश्रय आदि धर्मायतनों की स्थापना करने लगे और अपने बढ़ते हुए शिष्य समुदाय की प्रेरणा से तथा अपने आश्रयदाताओं के अनुरोध से व्रत, पर्व, तीर्थादि महात्म्य तथा विशिष्ट पुरुषों के चरित्र वर्णन करने के लिए कथात्मक ग्रन्थों की रचना की ओर विशेष ध्यान दिया। इस युग के अनेक जैन कवियों को या तो राजाश्रय प्राप्त था या वे मटाधीस थे। राष्ट्रकूट अमोधवर्ष और उसके उत्तराधिकारियों के संरक्षण में जिनसेन और गुणभद्र ने महापुराण, उत्तरपुराण की, कुमार पाल के गुरु हेमचन्द्र ने त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित की तथा वस्तुपाल के आश्रय पर पश्चात्कालीन कई आचार्यों ने अनेक प्रकार से काव्य-साहित्य की सेवा की। अनेकों काव्य ग्रन्थों में विभिन्न स्रोतों से प्राप्त प्रेरणाओं का साभार उल्लेख भी मिलता है।

(ग) गच्छीय स्पर्धा–

यद्यपि त्यागी वर्ग को राज्य और धनिक वर्ग का आश्रय प्राप्त था तथापि उन्हे धन की इच्छा नहीं थी। उनसे प्राप्त सुविधा का उपयोग वे

अपनी गच्छीय प्रतिष्ठा और साहित्य-निर्माण में करते थे। काल की दृष्टि से पांचवी से दशवीं शताब्दी तक काव्यग्रन्थों का निर्माण उतनी तीव्र गति और प्रचुर मात्रा में नहीं हुआ जितनी कि ग्यारहवीं से चौदहवी शताब्दी तक। दसवी शताब्दी के पूर्व यदि कई विशाल एवं प्रतिनिधि रचनाएँ लिखी गई थी, तो दसवीं शताब्दी के बाद तीन सौ वर्षो में यह संख्या बढ़कर सैकड़ों के तादाद तक पहुँच गई। जैन विद्वानों में मानों उस समय कथा-साहित्य (प्राकृत में कथा और काव्य एक अर्थ में प्रयुक्त हुए है) की रचना करने में परस्पर बड़ी स्पर्धा हो रही थी। अमुक गच्छवाले अमुक विद्वान् ने अमुक नाम का कथाग्रंथ बनाया है यह जानकर या पढ़कर दूसरे गच्छ वाले विद्वान् भी इस प्रकार के दूसरे कथाग्रन्थ बनाने में उत्सुक होते थे। इस रीति से चन्द्रगच्छ, नागेन्द्रगच्छ, राजगच्छ, चैत्रगच्छ, पूर्णतल्लगच्छ, वृद्धगच्छ, धर्मघोषगच्छ, हर्षपुरीयगच्छ आदि विभिन्न गच्छ, जो कि इन शताब्दियों में विशेष प्रसिद्धि पाये थे और प्रभावशाली बने थे। इन प्रत्येक गच्छ के विशिष्ट विद्वानों ने इस प्रकार के कथा ग्रन्थों की रचना करने के लिए सबल प्रयत्न किये। इस युग में एक ही पीढ़ी के विभिन्न गच्छीय दो-दो तीन-तीन विद्वानों ने तिरसठ शलाका महापुरुषों के चरित्रों तथा व्रत मंत्र, पर्व, तीर्थमाहात्म्य प्रसंगों को लेकर एक ही नाम की दो-दो, तीन-तीन रचनाएँ लिखीं। लोककथा, नीतिकथा, परीकथा तथा पशु-पक्षी आदि हजारों कथाओं को लेकर इन्होंने विशालकाय कथाकोष ग्रन्थ भी लिखे।

(घ) ऐतिहासिक एवं समसामयिक प्रभावक पुरुष–

यद्यपि जैन कवि धनादि भौतिक कामनाओं से परे थे फिर भी कथात्मक साहित्य के अतिरिक्त जैन विद्वानों ने युग की परिणति के अनुकूल ऐतिहासिक और अर्द्ध-ऐतिहासिक कृतियों की रचना की। इन कृतियों में प्रायः ऐसे ही राजवंश या प्रभावक व्यक्ति की प्रशंसा या इतिवृत्त लिखा गया जिन्होंने जैनधर्म के विकास के लिए अपना तन, मन और धन सर्वस्व समर्पित कर दिया था। सिद्धराज जयसिंह, परमार्हत कुमारपाल, महामात्य्य वस्तुपाल झगडूशाह और पेथडशाह आदि उदारमना धर्मपरायण व्यक्ति थे जो किसी भी देश, समाज, जाति के लिए प्रतिष्ठा की वस्तु थे। जैन साधुओं ने उनके जैन धर्मानुकूल जीवन से प्रभावित होकर उन्हें अपने काव्यों का नायक बनाया और उनकी प्रशस्तियाँ लिखी। आचार्य हेमचन्द्र ने कुमारपाल के वंश की कीर्ति-गाथा में 'द्वयाश्रयकाव्य' का प्रणयन किया, वालचन्द्रसूरि ने वस्तुपाल के जीवन पर 'वसन्तविकास' एवं उदयप्रथसूरि ने धर्माभ्युदय काव्य की रचना की। इसी तरह प्रभावक आचार्यो और पुरुषों के नाम लघु निबन्धों के रूप में प्रबन्ध संग्रह, प्रवन्धचिन्ताभणि, प्रभावकचाति आदि लिखने की प्रेरणा मिली। ये कृतियां निकट अतीत या समसामयिक ऐतिहासिक पुरुषों के जीवन पर आधारित होने से तत्कालीन इतिहास जानने के लिए बड़ी ही उपयोगी हैं।

(ङ) धार्मिक उदारता, निष्पक्षता एवं सहिष्णुता–

साहित्य सेवा के क्षेत्र में जैनाचार्यो की नीति निष्पक्ष तथा धार्मिक उदारता से प्रेरित थी। उन्होंने अनेक कृतियाँ इन भावनाओं से प्रेरित होकर भी लिखी और पढ़ी तथा उनका संरक्षण किया। इस तरह हम देखते हैं कि अमरचन्द्रसूरि ने वायडनिवासी ब्राह्मणों की प्रार्थना पर 'बालभारत' की तथा नयचन्द्रसूरि ने 'हम्मीरमहाकाव्य' की रचना की। माणिक्यचन्द्र ने काव्यप्रकाश पर संकेत टीका लिखी तथा अनेक जैनेतर महाकाव्यों पर जैन विद्वानों ने प्रामाणिक टीकाएँ लिखी तथा अनेक जैनेतर काव्यग्रन्थों-पंचतन्त्र, वेतालपंचविंशतिका, विक्रमचरित, पंचदण्डछत्रप्रबन्ध आदि का प्रणयन किया। इतना ही नहीं, उनकी उदार साहित्य सेवा से प्रभावित हो अन्य धर्म और सम्प्रदाय के लोग उनसे अभिलेख साहित्य का निर्माण कराकर अपने स्थानों में उपयोग करते थे। यथा- चित्तौड़ के मोकलजी–मन्दिर के लिए दिगम्बराचार्य रामकीर्ति (वि०सं० १२०७) से प्रशस्ति लिखाई गई थी। इसी तरह राजस्थान की सुन्ध पहाड़ी के चामुण्डा देवी के मन्दिर के लिए वृहदच्छीय जयमंगलसूरि से और ग्वालियर के कच्छवाहों के मन्दिर के लिए यशोदेव दिगम्बर से और गुहिलोत वंश के घाघसा और चिर्वा स्थानों के लिए रत्नप्रभसूरि से शिलालेख लिखाये गये थे।[१०]

जैनकवियों की समालोचना–

मानव हृदय में अनादि काल से विद्यमान आसुरी वासना के समूल

नाश के लिए जैन महर्षियों ने एक मात्र साहित्य को साधन बनाया है और धर्म की स्थापना हेतु अपने त्यागी जीवन को लोकहित में समर्पित कर दिया। मनोरंजन को काव्य का उद्देश्य न मानने वाले इन जैन महर्षियों ने अपने अपूर्व प्रतिमा एवं महान सर्जनाशक्ति से अपने साहित्यिक विचार गंगा को प्रवाहित किया है।

जैनमनीषी एवं जैनाचार्य प्रारम्भ में प्राकृत भाषा में ही ग्रन्थ प्रणयन करते थे। प्राकृत जनसामान्य की भाषा थी, अतः लोकपरक सुधारवादी रचनाओं का प्रणयन आचार्यो ने प्राकृत भाषा में ही आरम्भ किया। भारतीय वाङ्मय के विकास में जैन आचार्यो द्वारा किये गये सहयोग की विटरनित्ज ने प्रशंसा करते हुए उल्लिखित किया है।[११]

I was not able to do full justice to the literary Achivement of the jainas but I hope to have shown that the jainas have cenfributed their full share to the riligious ethical and scienetific literature of ancient India

भारत के समस्त दार्शनिको ने दर्शनशास्त्र के गूढ और गहन ग्रन्थों का प्रणयन संस्कृत भाषा में आरम्भ किया। जैनाचार्य भी इस दौड़ में पीछे न रह सके। उन्होने प्राकृत के समान संस्कृत को अपनाकर अधिकार पूर्वक ग्रन्थो का प्रणयन आरम्भ किया।

डॉ० भोलाशंकर व्यास ने भी उल्लेख किया है–

'जैनों को अपना मत और दर्शन अभिजात वर्ग पर थोपने के साथ ही ब्राह्मण धर्म की मान्यताओं का खण्डन करने के लिए संस्कृत को चुनना

पड़ा।[१२]

काव्य निर्माण की दृष्टि से सामन्तभद्र ने सर्वप्रथम द्वितीय शताब्दी में स्तुतिकाव्य का सृजन किया और जैनों के मध्य संस्कृत भाषा में जैनकाव्य परम्परा का श्रीगणेश किया। अतः स्पष्ट है कि द्वितीय शताब्दी से प्रारम्भ होकर अट्ठारहवीं शती तक संस्कृत भाषा में जैन काव्य की परम्परा अविराम से चलती रही। संस्कृत काव्य के विकास काल में जैन कवियों ने जितने काव्य-ग्रन्थों का प्रणयन किया है, उससे कई गुने अधिक काव्यों की रचना ह्रासोन्मुख काल में किये गये है, यह उनकी परम विशेषता है।

इस तरह हम देखते है कि वाण की कादम्बरी की शैली पर धनपाल ने 'तिलकमञ्जरी' और ओऽयदेव वादीभसिंह ने 'गद्यचिन्तामणि', 'किरातार्जुनीय' और 'शिशुपाल' की शैली पर हरिचन्द्र ने 'धर्मशर्माभ्युदय और मुनिभद्रसूरि ने 'शान्तिनाथ चरित' और वस्तुपाल ने 'नरनारायणानन्द' और जिनपाल उपाध्यान ने सनत्कुमार चरित, जैसे प्रौढ़ काव्यों की रचना की। इसी प्रकार महाकवि कालिदास के कुमारसम्भव से प्रेरणा ग्रहण कर कवि जयशेखर सूरि ने अपने महाकाव्य 'जैनकुमारसम्भव' का प्रणयन किया है।

यह रीतिबद्ध शास्त्रीय महाकाव्यों की रचना के पीछे कालिदास, शारवि, बाण आदि महाकवियों की समकक्षता प्राप्त करने या वैसा ही यश प्राप्त करने या विद्वत्ता प्रदर्शन की भावना दृष्टिगत होती है।

संदर्भ :

१. जैनकुमार सम्भव– जयशेखर सूरि– प्रस्तावना, पृ० ८

२. धम्मिल्ल कुमार, प्रशस्ति– ६-११

३. जैन सस्कृत महाकाव्य, डॉ० सत्यव्रत, पृ० २२

४. जैन कुमार सम्भव– जयशेखर सूरि– प्रस्तावना, पृ० ९-१०

प्रबोधचिन्ताबिरद्धुतस्तथोपदेश चिन्तामणिरर्थपेशलः।

व्याधायि येजेनकुमारसम्भवाभिधानतः सूचितसुधासरोवरम्।। –धम्मिल कुमार चरित प्रशस्ति।।

५. विमलसूरि कृत पउमचरियं (५३० वि०सं०) तथा संघदास, धर्मदासगणिकृत बसुदेव हिन्दी (छठी शताब्दी पूर्व)

६. डॉ० दशरथ शर्मा अली चौहान डाइनेस्टी, पृ०- २२७-२२८

७. जैन साहित्य का इतिहास भाग-६, पार्श्वनाथ विद्यापीठ, बनारस उ०प्र०

८. प्रभावक चरित– हेमचन्द्राचार्य चरितम्

९ जैनसाहित्य का इतिहास भाग-६ पार्श्वनाथ विद्यापीठ, बनारस उ०प्र०

१०. जैन शिलालेख संग्रह, तृतीय भाग की प्रस्तावना (मा०दि०जै०ग्र०) मुम्बई १९५७।

११. The Jainas in the history of Indian Literature by Dr winter nitz Edited by jainvijaya muni, Ahmadabad 1946, Paze-4

१२ संस्कृत कवि दर्शन आमुख, पृ०-१९

तृतीय अध्याय
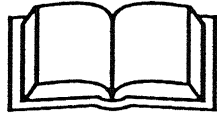
जैनकुमारसम्भव की कथा का मूल कथावस्तु तथा उस पर प्रभाव

जैनकुमारसम्भव की कथा का मूल, कथावस्तु तथा उस पर प्रभाव

महाकाव्य के कथास्तु का मूल–

जैनकुमारसम्भव की रचना सरस्वती की प्रेरणा से हुई है। इसके समर्थन में महाकवि श्री जयशेखर सूरि के शिष्य और इस काव्य के टीकाकार श्री धर्मशेखर सूरि जी ने अपने ग्रन्थ के प्रथम श्लोक की टीका करते हुए प्रमाण स्वरूप लिखा है कि श्री जयशेखर सूरि जी को स्तम्भ तीर्थ (खंभात) में ध्यानावस्था (समाधि) में बैठा हुआ देखकर श्री भारती ने कहा– हे प्रभो, निश्चिन्त मत बैठिये, मेरे कहने से "**अस्त्युत्तरस्यां दिशि कोशलेति**" तथा "**सम्पन्नकामां नयनाभिरामाम्**" इन पद्यों से अपने काव्य की रचना कीजिए। श्री धर्मशेखर सूरि ने मंगलाचरण में अपने गुरु श्री जयशेखर सूरि जी की स्तुति करते हुए "**यस्मै काव्ययुग प्रदान वरदा- श्री शारदादेवता**" इस विशेषण से विभूषित किया है और इस काव्य के अन्तिम श्लोक में 'वीणादत्तवरः' इस पद का उल्लेख किया है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सम्भवतः खंभा में कवि श्री का श्री भारती से वार्तालाप हुआ और कवि ने इसके परिणाम स्वरूप इस काव्य की रचना की। अतः स्पष्ट है कि इस काव्य की रचना स्तम्भतीर्थ (खंभात) में हुई।

सर्वप्रथम ब्राह्मण पुराणों में ऋषभदेव के कुछ प्रसंगों की स्पष्ट प्रतिध्वनि सुनाई देती है। ऋषभदेव के अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को अभिषिक्त

करके प्रव्रज्या ग्रहण करने, पुलडा के आश्रम में उनकी तपश्चर्या, भरत के नाम के आधार पर देश के नामकरण आदि ऋषभदेव के जीवनवृत्त की महत्त्वपूर्ण घटनाओं की आवृत्ति लगभग समान शब्दावली में कई प्रमुख पुराणों में हुई है।

भागवतपुराण[१] में श्री ऋषभदेव का चरित सविस्तार वर्णित है। इस पुराण में (५१३-६) नाभि तथा ऋषभ का जीवन चरित शुद्ध वैष्णव परिवेश में प्रस्तुत किया गया है। जिसके अनुसार ऋषभ का जन्म भगवान यज्ञ पुरुष के आग्रह का फल था। जिसके फलस्वरूप वे स्वयं सन्तानहीन नाभि के पुत्र के रूप में अवतीर्ण हुए।[२] आकर्षक शरीर, विपुल कीर्ति ऐश्वर्य आदि गुणों के कारण ऋषभ (श्रेष्ठ) नाम से ख्यात हुए। गार्हस्थ्य धर्म का प्रवर्तन करने के लिए उन्होंने इन्द्र की कन्या जयन्ती से विवाह किया और श्रौत तथा स्मार्त कर्मों का अनुष्ठान करते हुए उससे सौ पुत्र उत्पन्न हुए। महायोगी भरत उनमें श्रेष्ठ थे। उन्हीं के नाम पर 'अजनाभखण्ड' भारतवर्ष के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

ऋषभदेव के चरित का प्राचीनतम निरूपण जैन साहित्य उपांगसूत्र-जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में हुआ है। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[३] का संक्षिप्त विवरण ऋषभदेव चरित के कतिपय सूक्ष्म रेखाओं का आकलन है। उसमें आदि तीर्थंकर के धार्मिक तथा परोपकारी साधक स्वरूप को रेखांकित करने का प्रयत्न है। ऋषभ के सौ पुत्रों में भरत की ज्येष्ठता तथा उनके राज्याभिषेक का संकेत

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में भी किया गया है।

श्री ऋषभदेव के जीवन वृत्त के दो प्रमुख स्रोत हैं– जिनसेन का आदिपुराण (नवीं शताब्दी) तथा हेमचन्द्र का त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित (बारहवीं शताब्दी) इन उपजीव्य ग्रन्थों के फलक पर भिन्न-भिन्न शैली में ऋषभ का चरित अंकित है। त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित में सुमङ्गला के चौदह स्वप्नों तथा उनके फलकथन का क्रमशः एक-एक पद्य में सूक्ष्म संकेत है। श्री जयशेखरसूरि इस प्रसंग का निरूपण लगभग दो सर्गों में किया है। हेमचन्द्र और जयशेखर के मुख्य वृत्त का यह एक महत्त्वपूर्ण अन्तर है। किन्तु जयशेखर को इसकी प्रेरणा निःसन्देह हेमचन्द्र द्वारा वर्णित मरुदेवी के स्वप्नों तथा फलकथन से मिली थी।

यद्यपि यह सत्य प्रतीत होता है कि उपर्युक्त ग्रन्थ जैनकुमारसम्भव के आधार ग्रन्थ रहे है, किन्तु कालिदासीय कुमारसम्भव एवं जैन कुमारसम्भव के सूक्ष्म पर्यवेक्षण से यह निर्विवाद तथ्य प्रकट होता है कि जैन कुमारसम्भव भाव, कथानक की कल्पना, वस्तु वर्णन आदि दृष्टियों से कुमारसम्भव पर पूर्णरूपेण आश्रित है और कवि जयशेखर सूरि महाकवि कालिदास के अत्यधिक ऋणी है।

जैनकुमारसम्भव एवं उससे सम्बन्धित अन्य रचनाएं

जैनकुमारसम्भव की कथावस्तु (सर्गानुसार)–

जैनकुमारसम्भव ग्यारह सर्गों का महाकाव्य है और इसमें आदि

तीर्थकर स्वामी ऋषभदेव तथा उनके पुत्र भरत का जन्म वर्णन ही कवि का अभीष्ट विषय है। काव्य के आरम्भ में अयोध्या नगरी और उसके निवासियों की सम्पन्नता, धर्मनिष्ठा और शीलता का कवित्व पूर्ण शैली में प्रभावपूर्ण वर्णन किया गया है। कुबेर ने अपनी प्रिय नगरी अलका की सहचरी के रूप में अयोध्या नगरी का निर्माण किया था। अयोध्या के निवेश से पूर्व, जब यह देश इक्ष्वाकु भूमि के नाम से प्रसिद्ध था, ऋषभदेव राजा नाभि के पुत्र के रूप में अवतरित हुए थे।[४] इसी सर्ग के शेषांश में आदिदेव ऋषभ के शैशव, यौवन, रूपसम्पदा तथा यशः प्रसार का मनोरम चित्रण किया गया है।[५]

दूसरे सर्ग में इन्द्र ने नारद और तुम्वरू से अवगत होकर कि ऋषभदेव अविवाहित है, उन्हें वैवाहिक जीवन में प्रवृत्त कराने के लिए तत्काल अयोध्या प्रस्थान करते है।[६] इसी सर्ग में इन्द्र की यात्रा[७] और अष्टापद पर्वत का मनोरम चित्रण है।[८]

सर्ग तीन में इन्द्र भिन्न-भिन्न युक्तियों से ऋषभदेव को गार्हस्थ्य जीवन धारण करने के लिए प्रेरित करते है[९] और उनके मौन रहने पर इन्द्र उनकी सगी बहनों सुमङ्गला और सुनन्दा से उनका विवाह निश्चित करते है।[१०] इन्द्र देववृन्द को विवाह के आयोजन का आदेश देते है।[११] इसी सर्ग में वधुओं की देवियों द्वारा विवाह पूर्व सज्जा के उपरान्त ऋषभदेव के वधू गृह को प्रस्थान का वर्णन है। सम्पूर्ण देवता समूह विवाहोत्सव

में भाग लेने आता है फलस्वरूप यह स्थान स्वर्ग भूमि के अतिथि रूप में सुशोभित होता है।[१२] इसी में ऐरावत हाथी का वर्णन है।

चतुर्थ सर्ग के उत्तरार्द्ध एवं पञ्चम सर्ग के पूर्वार्द्ध में तत्कालीन वैवाहिक परम्पराओं का सजीव चित्रण है।[१३] स्वामी जी विवाहोपरान्त एक विजयी सम्राट की तरह घर वापस होते है।[१४] यहीं पर दश पद्यों में उन्हें देखने के लिए आतुर पुर-सुन्दरियों के संभ्रम का अत्यन्त सुरुचिपूर्ण वर्णन है।[१५] और इसी सर्ग में स्वामी जी वधुओं के शयन गृह में तत्वान्वेषी की भाँति प्रविष्ट होते है।[१६] सर्ग के अन्त में सुमङ्गला के गर्भधारण का संकेत इस रूप में दृष्टिगत होता है[१२]–

कौमार केलि कलनाभिरमुष्यपूर्व-
लक्षाः षडेकलवतां नयतः सुखाभिः।
आद्या प्रिया गरभमेणदृशामभीष्टं,
भर्तुः प्रसादमविनष्वरमाससाद।।

सप्तम सर्ग में सुमङ्गला के द्वारा देखे गये चौदह स्वप्नों का वर्णन है।[१८] जिसका फल जानने के लिए वह स्वामी जी के वास-गृह में जाती है।[१९]

सर्ग आठ में ऋषभदेव सुमङ्गला के असामयिक आगमन के सम्बन्ध में नाना प्रकार के तर्क करते हैं और स्वप्नों के विषय में अन्तर्मन से विचार करते है।[२०]

नवम् सर्ग में ऋषभदेव द्वारा सुमंगला का गौरव प्रशंसा[२१] और स्वप्न फल का विस्तृत वर्णन है। इसी सर्ग में स्वामी द्वारा 'तुम्हें चौदह विद्याओं से युक्त चक्रवर्ती पुत्र की प्राप्ति होगी' का तथा स्वप्न फलों को सुनकर सुमङ्गला के आनन्द विभोर होने का वर्णन है।

दशम् सर्ग में सुमङ्गला स्वामी जी की महिमा का वर्णन करती है तदुपरान्त वह अपने वासगृह में आती है।[२२] और वह स्वप्न फलों के विषय में अपने सखियों से सविस्तार वर्णन करती है।[२३]

एकादश सर्ग में इन्द्र सुमङ्गला के भाग्य की प्रशंसा करते है।[२४] तथा उसे विश्वास दिलाते हैं कि तुम्हारे पति का वचन असत्य नहीं हो सकता।[२५] समयानुसार तुम्हें पुत्र-रत्न की प्राप्ति होगी।[२६] उस बालक (भरत) के नाम से इस देश का नाम 'भारत' 'वाणी' भारती कहलायेगी।[२७] अन्ततः मध्याह्न वर्णन के साथ यह महाकाव्य समाप्त होता है।

महाकवि जयशेखर सूरि प्राप्त अन्य कृतियों की प्रेरणा–

श्री जयशेखर सूरि ने जैनकुमारसम्भव की रचना में जिन अन्य कृतियों से प्रेरणा प्राप्त की उनका संक्षिप्त वर्णन निम्नवत् है–

कुमारसम्भव (महाकवि कालिदास कृत)–

महाकवि जयशेखर सूरि कालिदास कृत कुमारसम्भव से सर्वाधिक प्रभावित है फलस्वरूप उनके सर्वाधिक ऋणी है। दोनों महाकाव्यों के तुलनात्मक

अध्ययन से यह तथ्य भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है कि कथानक की परिकल्पना, घटनाओं के संयोजन तथा काव्य रुढ़ियों के अनुपालन में श्री जयशेखर सूरि ने कुमारसम्भव से प्रेरणा या दाय ग्रहण की है।

कुमारसम्भव के हृदयग्राही हिमालय वर्णन की तरह ही महाकवि ने जैनकुमारसम्भव का आरम्भ अयोध्या के मनोरम वर्णन से किया है। कालिदास की यथार्थता एवं सरस शैली का अभाव होते हुए भी जयशेखर ने अयोध्या का प्रभावपूर्ण वर्णन किया है।[२८] कुमारसम्भव और जैनकुमारसम्भव के प्रथम सर्ग में क्रमशः पार्वती तथा ऋषभदेव के जन्म से यौवन तक जीवन के पूर्वार्द्ध का निरूपण है। कुमारसम्भव में पार्वती के सौन्दर्य का यह वर्णन सहजता यथार्थता और मधुरता के कारण संस्कृत काव्यों में प्रतिष्ठित है। जयशेखर द्वारा ऋषभदेव के यौवन का वर्णन, यद्यपि उस स्तर का नहीं है फिर भी रुचिकर है।[२९]

कुमारसम्भव के दूसरे सर्ग में तारकासुर से पीड़ित देवता उस संकट के निवारणार्थ इन्द्र के नेतृत्व में ब्रह्म की स्तुति करते है। उसी तरह जैनकुमारसम्भव में इन्द्र, ऋषभदेव को विवाधर्म प्रेरित करने हेतु अयोध्या आते है।[३०]

कुमारसम्भव के सप्तम सर्ग पार्वती के विवाह-पूर्व की श्रृंगार वर्णन से जैनकुमारसम्भव में सुमङ्गला के पूर्व का श्रृंगार वर्णन पूर्णतः प्रभावित है।[३१]

कुमारसम्भव में केवल एक पद्य में हिमालय के पुरोहित द्वारा पार्वती को पति के साथ धर्माचरण की शिक्षा दी गयी है, जबकि जैनकुमारसम्भव में इन्द्र और शची द्वारा क्रमशः वर और वधू को अलग-अलग शिक्षा दी गयी है।[३२] कुमारसम्भव में विवाह पश्चात् शंकर जी पार्वती का हाथ पकड़कर कौतुकागार में प्रविष्ट कराते है। उसी प्रकार जैनकुमारसम्भव में ऋषभदेव वधुओं का हाथ पकड़कर मणिमय महल में तत्वान्वेषी की तरह प्रविष्ट करते है।[३३]

कुमारसम्भव के आठवें सर्ग में कालिदास ने शिव-पार्वती के सम्भोग का उन्मुक्त वर्णन किया है, जो अत्यन्त आकर्षक एवं रंगीला है परन्तु जयशेखर सूरि ने सम्भवतः रुढ़िगत जैनादर्शों के कारण एक ऐसा वर्णन अपने हाथ से गवाँ दिया है, जो अत्यन्त आवश्यक था। उनके नायक ऋषभदेव अनासक्त भाव से काम-क्रीड़ा में प्रवृत्त होते है, वे सुमङ्गला को पूर्वजन्म का भोक्तव्य मानकर उनके साथ शयन करते है।[३४]

कुमारसम्भव में वर्णित पौर नारियों के सम्भ्रम के चित्रण का पूर्ण प्रभाव जैनकुमारसम्भव पर पड़ा है।[३५]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जयशेखर सूरि की यह कृति कुमारसम्भव से सर्वाधिक प्रभावित है और इसके लिए श्री जयशेखर कालिदास के ऋणी है।

जैनकुमारसम्भव पर पुराणों का प्रभाव-

जैनकुमारसम्भव के नायक स्वामी ऋषभदेव है। भरतचरित के कुछ

प्रसंगों की स्पष्ट प्रतिध्वनि ब्राह्मण पुराणों में सुनाई देती है। स्वामी द्वारा अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को अभिषिक्त करके प्रव्रज्या ग्रहण करने, पुलडा के आश्रम में उनकी तपश्चर्या, भरत के नाम के आधार पर देश का भारतवर्ष नामकरण इत्यादि ऋषभदेव के जीवनवृत्त की महत्त्वपूर्ण घटनाओं की आवृत्ति लगभग समान शब्दावली में कई पुराणों में हुई है।[३६]

श्रीमद्भागवत् के अनुसार ऋषभदेव का जन्म भगवान यज्ञ पुरुष के अनुग्रह का फल था, फलस्वरूप वे स्वयं सन्तानहीन नाभि के पुत्र के रूप में अवतरित हुए। आकर्षक शरीर, विपुलकीर्ति, ऐश्वर्य आदि गुणों के कारण ऋषभ (श्रेष्ठ) नाम से विख्यात हुए। गार्हस्थ्य धर्म का प्रवर्तन करने के लिए उन्होंने स्वर्गाधिपति इन्द्र की कन्या जयन्ती से विवाह किया और श्रोत तथा स्मार्त कर्मों का अनुष्ठान करते हुए उससे सौ पुत्र उत्पन्न हुए। जिसमें महायोगी भरत ज्येष्ठ थे उन्हीं के नाम पर 'अजनाभ-खण्ड' भारतवर्ष के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[३७] ऋषभदेव के जीवनवृत्त के दो मुख्य स्रोत हैं– जिनसेन का आदिपुराण (नवीं शताब्दी) तथा हेमचन्द्र का त्रिषष्ठिशलाका पुरुष (बारहवीं शती)।

आदि पुराण का प्रभाव–

जिनसेन के आदिपुराण से भी जैनकुमारसम्भव प्रभावित है। जिनसेन द्वारा चार विशाल पर्वों (१२-१५) में जिनेन्द्र के सम्पूर्ण चरित का मनोयोग पूर्वक निरूपण किया गया है। आदिपुराण का यह प्रकरण विद्वता

प्रदर्शन तथा काव्यात्मक गुणों के आग्रह के कारण उच्च विन्दुओं का स्पर्श करता है।[३८]

आचार्य जिनसेन ने भरत के गर्भ में आने पर यशस्वी रानी के पांच महास्वप्नों का वर्णन किया है–

"अथान्यदा महादेवी सौधे सुप्ता यशस्वति।
स्वप्नेऽपश्यन् महीं ग्रस्तां मेरूं सूर्य च सोडुपम्।।
सरः सहंसमब्धिं च चलद्वीचिकमैक्षत।
स्वप्नान्ते च व्यवुद्धासौ पठन् मागधनिःस्वनैः।।"[३९]

अथान्तर किसी समय यशस्वती महादेवी राजमहल में सो रही थीं। सोते समय उसने स्वप्न में ग्रसी हुई पृथिवी, सुमेरू पर्वत, चन्द्रमासहित सूर्य, हंससहित सरोवर तथा चञ्चल लहरों वाला समुद्र देखा, स्वप्न देखने के बाद मंगल पाठ पढ़ते हुए बन्दीजनों के शब्द सुनकर वह जाग पड़ी। उस समय वन्दीजन इस प्रकार मंगल पाठ कर रहे थे–

"त्वं विवुध्यस्व कल्याणि कल्याणशतभागिनी।
प्रवोधसमयोऽयं ते सहाब्जिन्या धृतश्रियः।।
मुदे तवाम्व भूयासुरिमे स्वप्नाः शुभावहाः।
महीमेरुदधीन्द्वर्कसरोवरपुरस्सरा।।[३]"

अर्थात् हे दूसरों का कल्याण करने वाली और स्वयं सैकड़ों कल्याणों को प्राप्त होने वाली देवी, अब तू जाग क्योंकि तू कमलिनी के

समान शोभा धारण करने वाली है– इसलिए यह तेरा जागने का समय है। तात्पर्यतः जिस प्रकार यह समय कमलिनी के जागृत-विकसित होने का है, उसी प्रकार तुम्हारे जागृत होने का भी है। हे मातः पृथिवी, मेरु, समुद्र, सूर्य, चन्द्रमा और सरोवर आदि जो अनेक मंगल करने वाले शुभ स्वप्न देखे है वे तुम्हारे आनन्द के लिए हों।

इत्यादि विभिन्न प्रकार से वन्दीजनों द्वारा तीव्र स्वरों से मंगल पाठ किये जाने से वह यशस्वती महादेवी जगाने वाले दुन्दुभियों के शब्दों से धीरे-धीरे निद्रारहित हुई और शय्या छोड़कर प्रातः काल का मंगल स्नान कर प्रीति से रोमांचित शरीर हो अपने देखे हुए स्वप्नों का यथार्थ फल पूछने के लिए भगवान् वृषभदेव के समीप पहुँचकर निवेदन किया। तदन्तर दिव्य नेत्रों वाले भगवान वृषभदेव ने उन स्वप्नों का फल इस प्रकार कहा–

"त्वं देवि पुत्रमाप्तासि गिरीन्द्राचक्रवर्त्तिनम्।
तस्य प्रतापितामर्कः शास्तीन्दुः कान्ति संपदम्।।
सरोजाक्षि सरोदृष्टेरसौ पङ्कजवासिनीम्।
वोढा व्यूढोरसा पुष्यलक्षणाङ्कितविग्रहः।।
महीग्रसनतः कृष्स्नां महीं सागर वाससम्।
प्रतिपालयिता देवि विश्वराट् तव पुत्रकः।।
सागराच्चरमाङ्गोऽसौ तरिता जन्मसागरम्।

ज्यायान् पुत्रशतस्यायमिक्ष्वाकुकुलनन्दनः।।[४१]"

अर्थात् हे देवि, स्वप्नों में जो तूने सुमेरु पर्वत देखा है उससे मालूम होता है कि तेरे चक्रवर्ती पुत्र होगा। सूर्य उसके प्रताप को और चन्द्रमा उसकी कान्ति रूपी सम्पदा को सूचित कर रहा है। हे कमलनयने, सरोवर के देखने से तेरा पुत्र अनेक पवित्र लक्षणों से चिह्नित शरीर होकर अपने विस्तृत वक्षःस्थल पर कमलवासिनी-लक्ष्मी को धारण करने वाला होगा। हे देवि, पृथिवी का ग्रसा जाना देखने से मालूम होता है कि तुम्हारा वह पुत्र चक्रवर्ती होकर समुद्ररूपी वस्त्र को धारण करने वाली समस्त पृथिवी का पालन करेगा और समुद्र देखने से प्रकट होता है कि वह चरमशरीरी होकर संसार रूपी समुद्र को पार करने वाला होगा। इसके सिवाय इक्ष्वाकु-वंश को आनन्द देने वाला वह पुत्र तेरे सौ पुत्रों में सबसे ज्येष्ठ पुत्र होगा। इस प्रकार पति के वचन सुनकर उस समय वह देवि हर्ष के उदय से ऐसी वृद्धि को प्राप्त हुई थी जैसे कि चन्द्रमा का उदय होने पर समुद्र की वेला वृद्धि को प्राप्त होती है जैनकुमारसम्भव में चौदह स्वप्नों तथा स्वप्नों के महाफलों का विस्तृत विवेचन किया गया है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि स्वप्न फल विवेचन के लिए जयशेखर ने आदि पुराण से प्रेरणा ग्रहण की है।

यद्यपि कवि जयशेखरसूरिजी का कालिदास कृत कुमार सम्भव की भांति जैनकुमार सम्भव का उद्देश्य कुमार (भरत) के जन्म का वर्णन

करना है किन्तु जिस प्रकार कुमार सम्भव के प्रामाणिक अंश (प्रथम आठ सर्ग) में कार्तिकेय का जन्म वर्णित नहीं है वेसे ही जैन कवि के महाकाव्य में भी भरत कुमार को जन्म का उल्लेख कही नहीं हुआ है। किन्तु आदिपुराण के पञ्चदर्श पर्व के १४०वें श्लोक में पुत्र (भरत) के जन्म का वर्णन हैं–

नवमासेष्वतीतेषु तदा सा सुषवे सुतम्।
प्राचीवार्कं स्फुरत्तेजः परिवेषं महोदयम्।।[४२]

और भगवान वृषभदेव के जन्म समय में जो शुभ दिन, शुभ लग्न शुभ योग, शुभ चन्द्रमा और शुभ नक्षत्र आदि पड़े थे वे ही शुभ दिन आदि उस समय भी पड़े थे अर्थात् उस समय, चैत्र कृष्ण नवमी का दिन, मीन लग्न ब्रह्मयोग, धनु राशि का चन्द्रमा और उत्तराषाढ़ा नक्षत्र था। उसी दिन महादेवी ने सम्राट के शुभ लक्षणों से शोभायमान ज्येष्ठ पुत्र उत्पन्न किया था। वह पुत्र अपनी दोनों भुजाओं से पृथिवी का आलिंगन कर उत्पन्न हुआ था इसलिए निमित्तज्ञानियों ने कहा था कि वह सभस्त पृथिवी का अधिपति अर्थात् चक्रवर्ती होगा। इस प्रकार उस पुत्र का नाम भरत रखा गया।

प्रमोदभरतः प्रेम निर्भरा वन्धुता तदा
तमाह्वद् भरतं भावि समस्तभरताधिपम्।।[४२]

तथा इतिहास के जानने वालों का कहना है कि जहाँ अनेक आर्य

पुरुष रहते हैं ऐसा यह हिमवत् पर्वत से लेकर समुद्र पर्यन्त का चक्रवर्तियों का क्षेत्र उसी 'भरत' पुत्र के नाम के कारण भारत वर्ष के नाम से प्रसिद्ध है।

"तन्नाम्ना भारतं वर्षमिति हासीज्जनास्पदम्।
हिमाद्रे रासमुद्राच्च क्षेत्रं चक्रभृतामिदम्।।[४३]"

इस प्रकार आदि पुराण में 'भरत' के जन्म तथा बड़ा होकर उसके चक्रवर्ती होने का वर्णन है। किन्तु जैनकुमार सम्भव में कुमार जन्मादि का वर्णन नहीं है।

त्रिषष्ठिशलाका पुरुष का प्रभाव–

आचार्य हेमचन्द्र विरचित त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित से भी जैनकुमार-सम्भव पूर्णतः प्रभावित प्रतीत होता है। त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित में ऋषभचरित का अनुपात से हीन, किन्तु सरस वर्णन किया गया है, हेमचन्द्र ने, जिस प्रकार ऋषभदेव चरित का प्रतिपादन किया है[४४], उसमें जिन जन्म के प्रस्तावना स्वरूप मरुदेवी के स्वप्न दर्शन-सहित ऋषभदेव के पूवार्द्ध में आदि पर्व के द्वितीय सर्ग के लगभग पाँच सौ श्लोकों का निगरण कर लिया है। जयशेखर ने कथानक के पल्लवन तथा प्रस्तुतीकरण में कतिपय अपवादों को छोड़कर बहुधा त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित का अनुगमन किया है। दोनों में इतना आश्चर्यजनक साम्य है कि जैन कुमार सम्भव त्रिषष्ठिशलाका के आदि पर्व को सामने रखकर लिखा गया प्रतीत होता है। वस्तुतः जयशेखर ने कथानक

का स्थूल स्वरूप ही त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित से ग्रहण किया है। प्रत्युत विभिन्न प्रसंगों में उसके असंख्य भावों तथा वर्णनों को आत्मसात करके काव्य की प्रकृति के अनुरूप उसे प्रौढ़ शैली तथा परिष्कृत भाषा में प्रस्तुत किया है।[९५] हेमचन्द्र तथा जयशेखर के मुख्य वृत्त में केवल एक महत्त्वपूर्ण अन्तर है। त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित में सुमङ्गला के चौदह स्वप्नों तथा उसके फलकथन का क्रमशः एक-एक पद्य में सूक्ष्म संकेत है। जयशेखर ने इस प्रसंग का निरूपण दो सर्गो में किया है।[९६] जैन साहित्य में ऋषभदेव चरित का प्राचीनतम निरूपण उपांगसूत्र जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में हुआ है। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति का संक्षिप्त विवरण ऋषभदेव चरित की कतिपय सूक्ष्म रेखाओं का आकलन है।[९७] उसमें आदि तीर्थकर के धार्मिक तथा परोपकारी साधन स्वरूप को रेखांकित करने का प्रयत्न है। ऋषभ के सौ पुत्रों में भरत की ज्येष्ठता तथा उनके राज्याभिषेक का संकेत जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में भी किया गया है।[९८]

इस प्रकार हम देखते है कि यद्यपि जैनकुमारसम्भव अन्यान्य अनेक कृतियों से प्रभावित है, तथापि कथावस्तु नेता, रस, छन्द, अलंकार इत्यादि की दृष्टि से कुमारसम्भव से ही पूर्णतः प्रभावित है।

संदर्भ :

१. तस्य 'ह' वा इत्थं वर्ष्मणा .. ..चौजसा वलेनश्रिया यशसा ... . . ऋषीः इतीदं नामचकार। भागवतपुराण– ५.२ ४

२. येषां खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठः श्रेष्ठगुणः आसीद्ये नेदंवर्ष भारतमीति व्यपदिशन्ति। वही, ५.४.९

३. पद्मराया पदजिण केवली पदमतित्थकरे पदमधम्मवर चकवटी समुप्पाइज्जितथा १, जम्बूद्वीप प्रशस्ति सूत्र ३५

४. जैन कुमार सम्भव– १/१६–१७

५. वही, १/१८–७७

६. वही, २/३

७. वही, २/६

८. वही, २/३०, ४६

९. वही, ३/३५

१०. वही, ३/३८

११. ३/४०–४१

१२. ४/३१

१३. ५/३६

१४. ५/३७–४६

१५. ६/४०–४५

१६. ६/२३

१७. ६/७४

१८. जैन कुमार सम्भव– ७/२४-५१

१९. वही, ७/७०

२०. वही, ७/४९-५९

२१. वही, ९/२-२७

२२. वही, १०/२-२३

२३. वही, १०/३०-८४

२४. वही, ११/२२

२५. वही, ११/३१/३२

२६. वही, ११/३३

२७. वही, ११/४३

२८. कुमार संभव– १.१-१६, १, जैन कुमार संभव– १.१-१६

२९. कुमार संभव– १.२०-४९, जै० कु० सं०– १.१७-६०

३०. वही, २.३.१५, जै० कु० सं०– १.२.४९-७३

३१. वही, ३.१.१३, जै० कु० सं०– २.३.१-३६

३२. वही, ७ ७.२४, वही, ३ ३.६०-८१, ४.१४-३२

३३. वही, ७.९५, १ वही, (१) ६.२३

३४. वही, सर्ग ८, २. वही, ६.२६

३५. वही, ७-५६-५२, ३. वही, ३.५.३७-४५

चतुर्थ अध्याय
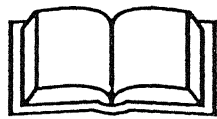
पात्रों का विवेचन

नायक–

किसी महाकाव्य का नायक वह मूल व्यक्तित्व होता है जिसके चारों ओर सम्पूर्ण कथा चक्कर लगाती रहती है और फलागम की प्राप्ति हेतु सतत प्रयत्नशील रहती है। वस्तुतः नायक के अभाव में महाकाव्य की परिकल्पना तक नहीं की जा सकती। अनेक अलङ्कारिकों ने अपने-अपने महाकाव्य स्वरूप निर्धारण ने नायक के अभ्युन्नति को महाकाव्य को प्रमुख तत्त्व के रूप में स्वीकार किया है। आचार्य विश्वनाथ ने 'साहित्यदर्पण' और आचार्य दण्डी ने 'काव्यादर्श[1] में इस सन्दर्भ का स्पष्ट उल्लेख किया है। जिसमें साहित्यदर्पण के अनुसार महाकाव्य का नायक धीरोदात्तादि गुणों से युक्त सद्वंश क्षत्रिय या देव होता है[2]।

सस्कृत के प्रापणार्थक अर्थात् (नी+ण्वुल) नी धातु में ण्वुल प्रत्यय के योग से नायक शब्द और णिच् प्रत्यय जोड़ने से नेता शब्द की व्युत्पत्ति होती है।

नायक कौन है? इस प्रश्न के समाधान में आचार्य विश्वनाथ कहते हैं[2]– नायक वह है जो त्यागी, महान कार्यो का कर्ता बुद्धि वैभव से सम्पन्न रूप यौवन और उत्साह से परिपूर्ण निरन्तर उद्यमशील, जनता का स्नेह भाजन और तेजस्वरूप तथा सुशीलवान हो। यही बात दशरूपक में भी कहा गया है–

नेता विनीतो मेधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः
रक्तलोकः शुचिर्वाग्भी रुढवंशः स्थिरो युवा।
बुद्ध्युत्साहस्मृति प्रज्ञा कलामान समन्वितः
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्र चक्षुश्च धार्मिकः।।[३]

जयशेखसूरि कृत जैनकुमारसम्भव महाकाव्य का नायक धीरोदात्त नायक के गुणों से युक्त है। जैसा कि कवि ने अपने महाकाव्य में नायक के गुणों के विषय में सङ्केत किया है कि उसमें अनिवार्य रूप में दाता कुलीन, मधुरभाषी तेजस्वी, वैभवशाली योगी तथा मोक्षकामी आदि गुणों से युक्त होना चाहिए। काव्य नायक का यह स्वरूप काव्यशास्त्र के नायक स्वरूप विधान से अधिक भिन्न नहीं है साहित्य दर्पण में भी धीरोदात्त नायक का गुण इस प्रकार वर्णित है–

अविकत्थनः क्षमावानातिगम्भीरो महासत्त्वं।
स्थेयान्निगूढमानो धीरोदात्तो दृढ़व्रतः कथितः।।[४]

अर्थात् धीरोदात्त नायक आत्मश्लाधा की भावनाओं से रहित क्षमावान अतिगंभीर, दुःख-सुख में प्रकृतिस्थ, स्वभावतः स्थिर और स्वाभिमानी किन्तु विनीत होता है। जैसा कि जैनकवि ने नायक के गुणों का वर्णन किया है जिसमें अन्तिम दो गुण योगी और मोक्षकामी निवृत्तवादी विचारधारा से प्रेरित है, यही इनकी साहित्यदर्पणकार से भिन्नता भी है। यथा जैनकुमारसम्भव में स्वामी ऋषभदेव गर्भावस्था में ही ऋतज्ञान से युक्त है–

यो गर्भगोऽपि व्यमुचन्न दिव्यं

ज्ञानत्रयं केवल संविदिच्छुः।

विशेषलाभं स्पृहयन्नमूलं

स्वं संकटेप्युज्झति धीरवुद्धिः।।

मध्येनिशं निर्भर दुःख पूर्णा-

स्ते नारका अप्यदधुः सुखायम्।।

यत्रोदिते शस्तमहोनिरस्त-

तमस्ततौ तिग्मरुचीव कोकाः।।

निवेश्य यं मूर्धनि मन्दरस्या

चलेशितुः स्वर्णरुचिं सुरेन्द्राः।।

प्राप्तेऽभिषेकावसरे किरीट-

मिवानुवन्मानवरत्नरूपम्।।[५]

गर्भावस्था में ही वे विज्ञान से सम्पन्न तथा कैवल्य के अभिलाषी थे। उनके जन्म से जगतीतल के क्लेश इस प्रकार विलीन हो गये जैसे- सूर्योदय से चकवों का शोक तत्काल समाप्त हो जाता है। उनकी शैशवकालीन निवृत्ति से काम को अपने अस्त्रों की अमोघता पर सन्देह हो गया। मादक यौवन को धारण करते हुए भी उन्होंने अपने मन को ऐसे वश में कर लिया जैसे- कुशल अश्वारोही उच्छृंखल घोड़े को नियन्त्रित करता है-

पुरा परारोहपरा भवस्या,-

वश्याः कशाकष्टमदृष्टवन्तः

बबन्धिरेऽनेन वलात्-कुरंगा

इवोल्ललसन्तः शिशुना तुरङ्गाः[६]।।

भगवान ऋषभदेव का यथार्थ निरूपण करना वृहस्पति के लिए भी सम्भव नहीं था–

"रुपसिद्धिमपि वर्णयिंतु ते लक्षणकार न वाक्पतिरीशः"

(२) स्वामी जी मृदुभाषी थे। उनकी वाणी के माधुर्य के सम्मुख अमृत नीरस प्रतीत होता था। ब्रह्मा ने चन्द्रमा का समूचा सार (अमृत) उनकी वाणी में समाहित कर दिया था–

वैधवं ननु विधि......

सारमत्र सकलं भवद्गिरि।

पूणिमोपचितदेहमन्यथा,

तं कथं व्यथयति क्षमा मयः[७]।।

(३) स्वामी जी प्रतिभावान तथा दानी थे। उनके अविराम औदार्य के कारण कल्पवृक्ष की दान वृत्ति अर्थहीन हो गयी थी। वे अनुपम यशस्वी थे। उनकी कीर्ति का पान करके देवगण अमृत के माधुर्य को भूल जाते थे–

स्वर्गायनैः स्वर्गिपतेः सभाया,-
माविष्कृते कीर्त्यमृते तदीये।
तत्पानतस्तृष्यति नाकिलोके,
सुधा गृहीतारमृते मुधाभूत।।
मेरौ नमेरूद्रुतले तदीयं,
यशो हयास्यैरूपवोध्यमानम्।
श्रौतुं विशालाऽपि सुरैः समैतैः,
संकीर्णतां नन्दनभूरलम्भिः[८]।

स्वामी ऋषभदेव जी लक्ष्मी जी को अपने वश में कर लिया था।

पद्मानि जित्वा विहिताऽस्य तृग्भ्यां,
सदा स्वदासी ननु पद्मवासा।
किमन्यथा सावसथानि याति,
तत्प्रेरिता प्रेमजुषामखेदम्[९]।।

(४) काम देव के अमोध वाण स्वामी जी पर निष्फल हो गये थे-

दृष्ट्वा जगत्प्राणहृतोऽपि सर्व-
सहे स्वहेतीस्त्वयि नाथ मोद्याः।
अनंगतां कामभटोऽस्य मुख्यः,
सखा विषादानुगुणां दधाति।।[१०]

भगवान् ऋषभदेव लोकोत्तर ज्ञानवान नायक है वे त्रिलोकों के रक्षक, त्रिकाल के ज्ञाता और त्रिज्ञान के धारक है–

पातुस्त्रिलोकं विदुषस्त्रिकालं,
त्रिज्ञानतेजो दधतः सहोत्थम्।
स्वाभिन्नतेऽवैमि किमप्यलक्ष्यं,
प्रश्नस्त्वयं स्नेहलतैकहेतुः।।[११]

महाकवि जयशेखर सूरि द्वारा ऋषभदेव के समस्त गुणों का समाहार इस प्रकार किया गया है–

वयस्यनंगस्य वयस्यभूते भूतेश रुपेऽनुपमस्वरूपे।
पदींदिरायां कृतमन्दिरायां, को नाम कामे विमनास्त्वदन्यः।।[१२]
स एव देवः स गुरुः स तीर्थं,
स मङ्गलं सैष सखा स तातः।
स प्राणितं स प्रभुरित्युपासा,-
मासे जनैस्तद्गतसर्वकृत्यैः।।[१३]
अन्यया ऋषभदेव सदगुण-ग्रामगानपरया रयागता।
लभ्यते स्म लघु तामुपासिंतु, किम न किन्नरवधूस्वशिष्यताम्।।[१४]

१. कुलीन, २. शीलवत, ३. वयस्थ, ४. शोचवन्त, ५. संततव्यय, ६. प्राप्तिवन्त, ७. सुराग, ८. सावयन्वत्, ९. प्रियवद, १०. कीर्तिवन्त, ११. त्यागी, १२. विवेकी, १३. श्रृङ्गारवन्त, १४. अभिमानी, १५. श्लाघ्यवन्त,

१६. समुज्जवलवेष, १७. सकलकलाकुशल, १८. सत्यवन्त, १९. प्रिय, २०. अवदान, २१. सुगन्धप्रिय, २२. सुवृत्तमन्त्र, २३. कोशसह, २४. पृदग्ध-पथ्य, २५. पण्डित २६. उत्तमसत्व, २७. धार्मित्व, २८. महोत्साही, २९. गुणाग्रही, ३०. सुपात्रग्राही, ३१. क्षमी तथा ३३. परिभावुकशचेति लौकिक इत्यादि प्रकार से वर्णन किया है।

नायिका

(ख) सुमंगला-सुनन्दा-

जैनकुमारसम्भव महाकाव्य की नायिका के रूप में सुमंगला एवं सुनन्दा का वर्णन तृतीय सर्ग से लेकर एकादश सर्गांत तक है। तृतीय सर्ग के छव्वीसवे श्लोक में इन्द्र कृत प्रभु प्रशंसा के वर्णन प्रसंग में बताया गया है कि सुमंगला का जन्म प्रभु के साथ होगा और प्रभु उसे पत्नी के रूप में स्वीकार करेंगे।

त्वयैव याऽभूत्सहभूरिभूमि- स्तमोविलास्येसुमंगलेति[१]।
राकेव सा केवलभास्वरस्य, कलाभृतस्ते भजतांप्रियात्वम्।।[१५]

सुनन्दा के अभिवृद्धि होने के विषय में कहते हैं-

''अवीवृधद्यां दधदंकमध्ये, नाभिः सनाभिर्जलधेर्महिम्ना[१६]
प्रिया सुनन्दापि तवास्तु सा श्री-र्हरेरिवारिष्टनिषूदनस्य।''

पुनः इन्द्र कहते है कि हे नाथ! मैं जानता हूँ कि इस सुमंगला

और सुनन्दा के परिणय के अवसर पर स्वर्ग के विमान से आये हुए द्वारपाल द्वारा उसकी रक्षा की जायेगी। जिसपर देवता भी होगे।

कन्ये इमे त्वय्युपयच्छमाने, जाने विमानैस्त्रिदिवेषुभाव्यम्।
भूपीठ संक्रान्त सकान्तदेवै-रेकैकदौवारिक रक्षणीयैः।।[१७]

तत्पश्चात् इन्द्र द्वारा स्वामी ऋषभदेव के विवाह के प्रस्ताव रखने पर मौन रूप से स्वामी जी द्वारा स्वीकार कर लेने पर शादी की तैयारी शुरु हो जाती है और तीसरे सर्ग में देवांगनाओं द्वारा सुमंगला के शरीर शृङ्गार का वर्णन है। जिसमें इन्द्राणी और उनकी चतुर सखियों द्वारा सुगन्धित तैललेपन, वस्त्राभूषण आदि के द्वारा संजाया जाता है।

महाकवि जमशेखरसूरि द्वारा सुमंगला-सुनन्दा के वर्णन प्रसङ्ग में उनके गुणों का स्पष्ट सङ्केत किया गया है। उनका शरीर अत्यन्त सुन्दर है तथा पवित्र भावनाओं वाली, उत्तम गोत्र वाली, मेघ के तुल्य केश समूह वाली तथा कमल के समान मुखों वाली हैं। उनके कुच युगल पर कामदेव को क्रीड़ा करता हुआ वताया गया है। श्वेत, निर्मल एवं मनोहर वस्त्र को धारण करने पर वे स्फटिक के मियान में सुनहरी तलवार लिए हुए कामदेव व रति के तुल्य दृष्टिगत होती हैं।

"तनुस्तदीया.......मनोभवस्य"। ३/६८

साहित्यदर्पण में वर्णित नायिका भेद विश्लेषण के अनुसार इसे मुग्धा

नायिका के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

चौथे सर्ग में देवांगनाओं द्वारा विवाह कार्यक्रम सम्बन्धित परस्पर वार्ता के उपरान्त तथैव क्रियान्वित होता हुआ लौकिक विधि-विधान से विवाह सम्पन्न होता है और पाँचवे सर्ग के प्रारम्भ में कन्या का हाथ वर (ऋषभदेव) के हाँथ में प्रदान कर दिया जाता है।

> वज्रिणा द्रुतमयोजि कराभ्यं, कन्ययोरथकरः करुणाब्धेः।
> तस्य हृत्कलयितुं सकलाङ्गा-लिंगनेऽपि किलकौतुकिनेव।।[१८]

कन्या-विवाह अवसर पर अनेक देवताओं द्वारा कन्या को दान दिया जाता हैं यथा इन्द्राणी द्वारा स्वर्ण कलश अद्भुत वस्त्रादि को प्रदान किया जाता है-

> ''एणदृग्द्वमुदस्य मधोनी, वासवश्च.........कांचन कुंभाम्।[१९]

वह सुमंगला पतिव्रत को धारण करने वाली, मोक्षकामी लौकिक काम प्रवृत्ति से विमुख एवं अलौकिक काम प्रवृत्ति वाली, है जिसके साथ भगवान ऋषभदेव पूर्वजन्म के उपार्जित भोगस्वरूप अनासक्त भाव से भोग क्रिया में संलग्न हुए-

> ''भोगार्हकर्मध्रुववेद्यमन्य-जन्मार्जितं स्वं स विभुर्विवुध्य।
> मुक्त्येककामोऽप्युचितोपचारै-रभुङ्क्त ताभ्यां विषयानसक्तः''।।[२०]

विभिन्न प्रकार रति-विलास करने के उपरान्त सुमंगला गर्भधारण करती

है–

''कौमारकेलिकलनाभिरमुष्य पूर्व-लक्षाः षडेकलवतां नयतः सुखाभिः।
आद्या प्रिया गरभमेणदृशामभीष्टं, भर्तुः प्रसादमविनश्वर माससाद''।।[२१]

अपने स्फठिक भवन में निवास करती हुई सुमंगला एक दिन निद्रावस्था में चौदह प्रकार के स्वप्नों का दर्शन करती है। जो क्रमशः इस प्रकार है– यमराज के समान हाँथी, कैलास के समान सींग वाला वृषभ, सिंह, लक्ष्मी, अतुलनीय पुष्पमाला, चांदनी से युक्त मुख में प्रवेश करता हुआ चन्द्रमा, हृदय रुपी कमल को विकसित करता हुआ सूर्य, ध्वज, कुम्भ, पद्म-सरोवर, सागर, आकाश में स्थित देवविमान, दुर्लभ रत्न राशि, कान्तियुक्त अग्नि ये चौदह स्वप्न देखे गये। जो इस प्रकार वर्णित हैं–

१. दन्त दंड से सुशोभित उठे हुए शुण्डा दण्ड के कारण उन्नत अत्यधिक भार के कारण पृथ्वी के भंग हो जाने के भय से युक्त ऐस मन्द गमन करने वाले गण्डशैल से स्पर्धा करने वाले कपूर के समान श्वेत कुम्भस्थल को धारण करने वाले, मद की गन्ध से आकर्षित भ्रमरों वाले श्रेष्ठ गजराज को उस सुमंगला ने देखा[२२]

२. उस शौभाग्यशालिनी सुमंगला ने गर्जना करते हुए वलशाली पवित्रपूण्य को मानों प्राप्त करते हुए चारों चरणों की चारूता वाले नदी को रोकने की सामर्थ्य वाले, तट पर मिट्टी उत्खात् की लीला वाले कैलाश के समान मानों श्रृंग वाले कूवड़ से युक्त उस वृषभ को

देखा।[२३]

३. जिसके सघनता से पूँछ के द्वारा प्रहार किये जाने के फलस्वरूप पृथ्वीतल को प्रकम्पित करने वाला, विशाल गुफा के अन्दर सिंहनाद के कारण भयंकर शब्द उत्पन्न करने वाला तत्काल विदीर्ण हुए हाँथी के कुम्भस्थले से टूटती हुई उस मृगासी सुमंगल ने स्वप्न में सिंह को देखा।[२४] ७/२८, २९

४. अक्षय द्रव्य समूह के कारण परिपुष्ट पेट वाली और शीलादि गुणों को धारण करती हुई, अपने शरीर की किरणों के द्वारा स्वर्ण आभूषण को विनष्ट करती हुई (तिरस्कृत करती हुई) नेत्र, मुख, हाँथ, पैर आदि आश्रय भूत समझकर उस सुमंगला का लक्ष्मी ने आश्रय लिया। उसके किनारे के भाग के द्वारा उस सुमंगला को लक्ष्मी ऐसा समझकर उसका आश्रय लिया।[२५]

५. सुगन्ध के लोभ से भ्रमरों के द्वारा आवेष्ठित ऐसे स्त्री के भुजा में पाश के समान लिप्त अतएव पुण्यशाली एवं कण्ठ में पहनने योग्य, पारिजात के सुगन्ध से युक्त विश्व का अभीष्ट अनुपम पुष्प निर्मित माला को सुमंगला ने प्रत्यक्ष रूप से देखा।[२६]

६. जो देवताओं के समान चकोर की प्रीति अर्थात् अमृत के समान प्रीति प्रदान करने वाले, रोहिणी के समान रात्रि के द्वारा पति के रूप में प्राप्त किये गये कामुक के समान कमलिनी के द्वारा जिसके

ज्योत्सना रूप सार का उपभोग किया गया ऐसे अमृत के समान किरणों वाले चन्द्रमा को मुख में प्रवेश करते हुए उस सुमंगला ने देखा।[२७]

जो लोक के समस्त अंधकार को दूर करने वाले हैं और अंधकार को गुफाओं के गहवर में फेकते हुए, कमल के वनों के संकोच को त्याग कराते हुए या खिलाते हुए घूक के समान दृष्टि प्रदान करते हुए तारकावली से लिए गये प्रकाश को दिशाओं में स्थापित करते हुए, कमल की कान्ति चुरा लेने वाले ऐसे सूर्य को सुमंगला ने स्वप्न में स्मरण किया।[२८]

जिसने अखण्ड रूप से दण्ड के द्वारा बाँधे जाने पर भी अपनी स्वाभाविक चंचलता को नही छोड़ा, क्षुद्र घंटिकाओं द्वारा क्वणन शब्द की घोषड़ा के समान मानों शब्द करते हुए, रज के भय के कारण मानों आकाश में अपना स्थान बनाने वाले पताकाओं ने सुमंगला की प्रीति रूप नर्तकी को नचाने के निमित्त रंगमंच के आचार्य या रंगाचार्य का आचरण किया।[२९]

मुख पर धारण किये गये कमल में स्थित भवरों के शब्द के वहाने मानों प्रीति को उत्पन्न करते हुए स्त्री समूह के द्वारा मस्तक भाग में धारण करने के विषय में संसार के लोग जिसके साक्षी हैं समृद्धि के अपहारक अर्थात् (कुम्भ द्वय को) हृदय में धारण करते हो, ऐसे कुम्भ

को उस सुमंगला ने (स्वप्न में) देखा।[३०]

कमल के सुगन्ध से युक्त पक्ष में- लक्ष्मी जिसमें प्रसन्न होती थी, अनेक पक्षियों के द्वारा शब्दायमान पक्ष में- अनेक कवियों के द्वारा कहे गये गीत आदि द्वारा विस्तारित कीर्ति वाले वृत्ताकार (वृक्षों के) पंक्तिवाला, उपभोग योग्य वृक्षों के आश्रय वाला, पक्ष में- सुन्दर वर्ण वाले चमकते हुए तरङ्ग समूह के द्वारा विश्व का उपकार करने वाले ऐसे व्यवहार गृह के समान सरोवर को उस सुमंगला ने देखा।[३१]

वायु के द्वारा उठाये गये बड़ी-बड़ी तरङ्गों के द्वारा जहाँ पर्वत नीचे कर दिये गये थे पृष्ठ भाग को ऊपर उठाने के कारण जहाँ पाठीन नामक विशेष प्रकार के मछलियों के द्वारा द्वीप का भ्रम उत्पन्न कर दिया गया था कहीं-कहीं त्रिप्ति मेघों के द्वारा पानी पिया जा रहा था ऐसे समुद्र को उस मृगाक्षी सुमंगला ने देखकर विष्मय को प्राप्त हुई।[३२]

मानों उसमें से सूर्य विम्ब प्रकट हो रहा हो तथा वह तेज का जन्म स्थान और रत्नाचल के समान चलनशील हो मानों उसके भार से स्वर्ग च्युत हो रहा हो, देवताओं की स्त्रियाँ जिसमें खेल करती हुई रत्नों की भित्ति जिसके प्रकाश मय किरणों से अंधकार दूर फेंक दिया जाता हो तथा आकाश में लग्न या नक्षत्र की तरह शुशोभित होने वाले। ऐसे विमान को उस सुमंगला ने (स्वप्न में) अपनी नेत्रों का अतिथि बनाया या दर्शन किया।[३३]

इसी प्रकार सुमंगला स्वप्न में विभिन्न लक्षणों से युक्त रत्न राशि और कान्ति युक्त अग्नि को भी देखा।[३४]

उपर्युक्त स्वप्नों को देखकर वह अत्यन्त भयभीत हो गयी और वह उसी समय असमय में ही पति (ऋषभदेव) के मणिमय निवास गृह में जाती है। सुमंगला को असमय आते हुए देखकर भगवान ऋषभदेव बड़े सोच-विचार में पड़ जाते हैं और सुमंगला के विषय में नाना प्रकार की कल्पनाएं करने लगते है। परन्तु सुमंगला द्वारा स्वप्नों का यथावत् वर्णन करने पर भगवान ऋषभदेव स्वप्न विचार करते है तथा उसकी महत्ता का वर्णन करते हैं कि हे विचक्षण सुमंगला उत्तम फल देने में समर्थ यह स्वप्न हमारे हृदय को हर्ष से उल्लसित कर दिया है।[३५] इस प्रकार उसकी महिमा का वर्णन करते है। इसके पश्चात् नवें सर्ग में उन चौदह स्वप्नों में प्रत्येक का फल निर्देश करते है– पृथ्वी पर चार पैरों वाले वृषभ के रूप में प्रतिष्ठित तुम्हारा पुत्र सहस्त्र वोधी सुभट अर्थात् योद्धा और सेना के सम्मुख ऐरावत हाँथी के समान होगा तथा रणभूमि में सिंह के समान धन सम्पत्ति में कल्पवृक्ष के तुल्य और पुष्पमाला-कीर्ति रूपी सुगन्ध से चारों दिशाओं को व्यक्त करता हुआ, हमेशा पृथ्वी को हर्षित करते हुए चन्द्रमा के समान सुन्दर जैसे चन्द्रमा अनेक कला समूह से युक्त होता है। सूर्य के समान तेज वाला होगा।[३६]

इस प्रकार पति ऋषभदेव के द्वारा "स्वप्न फल" को सुनने के बाद

वह अत्यन्त हर्षित होती है तथा उनके वाणी की माहिमा का वर्णन करती हैं।[३७] तदुपरान्त दशवें सर्ग में ही गर्भिणी सुमंगला के विषय में उनकी सखियों के बीच आलाप-प्रत्यालाय होता है! फिर एकादश सर्ग में इन्द्र का आगमन होता है और उनके द्वारा सुमंगला की प्रशंसा की जाती हैं। इन्द्र कहते है कि हे सुमंगला-तुम्हारा पुत्र 'भरत' नाम धारण करेगा तथा यह पृथ्वी (उसी के नाम से) 'भारती' के नाम से विख्यात होगी जिसका वह स्वामी होगा।

"आस्मिन दधाने भरता भिधान-
मुपेष्यतो भूमिरियं च गीश्च।
विद्वद्भुवि स्वात्मनि भारतीति,
ख्यातौ मुदं सत्प्रभुक्ताभजन्माम्।।[३८]"

तदुपरान्त इन्द्र का प्रस्थान होता है और इन्द्र के चले जाने पर सुमंगला दुःखी हो जाती है। इसके बाद सुमंगला का सखियों द्वारा स्नानादि कराया जाता है तथा काव्य समाप्त हो जाता है।

इस प्रकार सुमंगला सुन्दर गुणों से युक्त, पति के प्रति स्नेह, आगन्तुकों के प्रति भक्ति भाव, सखियों के प्रति स्नेह रखने वाली, पति पर पूर्ण भरोसा रखने वाली, धर्मनिष्ठ, बुद्धिमान, अतिसुन्दर यशस्वी पुत्र प्राप्त करने वाली, धैर्य धारण करने वाली आदि गुणों से युक्त होकर काव्य की मुख्य नायिका के रूप में प्रतिष्ठित होती हैं।

उपर्युक्त ग्रन्थ में नायिका को शास्त्रीय दृष्टिकोण से मुग्धा नायिका की श्रेणी में रखा जा सकता है।

(ग) इन्द्र–

इस महाकाव्य में कथा सहायक के रूप में उपस्थित इन्द्र रूपी पात्र का आगमन मुख्य कथा को आगे बढ़ाने में सहायक होता है। द्वितीय सर्ग में इन्द्र के द्वारा भगवान ऋषभदेव की स्तुति की जाती है।

> ''गुणास्तवाकोदधिपारवर्तिनो, मतिः पुनस्तच्चमायकी
> अहो महाधाष्टर्य मियं यदीहते, जडाशया तत्क्रमणं कदाशया''
> ''मनोऽणु धंर्तु................गुणामृतार्थिनी।''
> सुद्रुमाद्यामुपमां स्मरंति...........करोतिमाम्।।''
> अनंगरूपो...........सुरद्रुमायसे।।
> इदं हि षटखण्डमवाप्य..........भूतनिग्रहे।।[३१] इत्यादि

इस तरह इन्द्र द्वारा प्रभु ऋषभदेव की स्तुति करके पांचवों सर्ग के प्रारम्भ में वे ऋषभदेव की प्रसंसा करते हैं। उनसे प्रार्थना विवाह हेतु किया जाता है। ऋषभदेव के मौन धारण करने पर 'मौनं स्वीकृत लक्षणं, इस सिद्धान्त के अनुसार उन्हें विवाह हेतु तैयार समझकर विवाह की तैयारी किया जाता है और पुनः चौथे सर्ग में इन्द्र द्वारा भगवान ऋषभदेव के शरीर श्रृङ्गार का वर्णन किया जाता है और पांचवें सर्ग में इन्द्र के द्वारा प्रभु के विवाह क्रियान्वयन में सहयोग किया जाता है और उसी में इन्द्र

वर (ऋषभदेव) को उनके वैवाहिक जीवन से सम्बन्धित कर्तव्यों की शिक्षा प्रदान करता है।

"त्वं परां नृषु यथा चसि कोटिं स्त्रीष्वि में अपि तथा प्रथितेतत्।
प्रेम्णि वीक्ष्यं धनतां जनता वः स्थैर्यमावहतु दंपतिधर्मे।।"

प्राप्तकालमिति..............प्रथमनाथनवोढ़े।।

यस्य दास्यमपि..........भवत्यौ।।

देवदेवद्धदि.........वामपि कामम्[४०]

इत्यादि प्रकार से वर-वधू को शिक्षा[१] प्रदान किया जाता है।

पुनः एकादश सर्ग में इन्द्र का आगमन होता है उनके द्वारा गर्भिणी सुमंगला की प्रशंसा की जाती है।

"सूते त्वया पूर्वदिशात्र भास्व-
त्युल्लासिनेत्राम्बुजराजि यत्र।
दृष्टामृताघ्राणसुखं वपुर्मे-
सरस्यते तद्दिनमर्थयेऽहम्।।"
"प्राप्ता भुवं.........अपिबोधितारः।।"
"अस्मिन्न मयैकासन........लक्षयितामरोधः।।"
"अस्मिन्नसिव्यगृकरे.........गुरुतां तथान्ये।"[४१]

इत्यादि श्लोकों द्वारा सुमंगला की प्रशंसा की जाती है।

इसके बाद इन्द्र का प्रस्थान होता है। इस प्रकार इस काव्य में इन्द्र का आगमन देवता और मनुष्य दोनों रूपों में होता है। वे लौकिक कर्म काण्डों के ज्ञाता है तथा लौकिक जीवन में धारण करने योग्य धर्मो के उपदेष्टा है और देवता के रूप में वे भूत-भविष्य के जानकार है। मनुष्य के रूप में ऋषभदेव तथा सुमंगला की प्रसंसा और स्तुति करते हैं।

इस तरह से इस महाकाव्य में इन्द्र रूपी पात्र का आगमन एक महत्त्वपूर्ण भूमिका रखता है।

(घ) सची (इन्द्र की पत्नी इन्द्राणी)–

इस महाकाव्य में इन्द्र की पत्नी सची (इन्द्राणी) का आगमन थोड़े समय के लिए होता है। पाँचवें सर्ग के अन्त में सुमंगला को विवाहोपरान्त पति धर्म पालन करने के लिए सची द्वारा उपदेश दिया जाता है। वे कहती है कि हे सुनन्दा तथा सुमंगला जिस प्रभु ऋषभदेव का दास बनना भी दुर्लभ है उनका आप लोग पत्नी हो रही हैं जिसकी पूजा प्राप्त करने में समर्थ व्यक्ति के भाग्य का वर्णन करने में भला कौन समर्थ होगा?–

> ''यस्य दास्यमपि दुर्लभमन्यै-
> स्तत्प्रिये बत युवां यदभूतम्।।
> भाग्यमेतदलमत्र-भवत्योः,
> कः प्रवक्तुमलमत्रभवत्योः।।[४२]''

कर्ण गुरुवचन सुनने के लिए, मुख सत्यवचन वोलने के लिए, हृदय में पति भक्ति भाव लिए हुए, हाथ याचकों को दान देने के लिए है इस प्रकार के आभूषणों को ब्रह्मा ने स्त्री के लिए वताया है–

श्रोत्रयोर्गुरुगिरां श्रुतिरास्ये, सुनृतं हृदि पुनः पतिभक्तिः
दानमर्थिषु करे रमणीना- मेष भूषण विधिर्विधि दत्तः।।

स्त्री को चंचलता त्यागने का उपदेश देती हुई कहती है[४३]–

सुभ्रुवा सहजसिद्धमपास्यं, चापलं प्रसवसद्मः विपत्तेः।
ये कूलकविनाश्मनिपाता-द्वीचर्योऽव्रुधिभुवोऽपिविशीर्णा।[४४]

अर्थात् चञ्चलता कुल का विनाशक है।

इसी विषय में आगे कहती है–

चापलेऽपिकूलमूर्ध्नि पताका, तिष्ठतीहृदि मास्म निधत्तम्।
प्राप सापि वसतिं जनबाह्यां, दंड संघटनया दृढवद्धा[४५]।।

जो स्त्री औचित्य गुणों से युक्त होकर पतिभक्ति से अपने पति को अपने वश में कर लेती है उस मृग के तुल्य नेत्रों वाली स्त्री की जड़ी-बूटी तथा मन्त्र-तन्त्र किस काम का है सभी भ्रमस्वरूप है–

''अस्ति संवननमात्मवशं चे-दौचिती परिचिता- पतिभक्ति
मूलमन्त्र मणिभिर्मृनेत्रा-स्तद्भ्रमन्ति किमु विभ्रमभाजः।[४६]''

तात्पर्य यह है कि पतिभक्ति रूपी गुणों से[१] परिचित स्त्री के लिए तन्त्र-मन्त्र की कोई आवश्यकता नही है! पतिव्रत का वर्णन करते हुए कहती है–

"मास्य तप्यतः तपः परितक्षीन् मा तन्मतनुभिर्वतकष्टैः।
इष्ट सिद्धिमिह विन्दति योषि-चेन्न लुम्पति पतिव्रतमेकम्।।[४७]

शील रूपी रत्न की महत्ता का वर्णन करती हुई[२] कहती है–

"उग्रदुर्ग्रहमभंगमयत्न-प्राप्ययाभरणमस्ति नशीलम्।
चेत्तदा वहति काञ्चनरत्नै-र्वीवधं मृदुपलैर्महिलाकिम्।।[४८]
"माज्जितोऽपि घनकज्जलपङ्के, शुभ्र एवं परिशीलतशीलः।
स्वर्धुनीसलिल धौत शरीरो-ऽप्युच्यते शुचिरूचिर्न कुशीलः।।
कष्टकर्म नहि निष्फलमेतच्चेत नावदुदितं न वचो यत्
शीलशैलशिखरादवपातः, पातकापयशसोर्वनितानाम्।।[४९]"

इस तरह से सुनन्दा और सुमंगला तुम स्त्री[४] भूषण रूपी गुणों का उपार्जन करने का यत्न करो–

तद्युवापि तया प्रयतेथां, स्त्रैणभूषण गुणार्जन हेतोः
येन वां प्रति दधाति समस्तः, स्त्रीगणोगुणविधौगुरुवुद्धिम्।।[५०]

इस प्रकार वर वधू को उपदेश देकर समस्त देव समूह देवलोक को चले जाते हैं यहाँ सची को एक उपदेष्टा अर्थात् गुरु के रूप में

दर्शाया गया है। जिस कार्य में वे पूरी तरह से सफल हुई हैं। इस महाकाव्य में सहायक पात्रों के रूप में अनेक पात्रों का चित्रण नहीं मिलता बल्कि दो ही पात्र सहायक के रूप में दर्शाये गये हैं।

संदर्भ :

१. चतुरोदात्त नायक ----- काव्यादर्श– १/१५

सर्गवन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।

सदवंशः क्षत्रियां वापि धीरोदात्त गुणान्वितः।

एकवंश भवाभूपा कुलजा वहवो पि वां।।

२. त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रुपयौवनौत्साही।

दधोनुरक्ता लोकस्तेजो वैदग्धय शीलवान्नेता।। –साहित्यदर्पण तृतीय परि०का०– ३०

३ दशरुपक– पृ०–१०९

४. साहित्यदर्पण– ३/३२

५. जै०कु०सं०– १/१८–२१

६. जै०कु०सं०– १/३६

७. वही ५/५६

८. वही, १/६९–७०

९. वही, १/५७

१०. वही, ३/११

११. वही, ८/१९

१२. वही, ३/२४

१३. वही, १/७३

१४. वही, १०/६८

१५ वही, ३/२६

१६ वही, ३/२७

१७ वही, ३/२८

१८ वही, ५/१

१९ वही, ५/११

२० वही, ६/२६

२१. वही, ६/७४

२२. वही, ७/२४-२५

२३ वही, ७/२६-२७

२४. वही, ७/२८-२९

२५ वही, ७/३०-३१

२६ वही, ७/३२-३३

२७. वही, ७/३४-३५

२८. वही, ७/३६-३७

२९ वही, ७/३८-३९

३०. वही, ७/४०-४१

३१. वही, ७/४२-४३

३२. वही, ७/४४-४५

३३. वही, ७/४६-४७

३४ वही, ७/४८-५१

३५. वही, ८/५५-६०

३६ वही, ९/१-५१

३७. वही, १०/४-१६

३८. वही, ११/४३

३९. वही, २/५०-५४

४०. वही, ५/६७-७०

४१. वही, ११/३८-५० तक

४२. वही, ५/६९

४३. वही, ५/७१

४४. वही, ५/७२

४५ वही, ५/७३

४६. वही, ५/७४

४७. वही, ५/७७

४८. वही, ५/७८

४९. वही, ५/७९

५० वही, ५/८३

पंचम अध्याय
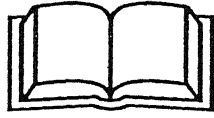
जैनकुमारसम्भव में रस, छन्द, अलङ्कार, गुण एवं दोष

जैनकुमारसम्भव में रस विवेचन–

रस क्या है?

नाट्य शास्त्र में भरत ने सर्वप्रथम रस को ब्रह्मानन्द स्वरूप मानते हुए कहते है–

"रसो वै ब्रह्म।"

अर्थात् रस ब्रह्मानन्द स्वरूप है।

रस भारतीय साहित्य का प्राणिधायक तत्त्व है और सम्पूर्ण भारतीय साहित्य रस पर आधृत है।

आचार्य भरत ने रस को एक सिद्धान्त रूप में प्रस्तुत किया है जिसे रस सूत्र कहा जाता है–

"विभावानुभावव्यभिचारी संयोगाद् रस निष्पत्तिः"

अर्थात् विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारिभावों के संयोग से व्यक्त होने वाले स्थायिभाव को रस कहते है।

उपर्युक्त 'रससूत्र' की व्याख्या में उत्तरवर्ती आचार्यों ने १. उत्पत्तिवाद २. अनुमितिवाद ३. भुक्तिवाद ४. अभिव्यक्तिवाद इन चार सिद्धान्तों का प्रणयन किया, जिसके प्रणयनकर्ता क्रमशः भट्टलोल्लट, आचार्य शंकुक, आचार्य भट्टनायक और आचार्य अभिनवगुप्त हैं। इन सिद्धान्तों की व्याख्या यहाँ अप्रासंगिक है। आचार्य भरत ने रसों की संख्या को अपने ग्रन्थ में निम्न प्रकार से निर्दिष्ट किया है–

"शृङ्गार हास्य करुणरौद्र वीर भयानकाः।

वीभत्सादभुतसंज्ञौचेत्यष्टौनाट्येरसाः स्मृताः।।"

अर्थात् शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स और अद्भुत आठ रसों का निर्देश है।[१]

काव्याप्रकाशकार आचार्य मम्मट केवल आठ रस मानते हुए कहते है–

"शृङ्गार हास्य करुण रौद्र वीर भयानकाः।

वीभत्साद्भुत संज्ञां चेत्यष्टौ नाट्ये रसाःस्मृताः।।"[२]

अर्थात् शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स और अद्भुत कुल आठ रस है। यह कारिका मूल रूप से भरत मुनि के नाट्य शास्त्र की कारिका है मम्मट ने उसे ज्यों का त्यों उतार लिया है।

(क) स्थायिभाव–

"रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा।

जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायिभावाः प्रकीर्तिताः।।"[३]

इसके अतिरिक्त काव्यप्रकाशकार नवां स्थायिभाव भी माना है–

"निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः।"

इस प्रकार नौ स्थायिभाव और उनके अनुसार १. शृङ्गार २. हास्य ३. करुण ४. रौद्र ५. वीर ६. भयानक ७. वीभत्स ८. अद्भुत ९. शान्त ये नौ रस माने गये हैं।

ये स्थायिभाव मनुष्य के हृदय में स्थायी रूप से सदा विद्यमान रहते है इसलिए स्थायिभाव कहलाते हैं। सामान्य रूप से अव्यक्तावस्था में रहते है, किन्तु जब जिस स्थायिभाव के अनुकूल विभावादि सामग्री प्राप्त हो जाती है तब वह व्यक्त हो जाता है और रस्यमान या आस्वाद्यमान होकर रसरूपता को प्राप्त हो जाता है।

यहाँ विभाव, अनुभाव, सात्विक भाव और व्यभिचारी भावों पर संक्षेप में दृष्टि डालना प्रासंगिक है–

(ख) विभाव-

"ज्ञायमानतया तत्र विभावो भावपोषकृत्।
आलम्वनोद्दीपनत्वप्रभेदेन स चद्विधा।।"[४]

अर्थात् उन रस के उद्भावकों में विभाव वह है जो स्वयं जाना हुआ होकर स्थायीभाव को पुष्ट करता है। वह आलम्बन और उद्दीपन के भेद से दो प्रकार का होता है।

यथा– यह दुष्यन्त आदि ऐसा है अथवा यह शकुन्तला आदि ऐसी है।

(ग) अनुभाव–

"अनुभावों विकारस्तु भावसंसूचनात्मकः"[५]

अर्थात् रति आदि भावों को सूचित करने वाला विकार शरीर आदि का परिवर्तन अनुभाव है भ्रूविक्षेप सहित कटाक्षादि। उदाहरण– हे मुग्धे,

रोमाञ्चयुक्त ऊपर मुख किये जम्भाई लेकर, स्तनतट को ऊपर उभार कर, भ्रूलता को चञ्चलता से घुमाकर स्वेद जल के द्वारा भीगे शरीर से लाज को बहाकर तुमने स्पृहापूर्वक जिसके मुख पर क्षीर-सागर के फेन पटल के समान श्वेत कटाक्षों की छटा विखेरी है, वह अनोखा धन्य है।

(घ) भाव–

"सुख दुःखादिकैर्भावैर्भावस्तद्भवभावनम्।।"[६]

अर्थात् सुख-दुःख आदि भावों के द्वारा सहृदय के चित्त को भावित कर देना ही भाव कहलाता है। जैसा कि नाट्य शास्त्र में कहा गया है– अहो इस रस या गन्ध से सव भावित या वासित हो गया है। ये भाव स्थायी तथा व्यभिचारी दो प्रकार के होते है।

(ङ) सात्विक भाव–

"पृथग्भावा भवन्त्यन्येऽनुभावत्वेऽपि सात्विकाः
सत्त्वादेव समुत्पत्तेस्तच्च तद्भावभावनम्।।[७]"

अर्थात् अन्य जो सात्विक है यद्यपि में अनुभाव ही है तथापि पृथक रूप से भाव कहलाते है क्योंकि इनकी 'सत्त्व' से ही उत्पत्ति हुआ करती है सत्त्व का अर्थ है किसी भाव से भावित होना। दूसरे के हृदय में स्थित दुःख और हर्ष की भावना में प्रायः उसी प्रकार के हृदय वाला हो जाना सत्त्व कहलाता है। सात्त्विक भाव आठ प्रकार के होते है–

"स्तम्भप्रलय रोमाञ्चाः स्वेदोवैवर्ण्य वेपथू

अश्रुवैस्वर्यमित्यष्टौ, स्तम्भोऽस्मिन्निष्क्रियाङ्गता।

प्रलयो नष्टसंज्ञत्वम् शेषाः सुव्यक्तलक्षणाः[८]''

अर्थात् स्तम्भ, प्रलय रोमाञ्च, स्वेद वैवर्ण्य वेपथु, अश्रु तथा वस्वर्य इनमें अंगो का निष्क्रिय होना स्तम्भ है, चेतना का नष्ट होना प्रलय।

(च) व्यभिचारी भाव-

''विशेषादाभिमुख्येन चरन्ती व्यभिचारिणः।

स्थायिन्युन्मग्न निर्मग्नाः कल्लोला इव वारिधौ।।''[९]

अर्थात् विविध प्रकार से स्थायीभाव के अभिमुख या अनुकूल चलने वाले भाव व्यभिचारी भाव कहलाते है; जो स्थायी भाव में इसी प्रकार प्रकट होकर विलीन होते रहते है, जिस प्रकार सागर में तरङ्गे।

व्यभिचारीभाव ३३ प्रकार के है-

''निर्वेदग्लानिशङ्काश्रमधृति जडताहर्षदैन्यौग्रयचिन्ता,

स्त्रासेर्ष्यामर्षगर्वाः स्मृतिमरणमदाः सुप्तनिद्राविवोधाः,।

व्रीडापस्मार मोहाः सुमतिरलसतावेगतर्कावहित्था,

व्याध्युन्मादौविषादोत्सुकचपलयुतास्त्रिंशदेत त्रयश्च।।''

अर्थात् निर्वेद, ग्लानि शङ्का, श्रम, धृति, जडता, हर्ष, दैन्य, औग्रय, चिन्ता, त्रास, ईर्ष्या, अमर्ष, गर्व, स्मृति, मरण, मद, सुप्त, निद्रा, विवोध, व्रीडा, अपस्मार, मोह, सुमति, अलसता, वेग, तर्क, अवहित्था, व्याधि, उन्माद, विषाद, औत्सुक्य तथा चपलता आदि व्यभिचारी भाव ३३ प्रकार के है।

(छ) स्थायीभाव–

"विरुद्धैरविरुद्धैर्वा भावैर्विच्छिद्यते न यः।
आत्मभावं नयत्यन्यान् स स्थायी लवणाकरः।।"[१०]

अर्थात् जो रति आदि भाव अपने से प्रतिकूल अथवा अनुकूल किसी प्रकार के भावों के द्वारा विच्छिन्न नहीं होता और लवणाकर या नमक की खान (समुद्र) के समान अन्य सभी भावों को आत्मसात् कर लेता है, वह स्थायी भाव कहलाता है।

दशरुपक में उल्लिखित धनञ्जय के अनुसार यह आठ प्रकार का होता है–

"रत्युत्साहजुगप्साः क्रोधो हासः स्मयो भयं शोकः।
शममपि केचित्प्राहुः पुष्टिर्नाटयेषु नैतस्य।।"[११]

१. रति, २. उत्साह, ३. जुगुप्सा, ४. क्रोध, ५. हास, ६. विस्मय, ७. भय तथा ८. शोक, कुछ आचार्य शम को भी 'नवम्' स्थायी भाव कहते है किन्तु उस शम की पुष्टि रुपकों में नहीं होती। इस तरह आचार्य धनञ्जय नवाँ शात्त रस नहीं स्वीकारते।

अब हम जैनकुमारसम्भव में प्रयुक्त रसों का निरुपण करेंगे–

जैनकुमारसम्भव में काव्य के नायक ऋषभदेव के विवाह तथा कुमारसम्भव से सम्बन्धित प्रसंग होने के कारण इसमें शृङ्गार रस के प्राधान्य की अपेक्षा थी, परन्तु महाकवि अपने निवृत्तिवादी दृष्टिकोण के कारण इस

प्रसंग को दूर कर दिया है और नायक की वीतरागिता को उनकी आसक्ति की अपेक्षा अधिक उभारा है। उनके लिए बैषयिक सुख विषतुल्य है–

> तनोषि तत्तेषु न किं प्रसादं,
> न सांयुगीनायदमीत्वयीश।
> स्याद्यत्र शक्तेरवकाशनाशः,
> श्रोयेत शूरैरपि तत्र साम।।[12]

वह "अवक्रमित" से काम में प्रवृत्त होते हैं और उचित उपचारों से विषयों को भोगते है–

> त्रिरात्रमेव भगवानतीत्या–
> निरुद्धपित्रानुपरूद्धाचित्तः।
> ततस्तृतीयोऽपिपुमर्थसारे,
> प्रावर्ततावक्रमतिः क्रमज्ञः।।
> भोगार्हं कर्म ध्रुव वेद्यमन्य-जन्मार्जितं स्वं सविमुविबुध्य।
> मुक्त्येक कामोप्युचितोपचारैरभुक्त ताव्यां विषयानसक्तः।।[13]

इस तरह जैनकुमारसम्भव के विविध प्रसंगों में श‍ृङ्गार रस का वर्णन किया गया है। ऋषभदेव के विवाहार्थ जाते समय पति का स्पर्श पाकर, किसी देवांगना की मैथुनेच्छा सहसा जागृत हो जाती है तथा भावोच्छवास में उसकी कञ्चुकी टूट जाती है। वह काम वेग के कारण असहाय हो जाती है। फलस्वरूप वह अपनी इच्छापूर्ति हेतु प्रियतम की चाटुकारिता करने लगती है–

उपात्त्पाणिस्त्रिदशन वल्लभा श्रमाकुलाकाचिदुदंचिकंचुका।
बृषस्यया चाटुशतानि तन्वती जगाम तस्यैव गतस्यविघ्नताम्।।[१४]

एक अन्य स्थान पर स्वामी ऋषभदेव को देखने के लिए पुरनारियों में एक स्त्री के वर्णन प्रसंग में उसकी काम के प्रति औत्सुक्य की तीव्रता एवं अधीरता तथा आत्मविस्मृति को इस प्रकार दर्शाया गया है–

कापि नार्धयमितश्लथनीवी प्रसरन्निवसनापि ललज्जे
नायकाननिवेशितनेत्रे जन्यलोकनिकरेऽपि समेता।।[१५]

देवदम्पत्तियों को रति के लिए कुचक्रादि के लतागृहों का निर्माण आदर्श परिवेश समुपस्थित करता है और अस्ताचल पर्वत की रजत शिलाएं संभोग केलि में मानिनियों को मान त्यागने के लिए विकल कर देती है। श्री जयशेखर सूरि ने रति के सोपान रूप में पर्वतीय नीरवता का समुचित उपयोग किया है–

तरुक्षरत्सूनमृदूत्तरच्छदा,
व्यधत्तयन्तारशिला विलासिनाम्।
रतिक्षणा लम्बितरोषमानिनी
स्मयग्रहग्रन्थिभिदे सहायताम्।।[१६]

श्री जयशेखर सूरि ने अपने महाकाव्य में वात्सल्य, भयानक, वीभत्स हास्य तथा शान्त रसों का आनुषंगिक रूप में पल्लवन किया है। शिशु ऋषभदेव की तुतली वाणी, लड़खड़ाती गति अकारण ही लोगों को हँसने

के लिए वाध्य करती है। वह ऋषभदेव दौड़कर पिता से लिपट जाते हैं। उनके पिता शुशु के अंग स्पर्श से विभोर हो जाते है। उनकी आँखें हर्षातिरेक से वन्द हो जाती है और वे तात-तात कहकर पुकारने लगते है–

"अव्यक्त मुक्तं स्खलदंघ्रियानं निःकारणं हास्य मवस्त्रमङ्गम्।
जनस्य यद्दोषतयाभिधेयं, तच्छैशवे यस्य बभूव भूषा।।"[१७]

जयशेखर ने नवविवाहित ऋषभदेव को देखने के लिए नारियों के चित्रण में हास्य रस का रोचक वर्णन किया है। जब कोई स्त्री उन्हें देखने की शीघ्रता में अपने रोते शिशु को छोड़कर गोद में विल्ली का वच्चा उठाकर दौड़ पड़ी। उसे देखकर सारी वारात हँसने लगी, किन्तु उसे इसका भान तक नहीं हुआ–

"तुर्णिमुढदृगपास्य रुदन्तं, पोतमोतुमधिरोप्य कटीरे।
कापि धावितवतौ नहि जज्ञे, हस्यमानमपि जन्यजनैः स्वम्।।"[१८]

स्वामी ऋषभदेव को गार्हस्थ्य जीवन में प्रवृत्त करने के लिए इन्द्र की उक्तियों में शान्त रस की क्षीण अभिव्यक्ति हुई है।

"वयस्यनंगस्य वयस्य भूते, भूतेश रुपेऽनुपमस्वरूपे।
पदींदिरायां कृतमंदिरायां को नाम कामेविमनास्त्वदन्यः।।[१९]

भयानक रस का प्रसंग है–

अप्यतुच्छतया पुच्छा- घातकम्पित भूतलम
अप्युदारदरीक्रोड- क्रीडत्क्ष्वेडाभयङ्करम- २/३८-२९

सयो भिन्नेभ कुंमोत्थ- व्यक्तमुक्तोपहारिणम्
हरिणाक्षी हरिं स्वप्न- दृष्टं सावमन्यत।।

इस महाकाव्य में शृङ्गार रस सर्वाधिक प्रसङ्गों में परिलक्षित होता है। यद्यपि जैन साहित्य का इतिहास भाग-६ मे उल्लिखित विद्वानों द्वारा इस महाकाव्य में अङ्गी रस का अभाव बताया गया है किन्तु किसी महाकाव्य में एक अङ्गी रस का होना आवश्यक होता है तथ्य यह भी है कि यहाँ शृङ्गार रस जिसका लौकिक वासनात्मक स्वरूप न होकर धर्म प्रधान शृङ्गार के रूप में है और चूंकि ऋषभदेव सामान्य नायक नहीं अपितु जैनियों के आराध्य देव के रूप में हैं अतएव कवि अपने पूजनीय एवं आदरणीय नायक को लौकिक शृङ्गार के रूप में वर्णित न कर धर्म प्रधान नायक के रूप में चित्रित किया है इसलिए शृङ्गार मुखर रूप में न आकर अपरोक्ष रूप में आया है अतः यहाँ शृङ्गार अङ्गी रस के रूप में तथा शेष अन्य रस अङ्ग रस के रूप में माना जा सकता है।

छन्द की दृष्टि से जैनकुमारसम्भव का विवेचन–

'छन्द' काव्य का वह प्रमुख तत्व है, जिसके द्वारा गद्य को पद्य के रूप में रूपान्तरित किया जाता है। अर्थात इसके विनियोजन से शब्द काव्योचित प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है।[२०]

प्रायः प्रत्येक अलंकारिकों ने अपने महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षण में छन्द के विनियोजन का प्रमुखता पूर्वक उल्लेख किया है और काव्य में सभी छन्दों की योजना का आग्रह किया है।[२१] सर्वप्रथम हम जैनकुमारसम्भव में प्रयुक्त छन्दों का संक्षेप में लक्षण वताते हैं जो अप्रासंगिक नही होगा।

इसमें प्रयुक्त सभी छन्द वर्णसमवृत्त है। प्रमुख छन्द है।

१. इन्द्रवज्रा-

"स्यादिन्द्रवज्रा यदितौ जगौ गः" ११/३०

प्रत्येक चरण में दो तगण, एक जगण, और दो गुरु हो उसे इन्द्रवज्रा कहते है।

२. उपेन्द्रवज्रा-

"उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ" ११/३१ वृत्तरत्नाकर

प्रत्येक चरण में जगण, तगण, जगण, दो गुरु हो।

३. उपजाति-

"अनन्तरोदीरतलक्ष्मभाजौ पादौयदीयावुपजातयस्ताः।
इथं किलान्यास्वपि मिश्रितासु स्मरन्ति जातिष्विदमेव नाम।। ११/३२

जिस पद्य का कोई चरण अभी कहे हुए इन्द्रवज्रा के लक्षण द्वारा तथा कोई चरण उपेन्द्रवज्रा के लक्षण द्वारा बना हो उसे उपजाति छन्द कहते है।

४. शालिनी-

"शालिन्युक्ताम्तौ तगौ गोब्धिलौकैः"-११/३५

प्रत्येक चरण में मगण, तगण, तगण, गुरु, गुरु हो तथा चौथे और

९. प्रहर्षिणी–

"म्रौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम्" ११/७०

प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, नगण, जगण, रगण और एक गुरु हो तीन और दश पर यति हो।

१०. बसन्ततिलका–

"उक्ता बसन्ततिलका तभजाजगौगः" ११/७८

प्रत्येक चरण में तगण, मगण, दो जगण, दो गुरु हो पादात्त में यति हो।

११. मालिनी–

"ननमययुतेयं, मालीनी भोगिलोकैः" ११/८३

प्रत्येक चरण में क्रमशः दो नगण, एक मगण दो मगण हो यति आठ और सात वर्णो पर हो।

१२. शिखरिणी–

"रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी ११/९१

प्रत्येक चरण में क्रमशः यगण, मगण, नगण, सगण, मगण, लघु और गुरु हो तथा छः और ग्यारह पर यति हो।

१३. "जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः" ११/९२

प्रत्येक चरण में क्रमशः जगण, सगण, पुनः जगण, सगण, यगण, एक लघु और अन्त में एक गुरु हो तथा आठ और नौ वर्णो पर यति।

१४. हरिणी–

रसयुगध्यै, न्सौ म्रौ स्लौ गो यदाहरिणी तदा– ११/९४

प्रत्येक चरण में क्रमशः नगण, सगण, मगण, रगण, सगण, लघु और गुरु यति छः, चार और सात पर हो।

१५. "मन्दाक्रान्ता जलधिबडगैम्भौं न तौ ताद्गुरुचेत्" ११/९५

प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, भगण, नगण दो तगण और दो गुरु हो यति चार, छः और सात वर्णो पर हो।

१६. शार्दूलविक्रीडित–

सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ११/९९

प्रतिचरण में क्रमशः मगण, सगण, जगण, सगण, दो तगण, एक गुरु यति वारह और सात पर हो

१७. स्त्रग्धरा–

"म्रभ्नैर्यानां त्रयेण, त्रिमुनियतियुता,

स्त्रग्धरा कीर्तितेयम्" ११/१०३

प्रतिचरण में क्रमशः मगण, रगण, भगण, नगण तथा तीन यगण और यति सात-सात वर्णो पर हो।

महाकवि जयशेखर सूरि ने अपने महाकाव्य जैनकुमारसम्भव में प्रायः सभी प्रमुख छन्दों की योजना विभिन्न वर्णन प्रसंगों में किया है। और छन्दों के प्रयोग में नाट्यशास्त्र के नियमों का पालन किया है।

इस महाकाव्य के प्रथम सर्ग के आरम्भ में अयोध्यापुरी नगरी के वर्णन में उपजाति छन्द की योजना की गयी है–

अस्त्युत्तरस्यांदिशि कोशलेति,
पुरी परीता परमर्द्धि लोकैः।
निवेशयामास पुरः प्रियायाः,
स्वस्यावयस्यामिव यां धनेशः।।[२२]

और सर्ग के अन्त में छन्द वदल दिया गया है वहाँ शार्दूल विक्रीडित छन्द की योजना है–

नारीणां नयनेषु चापलपरीवादंविनिघ्नन्
सौन्दर्येण विशेषितेन वयसा वाल्यात्पुरोवर्तिना।।
निर्जेतापि मनोभवस्य जनयंस्तस्यैव वामाकुले
भ्रान्तिं कालमसौ निनाय विविधक्रीडारसैः कंचन।।[२३]

जैनकुमारसम्भव के द्वितीय सर्ग में वसन्ततिलका और तृतीय सर्ग के अन्त में मन्दाक्रान्ता छन्दो की योजना हुई है।

तदा हरेः ससदि रूपसम्पदं,
प्रभोः प्रभाजीवनयोवनोदिताम्।

अगायतां तुंबरुनारदौ रदो-

च्छलन्मयूखच्छल दर्शिताशयौ।।

और मालिनी छन्द की योजना छठे सर्ग में इस प्रकार की गयी है-

अथाश्रयं स्वं सपरिच्छदेषु,

सर्वेषु यातेषु नरामरेषु।

नाथं नवोढं रजनिर्विविक्त,

इवेक्षितुं राजवधूरूपागात्।।[२४]

और उसी सर्ग में इन्द्रवज्रा तथा शिखरिणी छन्द की योजना है-

जगद्भर्तुर्वाचा प्रथममथ जंभारिवचसा,

रसाधिक्यात्तृप्तिं समधिगमितामप्यनुमाम्।

स्वरायातैर्भक्ष्यैः शुचिभुवि निवेश्यासनवरे,

वलादालीपाली चटुघटनयाऽभोजयदिमाम्।।[२५]

सूरिः श्री जयशेखरः कविघटाकोटीरहीरच्छवि,

धम्मिल्लादिमहाकवित्व कलनाकल्लोलिनीसानुभाक्।

बाणीदत्तवरश्चिरं विजयते तेन स्वयं निर्मिते,

सर्गो जैनकुमारसम्भवमहाकाव्येयमेकादशः''[२६]

इस तरह जैनकुमारसम्भव में उपजाति, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, रथोद्धता, वंशस्थ, शालिनी, वैश्वदेवी, द्रुतविलम्बित, वसन्ततिलका, मालिनी, पृथ्वी, शिखरिणी,

मन्दाक्रान्ता प्रहर्षिणी, हरिणी तथा शार्दूलविक्रीडित इन सत्तरह छन्दों की योजना है। उपजाति इनका प्रिय छन्द है। जैनकुमारसम्भव में अनुष्टुप, वियोगिनी और पुष्पिताग्रा छन्द का प्रयोग नही हुआ है। काव्य की अन्यान्य विधाओं की भांति इस महाकवि ने छन्दों का विधान भी प्रौढ़ रूप से किया है।

जैनकुमारसम्भव में अलंकार विवेचन–

काव्य में अलङ्कारों का महत्व सर्वातिशायी है। आचार्य भरत से लेकर आज तक साहित्य जगत में किसी न किसी रूप में इस कलात्मक कल्पना विधान का अनुसंधान हो रहा है। काव्य में अलङ्कार भावाभिव्यक्ति के सशक्त साधन हैं। अलङ्कारों के परिधान में सामान्य भी विलक्षण सौन्दर्य से दीप्त हो जाता है। आचार्य दण्डी ने अपने काव्यादर्श में "काव्यशोभाकरान धर्मान् अलङ्कार प्रच्क्षते" कहकर अलङ्कारों के महत्व का आख्यान किया है। स्पष्ट है कि काव्य और अलङ्कारों में चोली-दामन का सम्बन्ध है।

वैसे अलङ्कारों की संख्या अनिश्चित है किन्तु सर्वप्रथम इसे शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार दो रूपों में विभक्त किया गया है। यहाँ इस महाकाव्य में प्रयुक्त कुछ अलङ्कारों का लक्षण और तत्सम्बन्धित उदाहरण प्रस्तुत किया जायेगा।

जैनकुमारसम्भव में निहित अलङ्कार चमत्कृति के साधन नहीं है वे काव्य सौन्दर्य को प्रस्फुटित करते है तथा भावप्रकाशन को समृद्ध बनाते हैं। जैनकुमारसम्भव में अलङ्कारों का सहज विधान दृष्टिगोचर होता है।

शब्दालङ्कारों में श्लेष, अनुप्रास और यमक का विधान प्रमुख रूप से किया गया है। इस काव्य में श्लेष और यमक दुरूह नहीं है।

१. अनुप्रास अलङ्कार–

"वर्णसाम्यमनुप्रासः"[२७]

वर्णों की समानता ही अनुप्रास है।

यह छेकगत और वृत्तिगत दो प्रकार का होता है।

"सोऽनकस्य सकृत्पूर्वः"[२८] अनेक वर्णों की एक बार आवृत्ति रूप साम्य छेकानुप्रास है।

"एकस्याप्यसकृत्परः[२९]"

एक वर्ण का भी और अनेक व्यञ्जनों का एक बार या बहुत बार का सादृश्य अर्थात् आवृत्ति वृत्यनुप्रास है।

जैनकुमारसम्भव में अयोध्यानगरी के वर्णन में अन्त्यानुप्रास का यह सुन्दर उदाहरण है–

संपन्नकामा नयनाभिरामाः सदैव जीवत्प्रसवा अवामाः।
यत्रोज्झितान्यप्रमदावलोका, अदृष्टशोकान्यविशन्त लोकाः।।[३०]

२. यमक अलङ्कार–

"अर्थे सत्यर्थभिन्नानां वर्णानां सा पुनः श्रुतिः यमकम्" अर्थ होने पर भिन्नार्थक वर्णों की उसी क्रम से पुनः श्रवण या पुनरावृत्ति यमक नामक

शब्दालङ्कार कहलाता है।

जहाँ अन्य कवियों ने काव्य में विद्वता प्रदर्शन के लिए अलङ्कारों के प्रयोग में श्रम किया है जयशेखर सूरि का यमक क्लिष्टता से मुक्त है– सुनन्दा के गुणों के वर्णन में यमक की सरलता उल्लेखनीय है–

परांतरिक्षोदकनिष्कलंका, नाम्ना सुनन्दा नयनिष्कलङ्का[३१]।
तस्मै गुणश्रेणिभिरद्वितीया, प्रमोदपूरं व्यतरद् द्वितीया।।

३. श्लेष अलङ्कार–

शब्द और अर्थ भेद से दो प्रकार का होता है।

(i) शब्द श्लेष–

वाच्यभेदेन भिन्ना यद् युगपद्भाषणस्पृशः।
श्लिष्यन्ति शब्दाः श्लेषोऽसावक्षरादिभिरष्टधा।।[३२]

अर्थ का भेद होने से भिन्न-भिन्न शब्द एक साथ उच्चारण के कारण जब परस्पर मिलकर एक हो जाते है तब वह श्लेष रूप शब्दालङ्कार होता है और वह अक्षर आदि के भेद से आठ प्रकार का होता है। अर्थात् शब्द श्लेष सभंग तथा अभंग भेद से दो, तथा फिर सभंग के भी आठभेद– स च वर्ण, पद, लिङ्ग भाषा– प्रकृति– प्रत्यय– विभक्ति– वचनानां भेदादष्टधा।

(ii) अर्थश्लेष–

"श्लेषः स वाक्ये एकस्मिन् यत्रानेकार्थता भवेत्" जहाँ पर एक ही वाक्य में एक पद के अनेक अर्थ होते हैं वहाँ अर्थश्लेष अलंकार होता है।

सुमंगला की सखियों की नृत्यमुद्राओं में श्लेष सहज रूप में परिलक्षित होता है। यथा–

स्त्रुश्रुताक्षरपथानुसारिणी, ज्ञात संमत कृताङ्गिकक्रिया।
आत्मकर्मकलनापटुर्जगौ, कापि नृत्यनिरता स्वमार्हतम्।।[३३]

इस प्रकार शब्दालङ्कारों में कवि ने अनुप्रास और यमक का अत्यधिक प्रयोग किया है और दोनों ही अलङ्कार काव्य में किसी न किसी रूप में व्याप्त है।

३. उपमा अलङ्कार–

अर्थालङ्कारों में उपमा कवि का प्रिय अलङ्कार है। उपमा वर्ण्य भाव को प्रत्यक्ष कर देती है। उपमा का लक्षण इस प्रकार है–

"साधर्म्यमुपमा भेदे[३४]"

उपमान तथा उपमेय का भेद होने पर उनके साधर्म्य का वर्णन उपमा कहलाता है।

उपमा के पूर्णा और लुप्ता दो भेद हैं।

पूर्णा उपमा के श्रोती और आर्थी दो भेद फिर दोनों में प्रत्येक वाक्यगत समासगत तथा तद्धिगत तीन प्रकार है। लुप्ता के १९ भेद हैं।

जैनकुमारसम्भव में कवि ने भावपूर्ण तथा अनुभूत उपमानों के द्वारा भावों की समर्थ अभिव्यक्ति की है। यथा–

> वधूद्वयदृष्टयो-श्चापलं यदभवद्दुरपोहम्।
>
> शैशवावधि वधूद्वयदृष्टयोश्चापलं यदभवद्दुरपोहम्
>
> तत्समग्रमुपभर्तु र्विलिल्ये, ऽध्यापकान्तिक इवान्तिषदीयम्।।

सुमंगला और सुनन्दा की दृष्टि की चंचलता पति के सामने इस प्रकार विलीन हो गयी, जिस प्रकार अध्यापक के सामने छात्र की चंचलता विलीन हो जाती है। इसी प्रकार उपमा के एक अन्य उदाहरण में साखियों ने सहसा उठकर सुमंगला को ऐसे घेर लिया जैसे की पंक्ति कमलिनी को घेर लेती हैं–

> तां ससंभ्रमसमुत्थितास्ततः, सन्निपत्य परिवव्रुरालयः।
>
> उच्छ्वसज्जलरूहाननां प्रगे, पद्मिनीमिव मधुव्रतालयः।।[३५]

कवि के उपमा कौशल का सम्यक् परिचय प्राप्त करने हेतु एक अन्य उपमा प्रस्तुत करते है–

> प्रगृह्य कौसुंभसिचा गलेऽवला, वलात्कृषन्त्येनमनैष्ट मंडपम्।
>
> अवाप्तवारा प्रकृतिर्यथेच्छया, भवार्णवं चेतनमप्यधीश्वरम्।।[३६]

अर्थात् एक स्त्री ऋषभदेव के गले में वस्त्र डालकर उन्हें विवाह

मण्डप में ऐसे ले गयी जैसे कर्म रूप पाप प्रकृति आत्मा को भव सागर में खींच के जाती है।

जैनकुमारसम्भव को 'सूक्ति-सागर' बनाने का श्रेय दृष्टान्त और अर्थान्तरन्यास अलङ्कार को है। काव्य में दृष्टान्त और अर्थान्तर न्यास की भरमार है।

४. दृष्टान्त अलङ्कार-

"दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषांप्रतिबिम्बनम्"।[३६]

अर्थात् इन उपमान, उपमेय, उनके विशेषण और साधारण धर्म आदि सबका भिन्न होते हुए भी ओपम्य के प्रतिपादनार्थ उपमान-वाक्य तथा उपमेयवाक्य में पृथग उपादान रूप 'बिम्ब-प्रतिबिम्बभाव' होने पर दृष्टान्तालङ्कार होता है।

निद्रा प्रसंसा में दृष्टान्त की मार्मिकता उल्लेखनीय है-

दृष्टनष्टविभवेन वर्ण्यते, भाग्यवानिति सदैव दुर्विधः।
जन्मतो विगतलोचनं जनं, प्राप्तलुप्तनयनः पनायति।।[३८]

५. अर्थान्तरन्यास अलङ्कार-

सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।
यन्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधमर्येणेतरेण वा।[३९]

सामान्य अथवा विशेष का उससे भिन्न अर्थात् सामान्य का विशेष

के द्वारा अथवा विशेष का सामान्य के द्वारा जो समर्थन किया जाता है वह अर्थान्तरन्यास अलङ्कार साधर्म्य तथा वैधर्म्य से दो प्रकार का होता है।

जैनकुमारसम्भव में अर्थान्तरन्यास का अधिकाधिक प्रयोग मिलता है। रात्रि के प्रस्तुत वर्णन में कवि की कल्पना ने अर्थान्तरन्यास को इस रूप में उद्धृत किया है–

> तितांसति श्वैत्यमिहेन्दुरस्य, जाया निशा दित्सति कालिमानम्।
> अहो कलत्रं हृदयानुयायि, कलानिधीनामपि भाग्यलभ्यम्।।[४०]

६. पर्याय अलङ्कार–

"एकं क्रमेणानेकस्मिन् पर्यायः।[४१]

एक क्रम से अनेक में होता है अथवा किया जाता है तब पर्यायालङ्कार होता है।

ऋषभदेव के सौन्दर्य वर्णन के अन्तर्गत इस पद्य में स्त्रियों की दृष्टि का उनके अर्थात् ऋषभदेव के विविध अंगों में क्रम से विहार करने का वर्णन होने के कारण 'पर्याय' अलङ्कार है–

> भ्रान्त्वाखिलेंगेऽस्य दृशो वशानां, प्रभापयोऽक्षिप्रपयोनिंपीय।
> छायां चिरं भ्रूलतयोरूपास्य, भालस्थले संदधुरध्वगत्वम्।।[४२]

गुण विवेचन–

काव्य-विवेचन के प्रारम्भिक काल से ही काव्य-गुणों का उल्लेख

होता रहा है। भरतमुनि ने 'माधुर्य' तथा 'औदार्य' आदि का उल्लेख किया है तथा ओज का स्वरूप भी बतलाया है। प्रथम अलङ्कारवादी आचार्य भामह के पश्चात् तो गुणों के स्वरूप तथा संख्यादि विवेचन का युग ही आरम्भ हो गया था, किन्तु उस समय गुण तथा अलङ्कारों का स्वरूप विवेक नही हो पाया था। आचार्य दण्डी के गुण-निरूपण में भी गुण तथा अलङ्कार का भेद स्पष्ट नहीं हुआ था। इसीलिए भट्टोद्भट ने गुण तथा अलङ्कारों के भेद को परम्परागत ही वतलाया था। उनके मत में गुण तथा अलङ्कार में कोई भेद नहीं है।[४३] लौकिक गुण तथा अलङ्कारों में तो यह भेद किया जा सकता है कि हारादि अलङ्कारों का शरीरादि के साथ संयोग-सम्बन्ध होता है और शौर्यादि गुणों का आत्मा के साथ संयोग नहीं अपितु समवाय सम्बन्ध होता है किन्तु काव्य में तो ओज आदि गुण तथा अनुप्रास, उपमा आदि अलङ्कार दोनों की ही समवाय सम्बन्ध से स्थिति होती हैं, इसलिए काव्य में उनके भेद का उपपादन नहीं किया जा सकता है। उनमें जो लोग भेद मानते है, वह केवल भेड़ चाल मात्र है।[४४] उद्भट के परवर्ती आचार्यों ने नित्यता तथा अनित्यता को लेकर गुण तथा अलङ्कारों में भेद प्रदर्शन किया तथा निष्कर्ष स्वरूप गुणों की कसौटी नित्यता व अलङ्कारों की कसौटी परिवर्तन-शीलता स्वीकार की है। सर्वप्रथम रीतिवादी आचार्य वामन ने गुण तथा अलङ्कारों का भेद करने का प्रयास किया तथा उनके अनुसार काव्य के शोभाकारक धर्म गुण है और उस काव्य-शोभा की वृद्धि करने वाले (चमत्कारक) धर्म अलङ्कार है।[४५] उनके अनुसार काव्य में गुणों की स्थिति अपरिहार्य है,

परन्तु अलङ्कारों की स्थिति अपरिहार्य नहीं है।

आचार्य आनन्दवर्धन ने गुण के स्वरूप का सूक्ष्म विवेचन किया तथा यह बतलाया कि गुण शब्दार्थ अथवा शब्दविन्यास आदि के धर्म नहीं अपितु काव्य की आत्मा अर्थात् रस के धर्म हैं।[४६] उन्होंने गुण तथा अलङ्कार के भेद को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि काव्य के आत्मभूत रसादिध्वनि के आश्रित रहने वाले धर्म गुण होते है और अलङ्कार काव्य के अभंगभूत शब्द तथा अर्थ के धर्म होते हैं। इस प्रकार आनन्दवर्धनाचार्य ने गुणों को रसाश्रित तथा अलङ्कारों को शब्द तथा अर्थ के आश्रित धर्म मानकर उनके भेद का उपपादन किया है।[४७]

आचार्य मम्मट ने इनका ही अनुसरण किया है तथा उद्भट व वामन से पृथक् गुणों को रस के स्थिर (अचल) धर्म माना है। गुण का लक्षण देते हुए वे लिखते है कि आत्मा के शौर्यादि धर्मों की तरह काव्य में जो प्रधान रस के उत्कर्षाधायक तथा अचल स्थिति वाले होते हैं, वे गुण कहलाते हैं।[४८]

प्रायः काव्यप्रकाशकार का अनुसरण करते हुए आचार्य हेमचन्द्र ने रस का उत्कर्ष करने वाले हेतुओं को गुण कहा है। ये गुण उपचार (गौणरूप) से शब्द और अर्थ के उत्कर्षाधायक होते हैं।[४९]

तात्पर्य यह है कि गुण मुख्यतः रस के ही धर्म हैं; गौणरूप से वे उस रस के उपकारक शब्द और अर्थ के धर्म कहे जाते हैं। यहाँ पर गुण व दोष का रसाश्रयत्व सिद्ध करते हुए हेमचन्द्राचार्य लिखते हैं

कि गुण तथा दोष का रसाश्रित होंना अन्वय व्यतिरेक के विधान से भी सिद्ध है। जहाँ दोष रहते हैं वहीं गुण भी रहते है और वे दोष रस विशेष में रहते है शब्द और अर्थ में नहीं। यदि वे शब्द और अर्थ के दोष होंगे तो वीभत्स रस में कष्टत्वादि तथा हास्यादि रसों में अश्लीलत्वादि दोष गुण नहीं हो पायेंगे। क्योंकि ये अनित्य दोष हैं, कभी दोष रहते हैं, कभी नहीं भी रहते और कभी-कभी गुण भी हो जाते हैं। जिस अंगी रस के वे दोष होते हैं उसके अभाव में वे दोष नहीं रह जाते, उसके रहने पर दोष रहते हैं। इस प्रकार अन्वय व्यतिरेक के द्वारा गुण और दोष का रसाश्रयत्व ही सिद्ध होता है। शब्दार्थाश्रितत्व नहीं गौण रूप में भले ही वे गुण और दोष शब्दार्थ के कहे जायें किन्तु वास्तविक रूप में वे रसाश्रित धर्म हैं।[५०]

हेमचन्द्राचार्य ने अंग के आश्रित रहने वाले धर्मों को अलङ्कार कहा है।[५१] तथा अपनी विवेक टीका में पूर्वाचार्यों के विचारों का खण्डन प्रस्तुत करते हुए गुणालङ्कार विवेक[५२] का प्रतिपादन किया है। इसमें भट्टोदभट के अभेदवादी मत व वामन के भेदवादी मत का खण्डन और स्वमत का प्रतिपादन किया है। जिसमें मम्मट का प्रभाव परिलक्षित होता है।

जैसा कि पूर्वकथित है कि भट्टोद्भटने गुण व अलङ्कार में कोई भेद नहीं माना है। उनके इस मत को हेमचन्द्राचार्य ने निरस्त कर दिया है।[५३] उनका कथन है कि काव्य के सन्दर्भ में अलङ्कारों को ही रखा व हटाया जाता है, गुणों को नहीं तथा अलङ्कारों को त्याग करने से न तो

वाक्य दूषित होता है न ही उनके ग्रहण से पुष्ट।

तथाहि- "कवितारः संदर्भेष्वलङ्कारान् व्यवस्यन्ति न्यस्यन्ति च, न गुणान्।

नचालंकृतीनाम पोद्धाराहाराभ्यां वाक्यं दुष्यति पुष्यति वा[५४]।"

इसे उन्होंने उदाहरण द्वारा पुष्ट किया है तथा यह भी कहा है कि गुणों का तो त्याग व ग्रहण करना सम्भव ही नहीं है।

"गुणानामपोद्धाराहारौ तु न संभवत् इति"।[५५]

इस प्रकार गुण व अलङ्कार दोनों अलग-अलग तत्त्व हैं। इन दोनों का आश्रय भी भिन्न-भिन्न है। अतः भट्टोद्भट का अभेदवादी मत अनुचित हैं।

आगे वे वामन के भेदवादी मत को भी उद्धृत करते हुए व्यभिचार युक्त बताते हैं तथा तर्क व उदाहरण प्रस्तुत कर स्वमत की पुष्टि करते हैं। यह भी पूर्वोल्लिखित है कि वामन ने गुण व अलङ्कार में भेद माना है। परन्तु हेमचन्द्र इसका खण्डन सोदाहरण निरूपित करते है कि "गतोऽस्तमर्को भातीन्दुर्यान्ति, वासाय पक्षिणः" इत्यादि में प्रसाद, श्लेष, समता, माधुर्य, सौकुमार्य, अर्थव्यक्ति आदि गुणों का सद्भाव होने पर भी उसकी काव्य-व्यवहार में प्रवृत्ति नहीं हो रही है। यथा–

"अपि काचिच्छ्रुता वार्ता तस्यौन्निघ्रविधायिनः।

इत्तीव प्रष्टुमायते तस्याः कर्णान्तमीक्षणे।।"

इस पद्य में उत्प्रेक्षा अलङ्कार मात्र होने पर तीन-चार गुणों के

अविवक्षित होने पर भी काव्य व्यवहार होता ही है। अतः वामन के मत में भी व्यभिचार आ जाता है। अतः अलङ्कार अंगाश्रित व गुण रसाश्रित होते हैं यह हमारा मत ही श्रेयस्कर है।[५६]

आचार्य नरेन्द्रप्रभ सूरि का गुण-स्वरूप आचार्य आनन्दवर्धन व मम्मट के गुण-स्वरूप का मेल है। उन्होंने गुण के लिए आवश्यक और पूर्वाचार्यों द्वारा स्वीकृत सभी उत्कृष्ट तत्वों को ग्रहणकर गुण-स्वरूप निरूपण किया है। वे लिखते हैं कि जिस प्रकार शौर्यादि गुण आत्मा के आश्रित रहते है, उसी प्रकार जो रस के आश्रित रहते है, अकृत्रिम हैं, नित्य हैं तथा काव्य में वैचित्र्य के उत्पादक हैं, वे गुण कहलाते हैं।

शौर्यादय इवात्मानं रसभेव श्रयन्ति ये
गुणास्ते सहजा काव्ये नित्यवैचित्र्यकारिणः।।[५७]

इसी को और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि जिस प्रकार प्राणी के शौर्य, स्थैर्य आदि गुण आत्मा के ही आश्रित रहते हैं; आकार में नहीं, उसी प्रकार माधुर्यादि गुण भी रस के ही आश्रित रहते हैं। ये गुण रस के ही धर्म हैं, वर्ण समूह के नहीं। यही अलङ्कारों से गुण का भेद है।[५८] क्योंकि गुणों के अभाव में अलङ्कारों से युक्त रचना भी काव्य न हो सकेगी। जैसा कहा भी गया है कि यदि योवन शून्य स्त्री के शरीर की तरह गुणों से शून्य काव्यवाणी हो, तो निश्चय॰ ही लोकप्रिय अलङ्कार भी धारण करने पर अच्छी नहीं लगती है।[५९]

वाग्भट- प्रथम, वाग्भट- द्वितीय व भावदेवसुरि- इन जैनाचार्यों ने

गुण विवेचन तो किया है पर गुण- स्वरूप पर प्रकाश नहीं डाला है।

गुण-भेद–

सर्वप्रथम आचार्य भरत ने दस गुणों का उल्लेख किया है श्लेष, प्रसाद, समता, समाधि, माधुर्य ओज, पदसौकुमार्य, अर्थाभिव्यक्ति, उदारता और कान्ति।[६०]

इन्हीं का अनुसरण करते हुए आचार्य दण्डी[६१] व वामन[६२] ने भी दस गुणों का उल्लेख किया हैं, जिनके नाम भरत निर्दिष्ट ही है। इनके अतिरिक्त वामन ने दस अर्थगुणों का भी उल्लेख किया है; जिससे उनके मतानुसार गुणों की संख्या २० हैं, किन्तु इनके स्वरूप में अन्तर है। इस प्रकार दण्डी को पूर्णरूपेण एवं वामन को आंशिक रूप में भरत का अनुयायी कहा जा सकता है।[६३]

दूसरी परम्परा में वे आचार्य है, जिन्होंने माधुर्य, ओज और प्रसाद- इन तीन गुणों का उल्लेख किया है। इसमें भामह, आनन्दवर्धन, मम्मट और आचार्य हेमचन्द्र को रखा जा सकता है। आचार्य मम्मट ने वामन सम्मत शब्द और अर्थ गुणों का खण्डन करते हुए लिखा है कि कुछ गुण दोषाभावरूप है; कुछ दोषरूप हैं और शेष का अन्तर्भाव माधुर्य, ओज और प्रसाद में ही हो जाता है। अतः गुणों की संख्या तीन है, दस नहीं।[६४]

तीसरी परम्परा में उन समस्त आचार्यों को रखा जा सकता है

जिन्होंने दस अथवा तीन से न्युनाधिक गुणों का उल्लेख किया है। इसमें अग्निपुराण, भोज, आचार्य हेमचन्द्र व जयदेव द्वारा उल्लिखित अज्ञात नामा आचार्य हैं। अग्निपुराणकार ने गुणों की संख्या १८ मानी हैं।[६५] जो शब्द अर्थ और उभयगुणों में विभाजित है। भोज ने सामान्यतः गुणों की संख्या २४ मानी है।[६६] जिनमें उक्त भरत सम्मट दस गुणों के अतिरिक्त उदान्तता, और्जित्य, प्रेम, सुशब्दता, सौक्ष्म्य, गांभीर्य, विस्तार, संक्षेप, संमितत्व, भाविकत्व, गति, रीति उक्ति और प्रौढ़ि– ये १४ गुण हैं।

उन्होंने २४ गुणों को वाह्य, आभ्यन्तर और वैशेषिक में विभाजित कर गुणों की संख्या ७२ स्वीकार की है; जो अन्याचार्यों की अपेक्षा सर्वाधिक है। हेमचन्द्राचार्य द्वारा उल्लिखित अज्ञातनामा आचार्य के अनुसार गुणों की संख्या ५ है– ओज, प्रसाद, मधुरिमा, साम्य और औदार्य।[६७]

इसी प्रकार जयदेव द्वारा उल्लिखित अज्ञातनामा आचार्य के अनुसार गुणों की संख्या है– न्यास, निर्वाह, प्रौढ़ि, औचिति, शास्त्रान्तर रहस्योक्ति व संग्रह।[६८]

जैनाचार्यों में सर्वप्रथम वाग्भट प्रथम ने दस गुणों का विवेचन किया है[६९] जो भरतमुनि सम्मत है। प्रत्येक का सौदाहरण स्वरूप निम्न प्रकार है–

औदार्य–

अर्थ की चारुता के प्रत्यायक पद के साथ वैसे ही अन्य पदों की सम्मिलित योजना को 'उदारता' नामक गुण कहते हैं।[७०]

गन्धेभविभ्राजित धाम लक्ष्मीलीला म्बुजच्छत्रमपास्य राज्यम्।
क्रीडागिरौ रैवतके तपांसि श्रीनेमिन्नाथोऽत्र चिरं चकार।।[७१]

इस श्लोक में चारुता प्रत्यायक 'गन्ध' शब्द के साथ अन्य सुन्दर पद 'इभ' लीलाम्बुज शब्द के साथ 'छत्र' और क्रीडा शब्द के साथ 'गिरौ' शब्द अर्थ में चारुता का आधान करते हैं। अतः उसमें औदार्य नामक गुण है।

समता और कान्ति–

रचना की अविषमता (अनुकूलता) समता हैं तथा रचन की उज्ज्वलता कान्ति।[७२]

समता, यथा–

कुचकलशविसारिस्फारलावण्यधारामनुवदति यदंगासंगिनी हारवल्ली।
असदृशमहिमानं तामनन्योपमेयां कथय कथमहं ते चेतसि व्यञ्जयामि।।[७३]

यहाँ पर 'कुच' के साथ 'कलश' विसारि के साथ स्फार आदि अविषम पदों का प्रयोग होने से समता गुण है।

कान्ति यथा–

फलैः क्लृप्ताहारः प्रथममपि निर्गत्य सदना–
द्यनासक्तः सौख्ये क्वचिदपि पुरा जन्मनि कृती।
तपस्यन्नश्रान्तं ननु वनभुवि श्रीफलदलै–
खण्डैः खण्डेन्दोश्चिरमकृत पादार्चमनसौ।।[७४]

यहाँ विरुद्ध शन्धि के त्याग से 'फलैः' क्लृप्ताहारः" में विसर्गों के अलोप से और समासहीन होने से इस श्लोक में "कान्ति" नामक गुण है।

अर्थव्यक्ति–

जहाँ पर अर्थ को समझने में किसी तरह का विघ्न नहीं रहता

वहाँ 'अर्थव्यक्ति' गुण समझना चाहिए।[७५]

यथा- त्वत्सैन्यरजसा सूर्ये लुप्ते रात्रिरभूद्दिवा।।[७६]

सूर्यास्त होने से रात्रि का आगमन स्वाभाविक है। इसको समझने के लिए किसी प्रयास की आवश्यकता नहीं होती है। अतएव इस पद्य में अर्थव्यक्ति नामक गुण है।

प्रसन्नता– जिस गुण के कारण पढ़ते ही शीघ्र अर्थाववोध हो जाय उसे

'प्रसन्नता' अथवा प्रसक्ति कहते हैं।[७७]

यथा– कल्पद्रुम इवाभाति वाञ्छितार्थप्रदो जिनः।[७८]

यहाँ यह कहने से कि जिनदेव कल्पतरु की भांति अभिकषित फल के देने वाले हैं उनकी दानशीलता अतिशीघ्र स्पष्ट हो जाती है। अतः यहाँ पर प्रसन्नता नामक गुण है।

समाधि–

जहाँ पर एक वस्तु के गुण का आधान अन्य वस्तु के साथ किया जाता है, वहाँ समाधि नामक गुण होता है।[७९]

यथा- यथाश्रुमिररिस्त्रीणां राज्ञः पल्लवितं यशः।[८०]

पल्लवित होना लतावृक्षादि का गुण है, न कि यश का किन्तु कवि ने पल्लवित होने की विशेषता को राजा के यश में निर्माजित करके समाधि गुण उत्पन्न कर दिया है।

श्लेष और ओजस-

अनेक पदों का परस्पर गुम्फित होना श्लेष है और समास का वाहुल्य ओज। समास बहुला पदावली गद्य में ही शोभित होती है, पद्य में नहीं।[८१]

यथा- मुदा यस्योद्गीतं सह्व सहचरीभिर्वनचरै-
मुर्हुः श्रुत्वा हेलोद्धतधरविभारं भुजवलम्।
दरोद्गच्छद्दर्भाङ्कुरनिकर दम्भात्पुलकिता-
श्चमत्कारौद्रेकं कुलशिखरिपस्तेऽपि दधिरे।।[८२]

यहाँ समस्त पद एक सूत्र में गुंथी गई मणियों के सदृश परस्पर गुम्फित हैं, अतः श्लेष गुण है।

ओज यथा-

समराजिस्फुरदरिनरेशकरिनिकरशिरः सरससिन्दूर-
पूरपरिचयेने वारुणितकरतलो देव।।[८३]

यह गद्यांश समासबहुल होने से 'ओज' गुण का उदाहरण हैं।

माधुर्य और सौकुमार्य–

सरस अर्थ के बोधक पदों का प्रयोग माधुर्य गुण है और कोमल-कान्त-पदावली का प्रयोग सौकुमार्य गुण है।[८४]

माधुर्य यथा–

फणिमार्ण किरणालीस्यूत चञ्चन्निचोलः।
कुचकलश निधानस्येव रक्षाधिकारी
उरसि विशदहारस्फारतामुज्जिहानः
किमिति कर सरोजे कुण्डली कुण्डलिन्याः।।[८५]

यहाँ शृङ्गाररस के अनुकूल सरस अर्थ के वोधक पद होनें से माधुर्य गुण है। सौकुमार्य, यथा–

प्रतापदीपाञ्जनराजिरेव देव। त्वदीयः करवाल एषः।
नो चोदनेन द्विषतां मुखानि श्यामाममानानिकथं कृतानि।।

यहाँ कोमल कान्त पदावली होने से सौकुमार्य गुण है[८६]। आचार्य हेमचन्द्र ने माधुर्य, ओज तथा प्रसाद-इन तीन गुणों को स्वीकार किया है–

माधुर्यौजः प्रसादास्त्रयोगुणाः।।[८७]

तथा अन्य सभी गुणों का खण्डन किया है। आचार्य मम्मट द्वारा किये गये खण्डन की अपेक्षा आचार्य हेमचन्द्र का खण्डन-मण्डन अधिक व्यापक है। जबकि आचार्य हेमचन्द्र ने स्वोपज्ञ विवेक टीका में विस्तारपूर्वक रसवादी आचार्यों के अतिरिक्त अज्ञातनामा आचार्य मम्मट,

ओज, प्रसाद, मधुरिमा, साम्य और सौदार्य नामक ५ गुणों का भी खण्डन किया है[८८] तथा उनका भी खण्डन किया है जो छन्द विशेष के आधार पर गुणों की शोभा मानते हैं, जैसे स्रग्धरा आदि छन्दों में ओजो गुण आदि।[८९] उनकी मान्यता है कि लक्षण में व्यभिचार होने से, उच्यमान तीन ही गुणों में अन्तर्भान होने से या दोष परिहार के रूप में स्वीकृत होने से अन्य गुणों को नहीं माना जा सकता। अतः उनके अनुसार गुण तीन ही हैं, दस अथवा पांच नहीं

त्रयो न तु दश पञ्च वा। लक्षणव्यभिचारादुच्यमानगुणेष्वन्तर्भावात्। दोषपरिहारेण स्वीकृतत्वाच्च।[९०]

इस सन्दर्भ में उनकी विवेक टीका अति महत्त्वपूर्ण है जिसमें उन्होंने दस गुणों के अतिरिक्त पांच गुणों का उल्लेखपूर्वक खण्डन किया है जो कि उनके व्यापक अध्ययन का परिचय प्रस्तुत करता है। हेमचन्द्राचार्य द्वारा स्वीकृत माधुर्य, ओज व प्रसाद गुण का विवेचन इस प्रकार है–

(१) माधुर्य–

माधुर्य गुण संभोग श्रृङ्गार में द्रुति का हेतु है। अर्थात् द्रुतिका हेतु और संभोग श्रृङ्गार में रहने वाला जो धर्म है वह माधुर्य कहलाता है।[९१] द्रुति का अर्थ है आर्द्रता अर्थात् चित्त का द्रवीभाव। श्रृंङ्गार के अंगभूत हास्य और अद्भुत आदि रसों में भी माधुर्य गुण होता है।[९२] अत्यन्त द्रुति का कारण होने से यह माधुर्य गुण शान्त, करुण और विप्रलम्भ श्रृङ्गार में भी अतिशय युक्त (चमत्कारोत्पादक) होता है।[९३]

माधुर्य के इस स्वरूप विवेचन में मम्मट का ही प्रभाव परिलक्षित होता है, परन्तु मम्मट ने माधुर्य को द्रुतिहेतु के अतिरिक्त आह्लादस्वरूप वाला भी कहा है।[९४]

साथ ही करुण, विप्रलंभ तथा शान्त में माधुर्य को उत्तरोत्तर चमत्कारजनक कहा है।

'करुणे विप्रलम्भे तच्छान्ते चातिशयान्वितम्।।"

जबकि आचार्य हेमचन्द्र ने इस क्रम को बदलकर शान्त, करुण और विप्रलम्भ कर दिया है। जहाँ आचार्य मम्मट ने तीनों गुणों का स्वरूप वतलाकर वाद में उसके व्यञ्जक वर्णादि की चर्चा की है वहीं आचार्य हेमचन्द्र ने ऐसा न करके एक-एक गुण से सम्बन्धित सभी बातों पर विचार किया है।

माधुर्य गुण के स्वरूप-विवेचन के वाद वे उसके व्यञ्जकों का निरुपण करते हुए लिखते हैं कि अपने अन्तिम वर्ण से युक्त, ट वर्ग को छोड़कर अन्य सभी वर्ग ह्रश्व रकार तथा णकार और समासरहित (या अल्पसमास वाली) कोमल रचना माधुर्य व्यञ्जक है।[९६]

इसमें आचार्य हेमचन्द्र ने प्रायः मम्मट का अनुसरण करते हुए माधुर्य गुण के व्यञ्जक वर्ण, समास और रचना का प्रतिपादन किया है।[९७]

वृन्ति में उन्होंने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है कि अपने वर्ग के (अन्तिम) पञ्चम वर्ण ङ ञ ण न म से युक्त, शिर के वर्ण सहित

(क वर्ग, च वर्ग आदि) अटवर्ग अर्थात् ट वर्ग रहित- ट ठ ड ढ़ रहित शेष वर्ण और ह्रस्व से व्यवहृत रेफ और णकार- ये वर्ण और असमास अर्थात् समास रहित या छोटे-छोटे समास वाली तथा मृदु रचना माधुर्य गुण की व्यञ्जक होती हैं।[९८]

यथा-

शिञ्जानमञ्जुमञ्जीराश्चारूकाञ्चनकाञ्चयः।

कङ्कणाङ्कभुजा भान्ति जितानङ्ग तवाङ्गनाः।।[९९]

प्रस्तुत रचना में अधिकांशतः वर्ग के पंचम वर्णों का प्रयोग किया गया है। अतः यह रचना माधुर्यगुण की व्यञ्जक है।

इसी प्रकार-

दारुणरणे रणन्तं करिदारुणकारणं कृपाणंते।

रमणकृते रणकरणकी पश्यति तरुणीजनो दिव्यः।।[१००]

इस उदाहरण में रेफ व णकार की वहुलता होने से ये वर्णादि माधुर्य गुण के व्यञ्जक हैं किन्तु इससे भिन्न- ट वर्गादि से युक्त रचना माधुर्यगुण की व्यञ्जक नही यथा-

अकुण्ठोत्कण्ठया पूर्णमाकण्ठं कलकण्ठिमाम्।

कम्बुकण्ठयाक्षणं कण्ठेकुरु कण्ठार्तिमुद्धर।।[१०१]

यहाँ शृङ्गार रस के प्रतिकूल वर्णों का समायोजन होने से माधुर्य गुण नहीं है। इसे मम्मट ने प्रतिकूलवर्णता नामक वाक्य दोष के उदाहरण

के रूप में प्रस्तुत किया है। आचार्य हेमचन्द्र ने एक और प्रत्युदाहरण प्रस्तुत कर शृङ्गार के प्रतिकूल वर्णों को दिखाया है। यथा–

वाले मालेयमुच्चैर्न भवति गगन व्यापिनी नीरदानां।
कि त्वं पक्षमान्तवान्तैर्मलिन यसिमुधा वक्त्रमश्रुप्रवाहैः
एषा प्रोद्वृत्तमन्तद्विपकटकषणक्षुण्णवन्ध्योपलाभा।
दावाग्नेवर्योम्नि लग्ना मलिनयति दिशां मण्डलं धूमलेखा।।[१०२]

यहाँ दीर्घ समास से युक्त, परुष वर्णों वाली रचना विप्रलम्ब शृंगार के विरुद्ध है।

(२) ओजस–

चिन्त की दीप्ति अर्थात् उज्ज्वलता या विस्तार में जो कारण हो वह ओजगुण कहलाता है। यह वीर, वीभत्स और रौद्ररस में क्रमशः अधिक अतिशयान्वित होता है अर्थात् वीर की अपेक्षा वीभत्स और वीभत्स की अपेक्षा रौद्ररस में तथा रौद्र के अंगभूत अद्भुत रस में भी ओजगुण क्रमशः अधिक अतिशय युक्त होता है।[१०३] ओजगुण के विवेचन में भी मम्मट का प्रभाव स्पष्ट है।[१०४] आचार्य हेमचन्द्र ने मात्र "तेषामंगेऽद्भुते च" अधिक कहा है। व्यञ्जकों के निरूपण में भी मम्मट से पूर्ण समानता है।

योग आद्यतृतीयाभ्यामन्त्ययो रेण तुल्ययोः।
टादिः शषौ वृत्तिदैर्ध्य गुम्फ उद्धत ओजसि।।[१०५]"

आचार्य हेमचन्द्र लिखते है कि वर्ग के प्रथम और तृतीय वर्णों का

क्रमशः द्वितीय और चतुर्थ वर्ण के साथ योग, रेफ और तुल्यवर्ण से युक्त वर्ण तथा ट वर्ग और श, ष, वर्ण दीर्घ समासवाली और कठोर (उद्धत) रचना ओजगुण की व्यञ्जक है।[१०६] आगे उन्होंने लिखा है कि प्रथम वर्ण से द्वितीय वर्ण तथा तृतीय वर्ण से चतुर्थ वर्ण के मिले हुए वर्ण, नीचे ऊपर या दोनों जगह किसी भी वर्ण के साथ रेफ का संयोग तुल्यवर्णों का संयोग णकार रहित ट वर्ग (ट ठ ड ढ) श, ष का संयोग और दीर्घ समासवाली कठोर रचना ओजगुण की व्यञ्जक है।[१०७]

आचार्य हेमचन्द्र ने ओजगुण के उदाहरण स्वरूप में निम्न पद्य प्रस्तुत किया है–

मूर्ध्नामुद्वृत्तकृता विरलगलगलद्रक्त संसक्त धारा।
धौतेशङ्घ्रिप्रसादोपनतजयजगज्जातमिथ्यामहिम्नाम्।।
कैलासोल्लासनेच्छाव्यतिकरपिशुनोत्सर्पिदर्पो द्धराणां–
दोष्णां चैषां किमेतत्फलमिह नगरीरक्षणे यत्प्रयासः।।[१०८]

यहाँ उपर्युक्त वर्णो की संरचना और दीर्घ समासादि के होने से ओजगुण की अभिव्यक्ति हो रही है। आचार्य मम्मट ने इसे अविमृष्टविधेयांश नामक समासगत दोष के उदाहरण रूप में भी उद्धृत किया है।[१०९] उपर्युक्त कथित वर्णों से विपरीत वर्णों वाली रचना ओजगुण की व्यञ्जक नहीं होती हैं। जैसे–

देशः सोऽमरातिशोणितजलैर्यस्मिन्ह्रदाः पूरिताः।
क्षत्रादेव तथाविधः परिभवस्तातस्य केशग्रहः।।

तान्येवाहितशस्त्रधस्मर गुरुण्यस्त्राणि भास्वस्ति नो।

भद्रामेण कृतं तदेव कुरुते द्रोणात्मजः क्रोधनः।।[११०]

इसमें उक्त प्रकार के वर्णों का अभाव है तथा समास-रहित अनुद्धत रचना होने से ओजोगुण विरुद्ध है।

(३) प्रसाद-

विकास का हेतु प्रसाद गुण सभी रसों में होता है। शुष्क ईंधन में अग्नि की भांति तथा स्वच्छ जल की तरह चित्त में सहसा व्याप्त होने वाला तथा समस्त रसों में पाया जाने वाला प्रसाद गुण है।[१११] प्रायः यही मत आचार्य मम्मट का भी है।[११२] श्रवणमात्र से अर्थवोध कराने वाले वर्ण समास और रचनाएं प्रसादगुण की व्यञ्जक हैं।[११३]

यथा-

दातारो यदि कल्पशारिवभिरलं यद्यर्थिनः किंतृणैः।

सन्तश्चेदमृतेन किं यदि खलास्तत्कालकूटेन किम्;

संसारेऽपि सतीन्द्रजालमपरं यद्यस्ति तेनापि किम्।।[११४]

माधुर्य, ओज व प्रसाद के व्यञ्जक वर्णों को क्रमशः उपनाशरिका परुषा व कोमला नामक वृत्ति कहा गया है और अन्य आचार्य इन्हें ही वैदर्भी, गौडी और पाञ्चाली रीति कहते हैं जैसा कि कहा गया है-

माधुर्यव्यञ्जकैवर्णैरुपनागरिकेष्यते।

ओजः प्रकाशकैस्तेऽस्तु परुषा कोमला परैः।।

केषाञ्चिदेता वैदर्भीप्रमुखा रीतियोमताः।।[११५]

वृत्ति, रीति, मार्ग, संघटना तथा शैली प्रायः समानार्थ है। वृत्ति शब्द का प्रयोग उद्भट ने किया है। उन्होंने अपने काव्यालङ्कारसारसंग्रह में उपनागरिका, परुषा तथा कोमला नामक तीन वृत्तियों का विवेचन किया है। इन्ही तीन वृत्तियों को वामन ने तीन प्रकार की रीतियों के रूप में, कुन्तक तथा दण्डी ने तीन प्रकार की मार्गों के रूप में और आनन्दवर्धन ने तीन प्रकार की संघटना के रूप में माना है। अतः उद्भट की वृत्तियाँ, वामन की रीतियाँ, दण्डी और कुन्तक के मार्ग तथा आनन्दवर्धन की संघटना एक ही भाव को व्यक्त करती है।[११६] हेमचन्द्राचार्य के अनुसार पूर्वोक्त गुणों में यद्यपि वर्ण, रचना, समासादि नियत (निश्चित) हैं तथापि कहीं-कहीं वक्ता, वाच्य (प्रतिपाद्य विषय) तथा प्रबन्ध के औचित्य से वर्णादि का अन्य प्रकार का प्रयोग भी उचित माना जाता है।[११७] कहीं-कहीं वाच्य तथा प्रबन्ध दोनों की उपेक्षा करके केवल वक्ता के औचित्य से ही रचना होती है।

जैसे– 'मन्थायस्तार्णवाम्भ....................।[११८]

इत्यादि। कहीं वक्ता तथा प्रबन्ध दोनों की उपेक्षा करके केवल वाच्य के औचित्य से ही रचनादि होती है। जैसे–

प्रौढच्छेदानुरूपोच्छल................।[११९]

इत्यादि तथा कहीं-कहीं वक्ता तथा वाच्य की उपेक्षा करके प्रबन्ध

के औचित्य के अनुसार रचनादि होती है, यथा– आख्यायिका में शृङ्गार के वर्णन में कोमल वर्णादि प्रयुक्त नहीं होते हैं। कथा में रौद्ररस में भी दीर्घ समासादि प्रयुक्त नहीं होते हैं। इसी प्रकार अन्य औचित्यों का भी अनुसरण करना चाहिए।[१२०]

आचार्य नरेन्द्र प्रभसूरि ने वामन सम्मत दस शब्द गुणों तथा दस अर्थगुणों का खण्डन करके आचार्य मम्मट तथा हेमचन्द्र आदि द्वारा स्वीकृत माधुर्यादि तीन गुणों की स्थापना की है।[१२१] उनका कथन है कि वामन ने जो समास रहित पदों वाली रचना को माधुर्य गुण कहा है, वह "अस्त्युत्तरस्याम्" इत्यादि पद्य में विद्यमान है, पुनः उसे अर्थश्लेष का उदाहरण प्रस्तुत कर अर्थश्लेष को अलग से गुण मानना ठीक नहीं है इसी प्रकार रचना की अकठोरता रूप शब्दसौकुमार्य, कोमल-कान्त पदावली रूप अर्थ सौकुममार्य, अर्थ का दर्शन रूप अर्थ समाधि और घटना का श्लेष रूप अर्थश्लेष नामक जो गुण है, इनका हमें जो माधुर्य गुण का स्वरूप अभीष्ट है उसमें अन्तर्भाव हो जाता है[१२२]। अतः उक्त गुणों को पृथक्-पृथक् मानना ठीक नही है।

रचना की गाढ़ता ओज नामक शब्दगुण, अर्थ की प्रौढ़ि ओज नामक अर्थ गुण, अनेक पदों का एक पद के समान दिखाई देना शब्दश्लेष, आरोह और अवरोह का क्रम शब्द समाधि, बन्ध की विकटता उदारता नामक शब्दगुण बन्ध की उज्ज्वलता कान्ति नामक शब्दगुण और रचना में रसों की दीप्ति-कान्ति नामक अर्थगुण कहलाता है। इन गुणों के मूल में

चित्त के विस्तार रूप दीप्ति विद्यमान है, जो ओजोगुण का स्वरूप है अतः उनका अन्तर्भाव ओजोगुण में हो जायेगा।

ओजोगुण मिश्रित रचना की शिथिलता प्रसाद नामक शब्दगुण, अर्थ स्पष्टता रूप प्रसाद नामक अर्थगुण, शीघ्र ही अर्थ का बोध कराने वाली रचना अर्थ व्यक्ति नामक शब्दगुण और जो रचना वस्तु के स्वभाव का स्पष्ट रूप से विवेचन कराये वह अर्थव्यक्ति नामक अर्थ गुण कहलाता है। इनका अन्तर्भाव हमें अभीष्ट लक्षण वाले प्रसादगुण में हो जाता है।[१२३]

काव्य में निबद्ध रचना शैली का अन्त तक परित्याग न करना समता नामक शब्दगुण प्रक्रम का अभेद रूप अविषमता नामक अर्थगुण और रचना में ग्राम्यता का अभाव उदारता नामक अर्थगुण कहलाता है। समता तथा उदारता में दोनों क्रमशः भ्रग्नप्रक्रम व ग्राम्यदोष का अभावमात्र है।[१२४]

इस प्रकार वामन ने जो दस शब्दगुण व दस अर्थगुण माने है वे ठीक नहीं है, क्योंकि उनका माधुर्य, ओज और प्रसाद नामक तीनों गुणों में अन्तर्भाव हो जाता है। पुनः आचार्य नरेन्द्रप्रभसूरि ने अपने द्वारा स्वीकृत इन माधुर्यादि तीन गुणों का लक्षण सहित उदाहरण पूर्वक विवेचन किया है तथा आचार्य हेमचन्द्र के समान प्रत्येक गुण के उदाहरण के साथ उसका प्रत्युदाहरण भी प्रस्तुत किया है। इसके साथ ही रसों में गुणों की तारतम्यता व गुणों के व्यञ्जक वर्ण-विशेषों का भी निर्देश किया है।[१२५] आचार्य वाग्भट- द्वितीय ने सर्वप्रथम भरतमुनि सम्मत दस काव्य गुणों के

नामोल्लेखपूर्वक लक्षण प्रस्तुत किये है, किन्तु इन्होंने स्वयं केवल माधुर्यादि तीन गुणों को ही स्वीकार किया है तथा शेष का अन्तर्भाव इन्ही तीन गुणों में माना है।[१२६] आचार्य भावदेवसूरि ने गुणवर्णन प्रसंग में पहले भरतादि- सम्मत श्लेष, प्रसाद आदि दस गुणों का नामोल्लेख किया है तथा प्रत्येक का लक्षण व संक्षेप में उदाहरण भी प्रस्तुत किया है।[१२७]

इसी क्रम में माधुर्यादि तीन गुणों का भी परैः पद से उल्लेख किया है।[१२८] जो अन्य मत का द्योतक है। अतः उनके अनुसार दस गुण ही मानना चाहिए। इस प्रसंग में भावदेवसूरि ने शोभा, अभिमान, हेतु, प्रतिषेध, निरूक्त, युक्ति, कार्य और प्रसिद्धि इन आठ काव्य चिन्हों (काव्य लक्षणों) का उल्लेख किया है।[१२९] जो इस प्रकार है–

१. शोभा– दोष का निषेध। यथा–

जहाँ तुम हो वहाँ कलियुग भी शुभ है।

२. अभिमान– वस्तुविषयक ऊहापोह। यथा–

यदि वह चन्द्रमा है तो उष्णता कैसे?

३. हेतु– अन्यदेकोक्ति का त्याग हेतु है। यथा–

"न इन्दुर्नार्कोगुरुहासौं"।

४. प्रतिषेध– निषेध। यथा–

तुमने युद्ध से नहीं, भौंह से ही शत्रुओं को जीत लिया।

५. निरुक्त– निर्वचन। यथा–

उन दोनों को मै इस प्रकार समझता हूँ, किन्तु आप दोषाकर हैं।

६. युक्ति– विशिष्टता। यथा–

तुम नवीन जलद हो, जो सोने की वर्षा करते है।

७. कार्य– फलकथन। यथा–

रात्रिरुपी स्त्री से विशिष्ट यह चन्द्रमा (आप दोनों को) अच्छेद (संयोग) के लिए उदित हो रहा है।

८. प्रसिद्धि– प्रसिद्ध वस्तुओं में तुल्यता का कथन- यथा–

समुद्र जल से महान है और आप वल से महान हैं।

इस प्रकार इस सम्पूर्ण विवेचन से स्पष्ट होता है कि इन सभी जैनाचार्यों ने अलङ्कार शास्त्र की परम्परा का अक्षुण्ण रूप से निर्वाह करते हुए अपनी शैली में गुण स्वरूप आदि विषयों पर विवेचन प्रस्तुत किया है। आचार्य हेमचन्द्र ने जो अतिरिक्त पांच काव्यगुणों का उल्लेख पूर्वक खण्डन किया है, वह अन्य किसी आचार्य द्वारा निर्दिष्ट न किये जाने के कारण उल्लेखनीय है। आचार्य वाग्भट प्रथम भावदेवसूरि- ये जैनाचार्य भरत तथा वामन आदि के अनुयायी हैं, क्योंकि इन्होंने दस गुणों का समर्थन किया है। आचार्य हेमचन्द्र, नरेन्द्रप्रभसूरि व वाग्भट द्वितीय ये तीन जैनाचार्य आनन्दवर्धन व मम्मटादि के समर्थक हैं क्योंकि इन्होंने माधुर्यादि तीन गुणों को ही स्वीकार किया है तथा शेष का इन्हीं में अन्तर्भाव किया है। इस

प्रकार यह कहा जा सकता है कि इन सभी जैनाचार्यो ने पूर्वाचार्यो द्वारा मान्य किसी एक विचारधारा को स्वीकार कर, शेष का युक्तिपूर्वक खण्डन किया है।

इस तरह यहाँ गुणों के सम्बन्ध में मान्य अन्यान्य विद्वानों के विचारों के साथ जैनाचार्यो द्वारा मान्य विचारों के उल्लेख के उपरान्त जयशेखरसूरि कृत जैनकुमार सम्भव महाकाव्य में प्रयुक्त गुणों के सम्बन्ध में विवेचन इस प्रकार किया जा रहा है–

जयशेखरसूरि ने इस महाकाव्य में काव्यशास्त्र में मान्य प्रसाद तथा माधुर्यगुणों का यथास्थान सुन्दर विवरण प्रस्तुत किया है। इसके अनेक प्रसङ्गों में प्रसाद गुण युक्त वैदर्भी रीति का प्रयोग दृष्टिगत होता है विशेषकर सुमंगला के वासगृह का वर्णन! तथा पञ्चम सर्ग में वर-वधू को दिये गये उपदेश प्रसाद गुण की सरसता तथा स्वाभाविकता से परिपूर्ण है, विवाहोपरान्त शिक्षा का यह अंश उल्लेखनीय है–

अन्तरेण पुरुषं नहि नारी, तां विना न पुरुषोऽपि विभाति।
पादपेन रुचिमञ्चति शाखा, शाखयैव सकलः किल सोऽपि।।[१३०]

योषितां रतिरलं न दुकूले, नापि हेम्नि न च सन्मणिजाले।
अन्तरंग इह यः पतिरंगः, सोऽदसीयहृदि निश्चलकोशः।।[१३१]

या प्रभुष्णुरपि भर्तरिदासी-भावमावहति सा खलु कान्ता।
कोप पङ्क कलुषा नृषुशेषा, योषितः क्षतजशोषजलूका।।[१३२]

मृदुलता तथा सहजता भाषा के माधुर्य की सृष्टि करते है। तृतीय सर्ग में इन्द्र-ऋषभदेव संवाद में माधुर्य की मनोरम छटा दर्शनीय है। वीतराग ऋषभदेव को विवाह के लिए प्रेरित करने वाली इन्द्र की युक्तियाँ उल्लेखनीय है–

जडाशया गा इव गोचरेषु, प्रजानिजाचार परम्परासु।
प्रवर्तयन्नक्षतदंडशाली, भविष्यसि त्वं स्वयमेव गोपः।।[१३३]
कला समं शिल्प कुलेन देव, त्वदेव लब्ध प्रभवा जगत्याम्।
क्वनो भविष्यन्त्युपकारशीलाः, शैलात्सरत्ना इव निर्झरिष्यः।।[१३४]
किं शंकशे दार परिग्रहेण, विरागतां निवृत्ति नायिकायाः।
प्रभुः प्रभुतेऽप्यवरोधने स्या-न्नागः पदं लुम्पतिनक्रमंचेत्।।[१३५]

तथा इन्द्र द्वारा पञ्चम सर्ग में वर ऋषभदेव को दिया गया यह उपदेश श्रवणीय है–

मुक्तिरिच्छति यदुज्झितदारं, स्त्री स्त्रियं नहि स हेतुः।
कामयन्त इतरे तु महेला युक्तमेव पुरुषं पुरुषार्थाः।।

इसी सर्ग में इन्द्र की पत्नी सची द्वारा सुमंगला को दिया गया उपदेश श्रवणीय है–

मास्म तष्यत तपः परितक्षीन मा तनूमतनुभिर्व्रतकष्टैः।
इष्टसिद्धिमिह विन्दति योषिच्चेन्न लुम्पति पतिव्रतमेकम्।।

ये सभी प्रसङ्ग माधुर्य गुण से ओत-प्रोत हैं। ओज गुण अत्यल्प

प्राप्त हुआ है।

स्वप्नभङ्गभय कम्प्रमानसो --------- र्नायिपीष्ट चरितार्थतां हलाः।१०/५८

यन्मरीचिनिकरे मनु विष्वक् -------- विष्टमदातस तमस्मै। ५/२५

दोष विवेचन-

सर्वप्रथम काव्यगत दोषों के सन्दर्भ में संक्षिप्त परिचय देना अप्रासंगिक नही होगा। काव्यगत दोषों की संख्या में उत्तरोत्तर विकास हुआ है। सर्वप्रथम आचार्य भरत ने दस दोषों का उल्लेख किया है- गूढ़ार्थ, अर्थान्तर, अर्थहीन, भिन्नार्थ, एकार्थ, अभिलुप्तार्थ, न्यायपदपेत, विषम, विसन्धि एवं शब्दच्युत।[१३६] इसके पश्चात् आचार्य भामह ने अपने काव्यालङ्कार में चार स्थलों पर दोषों का निरूपण करते हुए सर्वप्रथम छः काव्य दोषों को गिनाया है- नेयार्थ, क्लिष्ट, अन्यार्थ, अवाचक, अयुक्तिगत और गूढ़शब्दाभिधान।[१३७] तदन्तर श्रुतिदुष्ट, अर्थदुष्ट, कल्पनादुष्ट और श्रुतिकष्ट ये चार-चार वाणी दोष कहे हैं।[१३८] इसी क्रम में मेधावी के अनुसार हीनता असम्भव, लिंगभेद, वचनभेद, विपर्यय, उपमानाधिक्य, और असदृशता नामक सात दोषों का विवेचन किया है।[१३९] तत्पश्चात् काव्यसौन्दर्य के घातक अठारह प्रकार के दोषों का उल्लेख किया है- अपार्थ, व्यर्थ, एकार्थ, ससंशय अपक्रम मतिभ्रष्ट, शब्दहीन, भिन्नवृत्त, विसन्धि, देशविराधी, कालविरोधी, कलाविरोधी, लोकविरोधी, आगमविरोधी, प्रतिज्ञाहीन, हेतुहीन और दृष्टान्त हीन।[१४०]

इस प्रकार आचार्य भरत की तुलना में भामह ने काव्य दोषों की संख्या में वृद्धि की है। जबकि भामहाचार्य के ही समकालीन आचार्य दण्डी ने मात्र दश दोषों का ही विवेचन किया है, जिसका भामह ने पहले ही प्रतिपादन कर दिया था। दण्डी के दस दोष है अपार्थ, व्यर्थ, एकार्थ ससंशय, अपक्रम, शब्दहीन, मतिभ्रष्ट, भिन्नवृत्त, विसन्धि और देशकाल, कला, लोक, न्याय, आगमविरोधी।[१४१] अतः दोष प्रसंग में दण्डी ने कोई नवीन बात नहीं कही है। ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन ने श्रुतिदुष्टत्व, ग्राम्यत्व और असभ्यत्व इन तीन दोषों का विभिन्न प्रसङ्गों में नामोल्लेख किया है तथा पांच रस दोषों का भी विवेचन किया है, किन्तु अनौचित्य को उन्होंने रस-भंग का सबसे प्रमुख दोष माना है।[१४२]

आचार्य मम्मट का दोष विवेचन सर्वाधिक विस्तृत है। काव्य सम्बन्धी जितने अधिक दोष सम्भव हो सकते थे प्रायः उन सभी को आचार्य मम्मट ने गिना दिया है। उनके द्वारा प्रतिपादित लगभग सत्तर दोष है जिन्हें उन्होंने कई भागों में विभक्त करके प्रतिपादित किया है– शब्द दोष, अर्थ दोष और रस दोष। पुनः शब्द दोष के तीन भेद किये है– पद दोष, पदांश दोष और वाक्य दोष। इस प्रकार मम्मट सम्मत दोषों को पांच वर्गों में विभाजित किया जा सकता है– १. पद दोष २. पदांश दोष ३. वाक्य दोष, ४. उभय दोष ५. अर्थ दोष और ६. रस दोष जैनकुमारसम्भव में प्रयुक्त कुछ दोष निम्नवत् है–

१. अप्रयुक्त दोष–

कापि नार्धयमितश्लथनीवी, प्रक्षरन्निवसनापि ललज्जे।
नायकाननिवेशितनेत्रे, जन्यलोकनिकरेऽपि समेता।।[१५०]

नरस्य निद्रावधिवीक्षणोत्सवं, तनोति यस्तस्य फलं किमुच्यते।
विमुच्यते सोऽपि विचारतः पृथ-ग्गतः प्रथां यो मलमूत्रवाधया।।[१५१]

उपर्युक्त दोनों श्लोकों में वर्णित क्रमशः नीवी तथा मलमूत्र शब्द व्रीडा या लज्जा जनक है अतः श्लील दोष युक्त है।

३. सात्विकभाव स्वशब्दवाच्यता दोष–

"व्यभिचारि रसस्थायिभावानां शब्दवाच्यता"।[१५२]

तत्करे करशयेऽजनिजन्योः संचरे सपदि सात्विकभावैः।
सात्विको हि भगवान्निजभावं, स्वेषु संक्रमयतेऽत्र न चित्रम्।।[१५३]

यहाँ सात्विकभाव स्वशब्दवाच्य होने से दोषपूर्ण है।

संदर्भ :

१. नाट्य शास्त्र– ६/१६

२. काव्यप्रकाश– ४/४४

३. वही, ४/४५

४. दशरूपक– ४/२

५. वही, ४/३

६. वही, ४/५

७. वही, ४/६

८. वही, ४/७

९. वही, ४/८

१०. वही, ४/४३

११. वही, ४/४४

१२. जैनकुमारसम्भव– ३/१५

१३. तत्रैव– ६/२५-२६

१४. जै०कु०सं०– ४/१०

१५. वही, ५/३९

१६. वही, २/३९

१७. वही, १/२७-२८

१८. वही, ५/४१

१९. वही, ३/२४

२०. सर्वत्र भिन्न-वृत्तरूपेतं लोकरंजकम्– काव्यादर्श– १/१९

२१. 'भिन्नात्यवृत्त'– काव्यानुशासनं– आष्वां अध्याय।

२२. जै०कु०सं०– १/१

२३. वही, १/७७

२४. वही, ६/१

२५. वही, ११/७०

२६. वही, ११/७०

२७. काव्यप्रकाश- मम्मट– उल्लास ९/सू० १०३, पृ०-४०४

२८. " " " सूक्त १०५

२९. वही, उ० ९/सू० १०६, पृ०-४०५

३० जै०कु०सं०–१/२

३१. वही, ६/४६

३२ काव्यप्रकाश ९/सू० ११८, पृ०-४१५

३३. जै०कु०सं०–१०/६१

३४. काव्यप्रकाश उ० १०/सू० १२४, पृ०-४४३

३५. जै०कु०सं०–१०/३१

३६. वही, ४/७४

३७. का०प्र० उ० १०/सू० १५४, पृ०-४८६

३८. जै०कु०सं०–१०/५१

३९. का०प्र० उ० १०/सू० १६४, पृ०-५००

४० जै०कु०सं०–६/९

४१ का०प्र० उ० १०/सू० १७९, पृ०-५१८

४२. जै०कु०सं०–१/५९

४३. उद्भटादिभिस्तु गुणालङ्कारणां प्रायशः साम्यमेव सूचितम्-अलङ्कार सर्वस्व पृ०-१९

४४. समवायवृत्त्या शौर्यादय: संयोग वृत्त्या तु हारादय: गुणालङ्काराणां भेद:

ओज: पृभृतीनामनुप्रासोपमादीनां चोभयेषामपि समवायवृत्तया स्थितिरिति

गुड्डलिका प्रवाहेणेवैषां भेद:- काव्यप्रकाश, पृ०-३८४

४५ काव्यशोभाया: कर्त्तारो धर्मा: गुणा:।

तदतिशय हेतवस्त्व लंकारा:।। काव्यालङ्कार सूत्र, ३/१/१-२

४६. ध्वन्यालोक, २/६

४७. तमर्थमवलम्बन्ते येऽङ्गिनं ते गुणा: स्मृता:।

अंगाश्रितास्त्वलङ्कारा मन्तव्या: कटकादिवत्।। ध्वन्यालोक २/६

४८. ये रसस्याङ्गिनों धर्मा: शौर्यादय: इवात्मन:।

उत्कर्ष हेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणा:।। का०प्र० ८/६६

४९. रसस्योत्कर्षापकर्ष हेतु गुणदोषौ भक्त्या शब्दार्थयो:। काव्यानुशासन १/१२

५०. रसाश्रयत्वं च गुणदोषयोरन्वयकानुविधानात् .... .यदि हि तयो: स्युस्तर्हिं वीभत्सादौ कष्टत्वादयो गुणा न भवेयु: हास्यादौ चाश्लील त्वादय:।.............रस एवाश्रय:। काव्यानुसासन १/१२ वृत्ति

५१. अङ्गाश्रिता अलङ्कारा:। वही, १/१३

५२. अंङ्गाश्रिता इति। त्वंगिनि रसे भवन्ति ते गुणा:। एष एव गुणालङ्कार विवेक:– काव्यानुशासन विवेक टीका, पृ०-३४

५३. एतावता शौर्यादि सदृशा गुणा: केयुरादितुल्या अलङ्कारा इति विवेकमुक्त्वा संयोग समवायाभ्यां शौर्यादीनामस्ति भेद:। इह तूभयेषां समवायेन स्थितितिरिव्यभिधाय तस्माद गडरिका प्रवाहेण गुणालङ्कार भेद इति भामह विवरणे यद भट्टोद्भटोऽभ्यधात् तन्निरस्तम्। वही, टीका, पृ०-३४/३५

५४. काव्यानुशासन विवेक टीका, पृ०-३५

५५ वही, पृ०-३६

५६ ....वामनेन यो विवेक: कृत: सोऽपि व्यभिचारी।

तस्माद्यचोक्त एव गुणालङ्कार विवेक: श्रेयानिति।। काव्यानुशासन, टीका, पृ०-३६

५७ अलङ्कार महोदधि, ६/१

५८ वही, ६/१ वृत्ति

५९ वही, पृ०-१८७

६० श्लेषः प्रसादः समता समाधिः माधुर्योजः पद सौकुमार्यम् अर्थस्य च व्यक्तिरुदाहृता च कान्तिश्च काव्यस्य गुणा दशेते:।। नाट्यशास्त्र, १७/९६

६१ काव्यादर्श १/४१

६२. काव्यालङ्कार सूत्र ३/१/४

६३. जैनाचार्यो का काव्यालङ्कारशास्त्र में योगदान, पृ०-१८९

६४. काव्यप्रकाश- ८/७२

६५. अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, १०/५-६, १२/१८-१९

६६ सरस्वती कण्ठाभरण, १/६०-६५

६७. काव्यानुशासन, ४/१ विवेक वृत्ति

६८. चन्द्रालोक ४/१२

६९. वाग्भटालङ्कार, ३/२

७०. पदानामर्थचारुत्वप्रत्यायकपदान्तरैः।

मिलितानां यदाधानं तदौदार्यं स्मृतं यथा।। वही, ३/३

७१. वाग्भटालङ्कार, ३/४

७२ वन्धस्य यदवैषम्यं समता सोच्यते बुधैः।

यदुज्जवलत्वं तस्यैव सा कान्तिरुदिता यथा। वही, ३/५

७३. वही, ३/६

७४. वाग्भटालङ्कार, ३/७

७५. यद्यज्ञेयत्वमर्थस्य सार्थ व्यक्तिः स्मृता यथा। वही, ३/८ का पूर्वार्द्ध

७६ वही, ३/८ का उत्तरार्द्ध

७७ झटित्यर्थापकत्वं यत्प्रसक्तिः सोच्यते बुधैः। वाग्भटालङ्कार, ३/१० का उत्तरार्द्ध

७८ वही, ३/१० का उत्तरार्द्ध

७९ स समाधिर्यदन्यस्य गुणोऽन्यत्र निवेश्यते। वही, ३/११ का पूर्वार्द्ध

८० वही, ३/११ का उत्तरार्द्ध

८१. श्लेषो यत्र पदानि स्युः स्युतानीव परस्परम्।

ओजः समासभूयस्त्वं तदगद्येष्वतिसुन्दरम्।। वही, ३/१२

८२ वही, ३/१३

८३ वही, ३/१४

८४. सरसार्थपदत्वं यत्तन्माधुर्यमुदाहृतम्।

अनिष्ठुराक्षरत्वं यत्सौकुमार्यमिदं यथा। वही, ३/१५

८५ वाग्भटालङ्कार, ३/१६

८६ वही, ३/१७

८७. माधुर्योजः प्रसादास्त्रयो गुणाः। काव्यानुशासन, ४/१

८८ ओज प्रसाद मधुरिमापः साम्यमौदार्यं च पंचेत्यपरे। तथा हि

यददर्शितविच्छेदं पठतामोजः विच्छिद्य पदानि पठतां प्रसादः,

आरोहावरोहतरंगिणि पाठे माधुर्यम्, सशोष्ठवमेव स्थानं

पठतांमौदार्यम् अनुच्चनीचं पठतां साम्यमिति। तदिदमलीकं

कल्पनातन्त्रम्। यद्विषमविभागेन पाठनियमः स कथं गुण निमित्तमिति।, काव्यालङ्कार– ४/१ टीका

८९. छन्दो विशेष निवेश्या गुणसंपत्तिरितिकेचित। तथाहि। स्रग्धरादिष्वोजः– वही, ४/१ विवेक टीका

९०. वही, वृत्ति, पृ०-२७४

९१. द्रुति हेतु माधुर्यं शृङ्गारे– काव्यानुशासन, ४/२

९२ द्रुतिरद्रिता गलितत्वमिव चेतसः। शृङ्गारेऽर्थात्सयोगे शृङ्गारस्य च ये हास्याद्भुतादयो रसा अंगानि तेषामपि माधुर्यं गुणः। काव्यानुशासन वृत्ति, पृ०-२८९

९३ शान्तकरुणविप्रलम्भेषु सातिशयम- काव्यानुशासन, ४/३

९४ आह्लादकत्वं माधुर्यं शृङ्गारे द्रुति कारणम्- काव्यप्रकाश, ८/६८ का उत्तरार्द्ध

९५ वही, ८/६९ का पुर्वार्द्ध

९६ तन्त्र निजान्त्याक्रान्ता अटवर्गा वर्गा ह्रस्वान्तरितौ रणावसमासोमृदुरचना च- काव्यानुशासन, ४/४

९७ तुलनीयः मूर्ध्नि वर्गान्त्यगाः स्पर्शा अटवर्गा रणौ लघू।
अवृत्तिर्मध्य वृत्तिर्वा माधुर्ये घटना तथा।। का०प्र०, ८/७४

९८ निजेन निजवर्ग सम्वन्धिन्त्येन ङञणनमलक्षणेन शिरस्याक्रान्ता अटवर्गाः ट ठ ड ढ रहित। वर्गा ह्रस्वान्तरितौ च रेफणकारौ। असमास इति समासभावोऽपसमासता वा मृद्धि च रचना। तत्र माधुर्ये माधुर्यस्य व्यञ्जिकेत्यर्थः।- काव्यानुशासन, वृत्ति, पृ०-२८९

९९ वही, पृ०-२८९

१०० वही, पृ०- २९०

१०१. वही, पृ०-२९०

१०२ वही, पृ०-२९०

१०३. दीप्ति हेतुरोजो वीर बीभत्सरौद्रेषु क्रमेणाधिकम्। दीप्ति रुजज्वला, चित्तस्य विस्तार इति यावत्। क्रमेणेति वीराद् वीभत्से ततोऽपि रौद्रे तेषामंगेऽद्भुते च सातिशययोजः। काव्यानुशासन, ४/५, पृ०-२९०

१०४. तुलनीय काव्यप्रकाश ८/६९ व ७० का पुर्वार्द्ध

१०५. का०प्र०- ८/७५

१०६. आद्यतृतीयाक्रान्तौ द्वितीय तुर्यौ युक्तो रेफस्तुल्यश्च ट वर्ग शषा वृत्ति दैर्ध्यमुद्धतागुम्फश्चात्र। काव्यानुशासन, ४/६

१०७ आद्येन द्वितीयत्तृतीयेन चतुर्थ आक्रान्तो वर्णस्तथाधः उपरि अभयत्र वा येन केन चित्संयुक्तो रेफ स्तुलयश्च वर्णो वर्णेन युक्तस्तया ट वर्गोऽर्थाण्णकार वर्जः शषौ च। दीर्घः समास कठोरा रचना च। अत्रौजसि। ओजसो व्यञ्जिकेत्यर्थः। काव्यानुशासन, वृत्ति, पृ०-२९

१०८ वही, पृ०-२९

१०९ का०प्र०, उदाहरण, ३५०

११० वही, पृ०-२९१

१११ विकासहेतुः प्रसादः सर्वत्र। विकासः शुष्केन्धनाग्नि वत्स्वच्छजल वच्च सहसैव चेतसां व्याप्तिः। सर्वत्रेति सर्वेषु रसेषु। काव्यानुशासन, ४/७, पृ०-२९१

११२ काव्यप्रकाश, ८/७०

११३ इह श्रुतिमात्रेणार्थ प्रत्यायका वर्णवृत्ति गुम्फाः।
श्रुत्यैवार्थप्रतीतिहेतवो वर्ग समास रचनाः। काव्यानुशासन, ४/८, पृ०-२९१

११४. वही, पृ०- १९२

११५. वही, पृ०- १९२

११६. आचार्य विश्वेश्वर काव्यप्रकाश, पृ०- ४०५

११७. वक्तृवाच्यप्रबन्धौचित्याद्धर्वादीनामन्यथात्वमपि– काव्यानुशासन, ४/९

११८. वही, पृ०- २९२

११९ वही, पृ०- २९३

१२०. वही, पृ०- २९२-२९४

१२१ गुणाश्चान्ये जगुः शब्दगतान् दशार्थगान्।
माधुर्योजः प्रसादास्तु सम्मतास्त्रय एव नः।। अलङ्कार महोदधि- ६/३

१२२. अलङ्कार महोदधि- पृ०-१९०-९१

१२३. वही, पृ०- १९४-९५

१२४ वही, पृ०- १९५

१२५ वही, ७/१५-२८

१२६ दण्डिवामनवाग्भटादिप्रणीता दशकाव्यगुणाः। वयं तु माधुर्योजः प्रसाद लक्षणां स्त्रीनेव गुणान्मन्यामहे। शेषास्तेष्वेवान्तर्भवन्ति। काव्यानुशासन, वाग्भट टीका, पृ०-३९

१२७ काव्यालङ्कार- ४/२-७

१२८ वही, ४/८

१२९. काव्यालङ्कारसार- ४/९

१३०. जै०कु०सं०- ५/६१

१३१. वही, ५/६३

१३२. वही, ५/८१

१३३. वही, ३/५

१३४. वही, ३/७

१३५ वही, ३/२१

१३६. नाट्यशास्त्र- १७/८८

१३७. काव्यालङ्कार, १/३७

१३८. वही, १/४७

१३९. वही, २/३९-४०

१४० वही, ४/१-२

१४१ काव्यादर्श, ३/१२५-१२६

१४२. जैनाचार्यों का अलङ्कार शास्त्र में योगदान, पृ०-१४६

१४३. का०प्र०, पृ०-२६८

१४४ जै०कु०सं०, १/३०

१४५ वही, १/५६

१४६ वही, ६/६७

१४७ वही, ६/७३

१४८ वही, ८/३

१४९ का०प्र०, पृ०- २७१

१५० जै०कु०सं०, ५/३९

१५१ वही, ९/४

१५२ का०प्र०, पृ०-३५७

१४३ जै०कु०सं०, ५/५

१४४. जै०कु०सं०- १/३०

१४५. वही - १/५६

१४६ वही - ६/६७

१४७ वही - ६/७३

१४८. वही - ८/३

१४९. काव्यप्रकाश - पृ० २७१

१५०. जै०कु०सं० ५/३९

१५१. वही - ९/४

१५२. काव्यप्रकाश पृ० ३५७

१५३. जै०कु०सं० ५/५

षष्ठ अध्याय

जैनकुमारसम्भव की कलापक्षीय समीक्षा

जैनकुमारसम्भव के समीक्षात्मक अध्ययन के अन्तर्गत भाषा, शैली, भावाभिव्यक्ति की अनूठी कल्पना आदि का प्रकाशन अभीष्ट है।

(क) भाषा की दृष्टि से समीक्षा–

भाषा वह माध्यम है, जिसकी सहायता से व्यक्ति अपने आन्तरिक विचारों की अभिव्यक्ति करता है तात्पर्य यह है कि भाषा अभिव्यक्ति का एक मात्र साधन है भाषा की सफलता उसके शब्द चयन पर आधारित है संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि थोड़े शब्दों में अधिक गम्भीर अर्थों को ग्रहण करने वाली भाषा ही सफल भाषा है।

महाकवि जयशेखर सूरि ने जैनकुमारसम्भव में ऋषभदेव के वाक्कौशल प्रसङ्ग में भाषा के गुणों के विषय में स्पष्ट संकेत किया है।

स्वादुतां मृदुलतामुदारतां,
सर्वभावपटुतामकूटताम्।
शंसितु तव गिरः समं विधिः,
किं व्यधान्न रसनागणं मम।।[1]

श्री जयशेखर सूरि के अनुसार भाषा की सफलता उसकी स्वादुता, मृदुलता, सर्वभावपटुता, अर्थात् समर्थता, उदारता तथा अकूटता अथवा स्पष्टता पर आश्रित है और कवि ने भाषा के प्रयोग में अपने उपर्युक्त मतों का अधिकांशतः निर्वाह किया है।

यद्यपि जैनकुमारसम्भव, महाकाव्यों की ह्रासकालीन रचनाओं में एक है फिर भी इसकी भाषा महाकवि माघ तथा श्री हर्ष की भाषा की भाँति

कष्टसाध्य एवं दुरुह नही हैं। जयशेखर सूरि ने भाषा के सम्बन्ध में हेमचन्द्र, वाग्भट्ट आदि जैनाचार्यो के भाषा विधानों का उल्लंघन करके, जैनकुमारसम्भव में चित्रबन्ध की योजना न कर सुरुचिपूर्ण ललित भाषा का प्रयोग किया है।

इस महाकाव्य की भाषा उदात्त एवं प्रौढ़ है और भाषा की यह उदात्तता और उसकी प्रौढ़ता ही जैनकुमारसम्भव की प्रमुख विशेषता है। काव्य में बहुधा प्रसादगुण और भावानुकूल पदावली प्रयुक्त हुई है। प्रसंगानुसार भाषा का व्यवहार जयशेखर सूरि के भाषाधिकार का द्योतक है।

जैनकुमारसम्भव की भाषा के परिष्कार तथा सौन्दर्य का श्रेय मुख्यतः अनुप्रास और गौणतः यमक अलंकार की विवेकपूर्ण संयत-योजना को है। काव्य में जिस कोटि के अनुप्रास तथा यमक अलंकार प्रयुक्त हुए है उससे भाषा में माधुर्य तथा मनोरम झंकृति उत्पन्न हुई है।

इन्द्र द्वारा विवाह की स्वीकृति के लिए विनय प्रसंग में अनुप्रास एवं यमक की छटा द्रष्टव्य है–

शठौ समेतौ दृढसरव्यमेतौ, तारुण्यमारौ कृतलोकमारौ।
भेत्तुं यत्तेनां मम जातु चित्त-दुर्गं महात्मन्निति मास्ममंस्याः।।[२]
मया दृशा पश्यसि देव रामा, इमामनोभूतरवारिधाराः।
तां पृच्छ पृथ्वीधरवंशवृद्धौ, नैताः किमंभोधरवारिधारा।[३]

जो स्त्री समर्थ होते हुए भी अपने पति के प्रति दासी का भाव

रखती है, वास्तविक रूप में वही स्त्री कहलाने की अधिकारिणी है। शेष स्त्रियाँ तो खून चूसने वाले जोक की तरह है। तथा ऋषभ की स्वीकृति-प्राप्ति के लिए उपर्युक्त वातावरण का निर्माण करता है।

जयशेखर ने काव्यशास्त्र में मान्य प्रसाद, माधुर्य तथा ओजगुणों का यथास्थान सुन्दर विवरण प्रस्तुत किया है। अतएव जैनकुमारसम्भव में ये तीनों गुण विद्यमान है। इस महाकाव्य की भाषा प्राञ्जल है। अतः इसके अनेक प्रसंगों में प्रसाद गुण सम्पन्न वैदर्भी रीति का प्रयोग दिखाई पड़ता है। विशेषकर सुमंगला के वासगृह का वर्णन तथा पञ्चम सर्ग में वर-वधू को दिये गये उपदेश प्रसाद्गुण की सरसता तथा स्वाभाविकता से परिपूर्ण है। इन दोनों प्रकरणों की भाषा सहज है अतः वह तत्काल हृदयंगम हो जाती है। विवाहोत्तर 'शिक्षा' का यह अंश इस दृष्टि से उल्लेखनीय है-

> "अन्तरेण परुषं नहि नारी, तां विना न पुरुषोऽपि विभाति।
> पादपेन रुचिमञ्चति शाखा, शाखयैव सकलः किल सोऽपि।।[४]
> या प्रभुष्णुरपि भर्तरि दासी-भावमावहति सा खलु कान्ता।
> कोपपङ्ककलुषा नृषु शेषा, योषितः क्षतजशोषजलूकाः।।[५]

मृदुलता तथा सहजता भाषा के माधुर्य की सृष्टि करते है। तृतीय सर्ग में इन्द्र-ऋषभदेव संवाद में माधुर्य की मनोरम छटा दर्शनीय है।

वीतराग ऋषभदेव को विवाहार्थ प्रेरित करने वाली इन्द्र की युक्तियां इस प्रकार है-

जडाशया गा इव गोचरेषु, प्रजानिजाचारपरम्परासु।

प्रवर्तयन्नक्षतदंडशाली, भविष्यसि त्वं स्वयमेव गोपः।।[६]

कलाः समं शिल्प कुलेन देव, त्वदेव लब्धप्रभवा जगत्याम्।

क्नो भविष्यन्त्युपकारशीलाः, शैलात्सरत्ना इव निर्झरिण्यः।।[७]

किं शंकरो दारपरिग्रहेण,

विरागतां निर्वृतिनायिकायाः।

प्रभुः प्रभुतेऽप्यवरोधने स्या-

न्नागः पदं लुम्पति न क्रमं चेत्।।[८]

और इन्द्र द्वारा पञ्चम सर्ग में वर ऋषभदेव को दिया गया यह उपदेश श्रवणीय है–

मुक्तिरिच्छति यदुज्झितदारं

स्त्री स्त्रियं नहि सहेत स हेतुः।

कामयन्त इतरे तु महेला-

युक्तमेव पुरुषं पुरुषार्थाः।।[९]

तथा इसी पञ्चम सर्ग में इन्द्र की पत्नी शची द्वारा सुमंगला को दिया गया यह उपदेश ध्यातव्य है–

मास्म तप्यत तपः परितक्षीन्,

मा तनूमतनुभिर्व्रतकष्टैः।

इष्टसिद्धिमिह बिन्दति योषि-

च्चेन्न लुम्पति पतिव्रतमेकम्।।[१०]

ये सभी प्रसङ्ग माधुर्य गुण से ओत-प्रोत है। किन्तु जैनकुमारसम्भव की भाषा सर्वत्र सरलता एवं सहजता से ही परिपूर्ण नहीं है। जयशेखर सूरि की भाषा वहुश्रुतता को व्यक्त करती है। जयशेखर ने अपने शब्दशास्त्र के पाण्डित्य को प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया है। काव्य में प्रयुक्त दुर्लभ शब्द, लुङ्[११] कर्मणि लिट[१२], क्वसु, कानच, सनण्मुल[१३] आदि प्रत्ययों का साग्रह प्रयोग पाण्डित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति को द्योतित करता है।

कर्मणि लुङ् के प्रति तो कवि का ऐसा पक्षपात है कि उसने अपने काव्य में आद्यन्त उसका प्रयोग किया है जिससे यत्र-तत्र भाषा वोझिल हो गयी है। यद्यपि विद्वता प्रदर्शन की उनकी यह प्रवृत्ति मर्यादित है। इस संयम के कारण ही जैनकुमारसम्भव की भाषा में सहजता तथा प्रोढ़ता का मनोरम मिश्रण है।

इस महाकाव्य के कुछ वर्णनों में भले ही यथार्थता का अभाव हो किन्तु यह कृति प्रायः माधुर्य की मनोरम छटा बिखेरती है। सुमंगला के वासगृह वर्णन तथा अष्टापद पर्वत वर्णन में कवि ने दो शैलियों के प्रतीक प्रथम में सहजता का लालित्य और द्वितीय में प्रौढ़ता की प्रतिष्ठा कर अपने काल्पनिक वर्णन की मधुरता को इस प्रकार दर्शाया है–

"यत्र नीलामलोल्लोचा-मुक्ता मुक्ताफलस्रजः।
वभुर्नभस्तलाधार-तारका लक्षकक्षया।।"[१४]

सौवर्ण्यः पुत्रिका यत्र रत्नस्तम्भेषु रेजिरे।

अध्येतुमागता लीलां देव्या देवाङ्गना इव।।[१५]

"यन्मणिक्षोणिसंक्रान्त-मिन्दुं कन्दुकशङ्कया।

आदित्सवो भग्ननरवा न वाला: कमजीहसन्।।"[१६]

"व्यालम्बिमालमास्तीर्ण-कुसुमालि समन्ततः।

यददृश्यत पुष्पास्त्र-शस्त्रागारधिया जनैः।।"[१७]

द्वितीय सर्ग अष्टापद वर्णन द्रष्टव्य है-

"प्रतिक्षिपं चन्द्रमरीचिरेचिता-

मृतांशुकान्तामृत पूर जीवना।

वनावली यत्र न जातु शीतगोः,

पिधानमैच्छन्मलिनच्छविंघनम्।।"[१८]

"पतन्ति ये वालरवेः प्रगे करा

यदुल्लसद्गैरिक धातुसानुषु।

क्रियेत तैरेव विसृत्य चापला-

दिलाखिला गैरिकरंगिणी न किम्।।"[१९]

इन उद्धरणों में भाषा की प्रौढ़ता तथा शैली की गम्भीरता उसके स्वरूप को व्यक्त करने में सहायक सिद्ध हुई है। इस प्रकार हम देखते है कि जैनकुमारसम्भव में महाकवि का शब्द चयन तथा शब्द गुम्फन उनकी पर्यवेक्षण शक्ति तथा वर्णन-कौशल सभी कुछ प्रशंसनीय है। कवि प्रत्येक प्रसंग को यथोचित वातावरण में उसकी समस्त विशेषताओं के साथ वर्णन करने में

समर्थ है।

भाषा सम्बन्धी उपयुक्त विवेचनों के आधार पर यह निष्कर्ष सहज ही प्राप्त होता है कि इस महाकाव्य की भाषा प्रौढ़ और सुरुचिपूर्ण वर्णनों द्वारा उसे सशक्त एवं उदात्त रूप में वर्णित किया है। किन्तु इसमहाकाव्य में दोष पूर्ण भाषा, देशी शब्दों का प्रयोग एवं कहीं-कहीं भाषा की दुरुहता स्पष्टतः परिलक्षित होता है।

(ख) भाव के आधार पर समीक्षा-

काव्य में भाषा का महत्त्व सर्वातिशायी है, किन्तु भावों के अभाव में भाषा दुरुह एवं कष्ट साध्य हो जाती है। तात्पर्य यह है कि भावाभिव्यक्ति द्वारा भाषा सौन्दर्य को प्राप्त करती है। काव्य में निहित भाव उसकी स्थायी सम्पत्ति है और कवि विभिन्न पात्रों के चरित-चित्रण को भावों द्वारा व्यक्त करता है। मनुष्य की चित्तवृत्ति कैसी होती है? और वह उस अवस्था में क्या करता है? इस विषयों का प्रगाढ़ ज्ञान ही कवि की सफलता का द्योतक है। इस महाकाव्य में निहित भाव-सौन्दर्य- जैनकुमारसम्भव में निहित भावों के प्रकाश में कवि जयशेखर सूरि की भाव प्रवलता निम्न प्रकार से वर्णित है। काव्य के नायक ऋषभदेव विष्णु की तरह अपनी प्रिया के साथ क्रीड़ा करते हुए शयन कर रहे हैं-

> विवाह दीक्षा विधि विद्वद्यूभ्यां,
> कृत्वा सखीभ्यामिव नर्मकेलीः।
> निद्रा प्रियीकृत्य स तत्र तल्पे

शिष्ये सुखं शेष इवासुरारिः।।[20]

और काव्य की नायिका– सुमंगला के गुणों की महिमा का वर्णन निम्न प्रकार से है–

गरेण गौरीशगलो मृगेण,

गौरद्युतिर्नीलिकयाम्बुगाङ्गम्।

मलेन वासः कलुषत्वमेति,

शीलं तु तस्या न कथंचनापि।।[21]

अर्थात अपने पति शंकर के गले के विष के कारण कलुषित पार्वती और गन्दे वस्त्रादि के धोने से कलुषित गंगा तुम्हारे शील की समता नहीं कर सकती।

एक और मानवीय पात्रों में दैव-चरित का विधान और दूसरी ओर दैव-चरित की उत्कृष्टता के भावों का अंकन कितना भावोपेत है।

मनुष्य की चित्तवृत्ति का सूक्ष्म चित्रण जयशेखर ने ऋषभदेव द्वारा सुमंगला के गौरवगान के सन्दर्भ में किया है–

न कोऽधिकोत्साहमना धनार्जने,

जनेषु को वा न हि भोगलोलुपः।

कुतः पुनः प्राक्तन पुण्यसम्पदं

विना लता वृष्टिमिवेष्टसिद्धयः।।[22]

अर्थात् धन की प्राप्ति हेतु कौन व्यक्ति उत्साही नही होता? भोग लिप्सा

में किस व्यक्ति की प्रवृत्ति नही है? मनुष्य के भावों का यह सूक्ष्म अवलोकन है।

कवि जयशेखर सूरि पुरुष के हृदय में उत्पन्न भावों मात्र से ही परिचत नही है, प्रत्युत नारी भावों के उद्गम स्थान (हृदय) से भी पूर्ण रूपेण परिचित है। नारी के हृदय को निश्चल-कोश स्वीकार करते हुए कवि कहता है कि-

योषितां रतिरलं न दुकूले
नापि हेम्नि न च सन्मणिजाले।
अन्तरंग इह यः पतिरंगः,
सोऽदसीयहृदि निश्चलकोशः।।[२३]

इस प्रकार अपने पति के प्रति दासीभाव को ग्रहण करने वाली तथा पति के प्रति अनासक्ति भाव को धारण करने वाली स्त्रियों का वर्णन करते हुए कवि कहता है-

या प्रभुष्णुरपि भर्तरि दासी-
भावमावहति सा खलु कान्ता।
कोपपङ्ककलुषा नृषु शेषा
योषितः क्षतजशोषजलूकाः।।[२४]

अर्थात् समर्थवान होते हुए भी जो स्त्री पति के प्रति दासीभाव का धारण करती है, वह भी पत्नी है। शेष स्त्रियां तो खून चूसने वाली जोंक के समान हैं।

देवाधिराज इन्द्र द्वारा स्वामी ऋषभदेव की स्तुति प्रसंग में, इन्द्र की भक्ति भाव को पूर्ण रूपेण प्रकाशित करने में समर्थ है–

तब हृदि निवसामीत्युक्तिरीशे न योग्या
मम हृदि निवसत्वं नेति नेता नियम्यः।
न विभुरुभयथाहं भाषितुं तद्यथार्हं
ममिकुरुकरुणार्हे स्वात्मनैव प्रसादम्।।[२५]

अर्थात् मै आपके हृदय में निवास करता हूँ, यह आप (प्रभु) के योग्य नही है मेरे हृदय में आप (प्रभु) निवास करते है, ऐसा हो ही नहीं सकता, क्योंकि मैं क्षुद्र हृदय वाला हूँ और आप विश्व (नियमों के) कोश हैं। इस प्रकार द्वय विधि कहने में असमर्थ मुझ पर हे करूणाकर मुझे अपना समझकर करुणा (दया) कीजिए।

इस प्रकार जैनकुमारसम्भव मनुष्य के आन्तरिक भावों, को चित्रित करने में अद्वितीय है।

(ग) कल्पना के आधार पर समीक्षा–

जैनकुमारसम्भव की कथावस्तु अत्यन्त संक्षिप्त है, जो दो या तीन सर्गों की सामग्री है। किन्तु कवि इस काव्य को ग्यारह सर्गो का महाकाव्य वना दिया है।

जहाँ तक जैनकुमारसम्भव में की गयी कल्पनाओं का प्रश्न है, कवि जयशेखर सूरि इसके लिए महाकवि कालिदास के ऋणी है, क्योंकि उन्होंने

कुमारसम्भव में वर्णित अनेक कल्पनाओं को यथावत् ग्रहण किया है। कुमारसम्भव में किया गया 'हिमालय वर्णन' की कल्पना का अनुकरण करते हुए उन्होंने अयोध्यापुरी का वर्णन इस प्रकार किया है–

"अस्त्युत्तरस्यां दिशि कोशलेति
पुरी परीता परमर्द्धिलोकैः।
निवेशयामासपुरः प्रियायाः
स्वस्या वयस्यामिव यां धनेशः।।"[२६]

"सम्पन्नकामा नयनाभिरामा,
सदैव जीवत्प्रसवा अवामाः
यत्रोज्झितान्यप्रमदावलोका
अदृष्टशोका न्यविशन्त लोकाः।।"[२७]

जैनकुमारसम्भव के इसी सर्ग (प्रथम) में ऋषभदेव के जन्म से यौवन तक का वर्णन भी कुमार सम्भव में पार्वती के जन्म से यौवन तक के वर्णन से पूर्ण प्रभावित है।[२८] माता मरुदेवी के गर्भ में स्थित ऋषभदेव का वर्णन कवि ने अपनी कमनीय कल्पना द्वारा इस प्रकार किया है–

योगर्भगोऽपि व्यमुचन्न दिव्यं
ज्ञानत्रयं केवलसंविदिच्छुः।
विशेषलाभं स्पृहयन्नमूलं
स्वं संकटेऽप्युज्झति धीरबुद्धिः।।[२९]

पुत्र को देखकर माता मरुदेवी की दशा के चित्रण में कवि की कल्पना दर्शनीय हैं–

अश्रौघंदभाद्वहिरुद्गतेन,
माता नमाता हृदि संमदेन।
परिप्लुताक्षी तनुजं स्वजन्ती,
यं तोषदृष्टेरपि नो विभाय।।[30]

ऋषभदेव के नेत्र कमलवत् है। वे इतने सुन्दर है कि लक्ष्मी उनकी दासी बन गयी हैं। प्रभु ऋषभदेव के नेत्रों में ही लक्ष्मी निवास करती है। प्रभु को देखकर लोगों के दुःख-दारिद्रय दूर हो जाते है। कवि ने अपनी इस उदात्त कल्पना को इस प्रकार वर्णित किया है–

'पद्मानि जित्वा बिहितास्य दृग्भ्यां,
सदा स्वदासी ननु पद्मवासा।
किमन्यथा सावसथानि याति
तत्प्रेरिता प्रेमजुषामखेदम्।।'[31]

इस प्रकार स्पष्ट है कि कवि जयशेखर सूरि कल्पना के लिए कालिदास पर निर्भर हैं किन्तु जैनकुमारसम्भव का चौदह स्वप्नवर्णन उनकी अति विशिष्टता है और कवि जयशेखर सूरि की यह अपनी निजी कल्पना है, जिसे कवि ने इस प्रकार वर्णन किया हैं–

"प्रथमं सा लसद्दन्त- दंडमच्छुडमुन्नतम,

भूरिभाराद्भुवो भङ्ग- भीत्येव मृदुचारिणम्।
गण्डशेलपरिस्पर्धि- कुंभं कर्पूरपाण्डरम्,
द्विरदं मदसौरभ्य लुभ्यद्भ्रमरमैक्षत।।

भाग्यैः शकुनकामाना- मिवगर्जन्तमूर्जितम्,
शुभ्रं पुण्यमिवप्राप्तं, चतुश्चरणचारुताम्।
सिन्धुरोधक्षमं रोधः स्यन्तं मृल्लवलीलया,
सशृङ्गमिवकैलासं, ककुद्मन्तं ददर्श सा।। युग्मम्।।

अप्यतुच्छतया पुच्छा- घातकम्पितभूतलम्,
अप्युदारदरीक्रोड- क्रीडत्क्ष्वेडाभयङ्करम्।
सद्यो भिन्नेभकुंभोत्थ- व्यक्तमुक्तोपहारिणम्,
हरिणाक्षी हरिं स्वप्न दृष्टं सा वह्मन्यत।।

निधीनक्षय्य सारौघ- तुन्दिलान् सन्निधौ दधिः,
भृषाहेम्नः स्ववपुषो, मयुखेर्न्तरं घ्नती।
पद्माकरमयीं मत्वा, नेत्रवक्त्रकरांध्रिणा,
पद्मवासा निवासार्थ- मिवोपनमति स्मताम्।।

भृङ्गैः सौरभलोभेना- नुगतं सेवकैरिव।
तन्व्या दोः पारावत् पुण्य-भाजां कण्ठग्रहोचितम्।।

"प्रहितं प्राभृतं पारि- जातेनैव जगत्प्रियम्,
असमं कौसुम दाम, जज्ञे तन्नेत्रगोचरः।[32]

चकोराणां सुमनसा- मिव प्रीतिप्रदामृतम्,
रोहिण्या इव यामिन्या, हृदयंगमतां गतम्।।

निर्विष्टि कौमुदीसारं कामुकैरिव कैरवैः,
आस्ये विशन्तं पीयुष- मयूखं सा निरैक्षत।
क्षिपन् गुहासु शैलानां- लोकादुत्सारितं तमः,
संकोचं मोचितं पद्म- वनाद् घूकदृशां दिशन्।।

न्यस्यन् प्रकाशमाशासु, तारकेभ्योऽपकर्षितम्,
स्वप्नेऽपि स्मेरयामास, तस्या हृत्कमलं रविः।
अखंड दंडनद्धोऽपि, न त्यजन्निजचापलम्,
सहजं दुस्त्यजं घोष-न्निव किंकिणिकाक्कणैः।।

ध्वजो रजोभयेनेव, व्योमन्येव कृतास्पदः।
तत्प्रीतिनर्तकीनाट्या- चार्यकम्वां व्यडंवयत्।।
स्त्रैणेन मौलिना ध्रीये, सोऽहं साक्षी जगज्जनः।।

त्वं धत्सेऽतुच्छमत्सम्प- ल्लंपाकौहृदये पुनः।।
मुख न्यस्ताम्वुम्वुजच्चंचच्चंचरीकरवच्छलात्।
इति प्रीतिकलिं कुर्व-न्निव कुंभस्तयैक्ष्यत्।।
अम्लानकमलामोद- मनेककविशब्दितम्।
सद्वृत्तपालिनिर्वेश- क्षमविष्टऽडम्बरम्।
स्वर्णस्फातिफुरद्भंगि- वर्ण्यं विश्वोकारकृत।
इभ्यागारमिवातेने, कासारं तद्दृगुत्सवम्।।

क्वचिद्वायुवशोद्धत- वीचीनीचीकृताचलम्।
उद्वृत्तपृष्ठैः पाठीनैः कृतद्वीपभ्रमं क्वचित्।।"[३३]

पीयमानोदकमं क्वापि, सतृषैरिववारिदैः।
रत्नाकरं कुरंगाक्षी, वीक्षमाणा विसिष्मिये।।
सूर्यविंवादिवोद्भूतं, जन्मस्थानमिवार्चिषाम्-
चरिष्णुमिवरत्नाद्रिं, भारदिव दिवश्च्युतम्।।
दीव्यद्देवाङ्गनं रत्न- भित्तिरुग्भिः क्षिपत्तमः।
अभूदभ्रंकषं तस्या, विमानं नयनातिथिः।।
रक्ताश्मरिष्टवैडूर्य- स्फटिकानां गमस्तिभिः।
लम्भयन्तं नभश्चित्र- फलकस्य सनाभिताम्।
वार्धिना दुहितुर्दत्त- मिव कंदुककेलये।
रत्नराशिं दवीयांस- मपुण्यानां ददर्श सा।।
आधारधाररोचिष्णुं, जिष्णुं चामीकरत्विषाम।
अजिह्वबिलसज्ज्वाला- जिह्माहुतिलोलुपम्।।
श्मश्रुणेव नु धूमेन, श्यामं मखभुजां मुखम्।
ददर्श श्वसनोद्भूत- रोचिषं सा विरोचनम्।।

उपर्युक्त चौदह स्वप्नों को देखकर सुमंगला भयभीत होती है और इन स्वप्नों का फल जानने के लिए वह स्वामी के पास जाती है। असमय ही अपने आवास में सुमंगला को देखकर स्वामी ऋषभदेव उसके आगमन के संदर्भ में नाना कल्पना करते है–

श्लथं विहारेण यदन्तरीय

दुकूलमासीत् पथि विप्रकीर्णम्।

सायांत्रिकेणेव धनं नियम्य

नीवीं तया तद दृष्यांवभूवे।।[३४]

भर्तु प्रमीलासुखभङ्गभीति-

स्तामेकतो लम्भयतिष्मधैर्यम्

स्वप्नार्थशुश्रूणकौतुकं चा-

न्यतस्त्वरां स्त्रीषु कुतः स्थिरत्वम्।।[३५]

स्वप्नोपलब्धे मयि मारदूना

रिरंसया वा किमुपागतासि।

प्रायोऽवलासु प्रवलत्वमेति,

कन्दर्पवीरोविपरीतवृत्तिः।।[३६]

इसी प्रकार निद्रा और प्रकृति की तुलना करते हुए ऋषभदेव कहते है–

एकात्मनोर्नो परिमुञ्चती मां,

सु स्वप्नसर्वस्वमदत्तं तुभ्यम।

निद्रा ननु स्त्रीप्रकृतिः करोति,

को वा स्वजातौनाृपक्षपातम्।।[३७]

आगे के वर्णनों में कवि अपनी उदात्त कल्पनाशक्ति का परिचय दिया

है–

स्वामी ऋषभदेव द्वारा सुमंगला के स्वप्नों के कथन में कवि ने उदात्त कल्पना किया है– जैसा कि ऋषभदेव द्वारा स्वप्न फलों के कथन में दृष्टिगत होता है–

दिगन्त देशान्तरसा जिगीषया,
ऽभिषेणयिप्यन्तमवेत्य तेऽङ्गजम्।
प्रहीयते स्म प्रथमं दिशां गजः
प्रिये किमैरावत एष संधये।।[३८]

यदक्षतश्रीर्वृषभो निरीक्षतः,
क्षितौ चतुर्भिश्चरणैः प्रतिष्ठितः।
महारथाग्रेसरतां गतस्तत,
स्तवाङ्गभूर्वीरधुरां धरिष्यति।।[३९]

द्विपद्विषो वीक्षणतोऽवनीगता
ङ्गिनो मृगीकृत्य महावलानपि
न नेतृतामाप्स्यति न त्वदङ्गजः,
प्रघोर्षतोंऽतर्ध्वनयन्महीभृतः।।[४०]

यन्दिरा सुन्दरि वीक्षिता ततः
स्त्रियो नदीनप्रभवा अवाप्स्यति।
कलाभृदिष्टः कमलंगताः परः

शतास्यैवोपमिताः सुतस्तव।।[४१]

स्वसौरभाकर्षितषटपदाध्वगा
स्रगालुलोके यदि कौसुमीत्वया।
ततः सुतस्ते निजकीर्ति सौरभा-
वलीढ़विश्वत्रितयो भविष्यति।।[४२]

यदिन्दुरापीयत पार्वणस्त्वया,
ततः सुवृत्तो रजनीघनच्छविः।
सदा ददानः कुमुदे श्रियं कला-
कलापवांस्ते तनयो भविष्यति।।[४३]

दिशन् विकाशं गुणसद्मपद्मिनी
मुखारविन्देषु सदा सुगन्धिषु
निरुद्धदोषोदयमात्मजस्तव,
प्रपत्स्यते धाम रवेरवेक्षणात्।।[४४]

ध्वजावलोद्दयितो तवाङ्गजो,
रजोभिरस्पृष्टवपुः कुसङ्गजैः।
गमी गुणाढयः शिरसोऽवतंसतां
कुले विशाले विपुलक्षणस्पृशि।।[४५]

सुमङ्गजाङ्गीभवितु तवद्धये,
विसोढवान् कारूपदाहतीरम्।

विवेश वह्वावनुभूय भूयसी,

श्चिराय दंडान्वित्‌चक्रचालनाः।।[४६]

सरः सरोजाक्षि यदैक्षि तेन ते,

सुतः सतोषैः सक्योभिराश्रितः।

प्रफुल्लपद्मोपगतो घनागमौ,

रसं रसं धास्यति साधुपालियुक्।।[४७]

निभालनान्नीरनिधेरधीश्वरः,

सरस्वतीनां रसपूर्तिसंस्पृशाम्।

अलब्धमध्योऽर्थिभिराश्रितो घनैः,

सुतस्तवात्येष्यति न स्वधारणाम्।।[४८]

प्रिये विमानेन गतेन गोचरं

समीयुषा भोगसमं समुच्छ्रयम्।

उदारवृन्दारकवल्लभश्रिया

भवद्धुवा भाव्यमदभ्रवेदिना।।[४९]

विलोकिते रत्नगणे स ते सुतः,

स्थितौ दधानः किल काञ्चनौचितिम्।

उदंशुमत्रासमुपास्य विग्रहं,

महीमहेन्द्रैर्महितो भविष्यति।।[५०]

स्फुरन्महाः प्राज्यरसोपभोगतो,

गतो न जाड्यंद्युतिहेतुहेतिभृत्।
तव ज्वलद्वह्निविलोकनात्सुतो,
द्विषः पतङ्गनिव धक्ष्यति क्षणात्।।[५४]

उपर्युक्त स्वप्न विवेचन में निहित जयशेखर की कल्पना की उदात्तता का स्पष्ट दर्शन होता है। जो न केवल कल्पना की दृष्टि से अपितु जीवन में स्वप्नों के महत्त्वों को भी निर्धारित करता है।

(घ) परम्परा के आधार स्वरूप महाकाव्य की समीक्षा–

विश्व के प्रत्येक महाकाव्य में परम्पराओं का उल्लेख मिलता है तथा इस सन्दर्भ में प्रत्येक महाकवि ने अपने-अपने महाकाव्यों में परम्पराओं यथा लोकस्वभाव, सामाजिक जीवन तथा धार्मिक मान्यताओं के वर्णनों की परम्परा का निर्वाह किया है।

जैनकुमारसम्भव श्री जयशेखर सूरि ने भी अपने महाकाव्य में परम्पराओं का मनोरम वर्णन किया है। इस महाकाव्य में परम्पराओं का इस प्रकार उल्लेख द्रष्टव्य है। इस महाकाव्य में नायक का चरित्र परम्परागत है।

ऋषभदेव के चरित्र के सन्दर्भ में जो श्लोक प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत किया गया है उससे उस समय के शासकों की चारित्रिक विशेषताओं का पता चलता हैं।

स एव देवः स गुरुः स तीर्थं
स मङ्गलं सैष सखा स तातः।

स प्राणितं सप्रभूरित्युपासा,

मासे जनैस्तद्भतसर्वकृत्यैः।।[५२]

और वह केवल आदर्शवादी राजा ही नही अपितु प्रजापालक, विज्ञानं का ज्ञाता तथा उसका धारणकर्ता भी है–

पातुस्त्रिलोकं विदुषस्त्रिकालं

त्रिज्ञानतेजो दधतः सहोत्थम्।

स्वामिन्नतेऽवैभि किमप्यलक्ष्यं

प्रश्नस्त्वयं स्नेहलतैकहेतुः।।[५३]

ऐसा आदर्शवान राजा ही अपनी प्रजा को आदर्श मार्ग पर चलने की शिक्षा दे सकता है–

जडाशया गा इव गोचरेषु

प्रजानिजाचारपरम्परासु

प्रवर्तयन्नक्षतदंडशाली,

भविष्यसि त्वं स्वयमेव गोपः।।[५४]

उपर्युक्त वर्णनों से स्पष्ट है कि राजा और प्रजा दोनों ही चरित्रवान थे। यह आदर्शचरित महाकवि वाल्मीकि से प्रभावित लगता है।

कवि ने उस समय के लोगों की सम्पन्नता को अयोध्या नगरी के वर्णन प्रसंग में इस प्रकार किया है–

संपन्नकामा नयनाभिरामाः,

सदैव जीवत्प्रसवा अवामाः।

यत्रोज्झितान्यप्रमदावलोका,

अदृष्टशोका न्यविशन्त लोकाः।[५५]

अर्थात् जनता सुखी एवं शोक रहित थी।

सुमंगला के आवास वर्णन के प्रसंग में उस समय की सम्पन्नता का पुनः दर्शन हो जाता है–

यत्र नीलामलोल्लोचा - मुक्ता मुक्ताफलस्रजः।

वभुर्नभस्तलाधार - तारकालक्षकक्षया।।[५६]

सौवर्ण्यः पुत्रिका यत्र, रत्नस्तम्भेषु रेजिरे।

अध्येतुमागता लीलां, देव्या देवाङ्गना इव।।

यन्मणिक्षोणिसंक्रान्त - मिन्दुं कन्दुकशङ्कया।

आदित्सवो भग्ननखा, न वालाः कमजीहसन्।।[५७]

व्यालम्बिमालमास्तीर्ण - कुसुमालि समन्ततः।

यददृश्यत पुष्पास्त्र - शस्त्रागारधिया जनैः।।

स्वामी ऋषभदेव के विवाह में जाते हुए, प्रियतम् का स्पर्श पाकर किसी देवाङ्गना की मैथुनेच्छा एकाएक जागृत हो जाती है। भावोच्छवास से उसकी कंचुकी टूट गयी। वह कामवेग के कारण असहाय हो गयी फलस्वरूप वह प्रियतम की चाटुकारिता के लिए जुट गयी–

उपान्तपाणिस्त्रिदशेन वल्लभा,

श्रमाकुलाकाचिदुदंचिकंचुका

वृषस्य या चाटुशतानि तन्वती

जगाम तस्यैव गतस्य विघ्नताम्।।[५८]

नवविवाहित ऋषभदेव को देखने के उत्सुक पुर-नारियों की नीवी दौड़ने के कारण खुल गयी। उसका अधोवस्त्र नीचे खिसक गया। पर उसे इसका भान नहीं हुआ। वह ऋषभदेव को देखने के लिए अत्यन्त अधीरता से दौड़ती गयी और उसी मुद्रा में जन समुदाय से जा मिली–

कापि नार्धमितश्लथनीवी,

प्रक्षरन्निवसनापि ललज्जे।

नायकानननिवेशितनेत्रे,

जन्य लोकनिकरेऽपि समेता।।[५९]

वर को देखने की उत्सुकता में स्त्रियों की दशाओं का वर्णन करते हुए कवि ने तत्कालीन समाज का चित्र अंकित किया है। उस समय के वधुओं का चित्रण करते हुए कवि लिखता है–

शैशवावधि वधूद्वयदृष्टयो,

श्चापलं यदभवद्धुरपोहम्।

तत्समग्रमुपभर्तुर्विलिल्ये,

ऽध्यापकान्तिक इवान्तिषदीयम्।।[६०]

सुमंगला और सुनन्दा की दृष्टि की चंचलता पति के सामने इस प्रकार

विलीन हो गयी, जिस प्रकार अध्यापक के सामने छात्र की चंचलता, में कवि ने लज्जा की स्थापना कर नारियों के स्वभाव का मनोरम चित्र उपस्थित किया है और इसी प्रकार पुरुषों के चरित्र-चित्रण में इनका वर्णन इस प्रकार है–

तनोषि तत्तेषु न किं प्रसादं, न सांयुगीनायदमीत्वयीश।
स्याद्यत्र शक्तेरवकाशनाशः, श्रीयेत शुरैरपि तत्र साम।।[६१]

प्रभु ऋषभदेव के लिए वैषयिक सुख विषतुल्य हैं, वह अवक्रमित' से काम में प्रवृत्त होते है और उचित उपचारों से विषयों को भोगते हैं–

"त्रिरात्रमेवं भगवानतीत्या
निरुद्धपित्रानुपरूद्धचित्तः।
ततस्तृतीयेऽपिपुमर्थसारे,
प्रावर्ततावक्रमतिः क्रमज्ञः।।[६२]

भोगार्हकर्म ध्रुववेद्यमन्य
जन्मार्जितं स्वं स विभुर्विबुध्य।
मुक्तयेककामोऽप्युचितोपचारै
रभुङ्क्त ताभ्यां विषयानसक्तः।।[६३]

उपर्युक्त विवेचनों से स्पष्ट है कि जयशेखर सूरि के काल में समाज में धर्म, कर्म के प्रति निष्ठा थी। लोगों का जीवन आदर्शमय था और लोग संयमित जीवन व्यतीत करते थे। यह वर्णन कुमारसम्भव के विभिन्न वर्णनों से प्रभावित है।

संदर्भ :

१. जैन कुमार सम्भव– १०/६

२. वही, ३/१६

३. वही, ३/१९

४. वही, ५/६१

५. वही, ५/८१

६. वही, ३/५

७. वही, ३/६

८. वही, ३/२१

९. वही, ५/६२

१०. वही, ५/७७

११. वही, लुङ्– उपसिष्टीष्टताम्-२/६७, संगसीष्ट-३/६३, अजोषिष्ट-३/३५, न्यदिक्षत-३/४०, मायासिषम्-८/३१

१२. कर्मणि लिट्– वैवधिकी वभूवे-३/५२, फलंजगे-४/२५, शब्दौपतस्थै-६/६३, स्वप्नैवभूवै-८/४०।।

१३. प्रत्यय– तिसस्यापायिषु-६/२२, जगन्यान्-८/४७, श्रवः पल्लवश्रम– १०/१४।।

१४. जै० कु० सं०– ७/३

१५. वही, ७/४

१६. वही, ७/७

१७. वही, ७/८

१८. वही, २/३४

१९. वही, २/३६

४२. वही, ९/४४

४३. वही, ९/४७

४४. वही, ९/५०

४५. वही, ९/५३

४६. वही, ९/५७

४७. वही, ९/५९

४८. वही, ९/६२

४९. वही, ९/६५

५०. वही, ९/६९

५१. वही, ९/७२

५२. वही, १/७३

५३. वही, ८/१९

५४. वही, ३/५

५५. वही, १/२

५६. वही, ७/३-४

५७. वही, ७/७-८

५८. वही, ४/१०

५९. वही, ५/३९

६०. वही, ४/७८

६१. वही, ३/१५

६२. वही, ६/२५

६३. वही, ६/२६

सप्तम् अध्याय
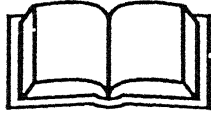
श्री जयशेखरसूरि कृत जैनकुमारसम्भव
एवं
महाकवि कालिदासकृत कुमारसम्भव
का तुलनात्मक अध्ययन

इन महाकाव्यों के तुलनात्मक अध्ययन के पूर्व इनकी मूल प्रवृत्ति अर्थात् जैन महाकाव्य एवं संस्कृत महाकाव्य के विषय में संक्षिप्त उल्लेख आवश्यक है।

जैन महाकाव्य एवं संस्कृत महाकाव्य की समानताएं–

(१) जैन महाकाव्य तथा संस्कृत महाकाव्य की प्रक्रिया लगभग समान है।

(२) दोनों ही कवि प्राकृतिक दृश्यों से प्रभावित होकर अपनी भावभंगिमा अभिव्यक्त करते है– नदी, पर्वत, सरोवर, सूर्य-चन्द्र आदि का अंकन समान मात्रा में उभयत्र उपलब्ध होता है।

परन्तु मान्यता, आधार तथा उद्देश्य को लेकर इनमें पार्थक्य भी है जो इस प्रकार है–

(i) संस्कृत महाकाव्य वर्णाश्रम की आधार शिला पर प्रतिष्ठित है और वह धर्म को मान्यता प्रदान करता है। जैन महाकाव्यों में इस मान्यता को कम महत्त्व दिया गया है। संस्कृत काव्यों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इन चातुर्वर्ण्य से गठित समाज चित्रित है। जैन महाकाव्य इसे स्वीकार नहीं करते प्रत्युत मुनि, आर्थिका श्रावक तथा श्राविका द्वारा गठित समाज ही उन्हें मान्य है। जातिवाद के लिए जैन साहित्य में कोई स्थान नहीं है।

(ii) संस्कृत महाकाव्यों का नायक उदात्त-चरित्र राजा होता है। देवता भी संस्कृत महाकाव्य के नायक हो सकते है किन्तु जैन महाकाव्यों में जैन धर्म के उपदेष्टा तीर्थंकर पुण्य-पुरुष, धार्मिक कार्यों द्वारा उपकारी

व्यक्ति, मुनि, उपकारी पुरुष, उपकारी वणिक आदि नायक हो सकते है। फलतः कल्याण मार्ग के अभ्युदय के निमित्त किसी भी उपादेय गुण की सत्ता से युक्त कोई भी व्यक्ति जैन महाकाव्य का नायक हो सकता है। तात्पर्य यह है कि जैन कवियों के लिए समाज में निम्न स्तर का प्राणी कथमपि उपेक्षणीय नहीं है वस्तुतः वह जैनधर्मी हो।

(iii) दोनों महाकाव्यों के आधार में भी अन्तर है। संस्कृत महाकाव्य रामायण, महाभारत तथा पुराणों में चित्रित कथा तथा पात्रों के आधार पर निर्मित किये गये है। जैन महाकाव्य के आधार ग्रन्थ श्रमण संस्कृति के पोषक ग्रन्थ है, जिनमें आदिपुराण, उत्तरपुराण तथा हरिवंश पुराण मुख्य है। जो त्रिषष्टिशलाका पुरुषों (२४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलराम (बलभद्र), ९ वासुदेव (नारायण) तथा ९ प्रति वासुदेव (प्रतिनारायण) कुल ६३ महापुरुष के जीवन-चरित का वर्णन पुराण शैली में करते है।

(iv) संस्कृत महाकाव्यों का उद्देश्य रसोन्मेष होता है, परन्तु जैन कवि अपने धर्म की अभिवृद्धि के लिए ही महाकाव्य की रचना करते है। वह त्याग, संयम तथा अहिंसा के आदर्श की व्याख्या के निमित्त उपदेश देने से नहीं चूकते। इस प्रकार दोनों महाकाव्यों के उद्देश्य में कुछ पार्थक्य दृष्टिगोचर होता है।

(v) जैन महाकाव्यों में नायक के अनेक जन्मों की कथा का वर्णन होता है, जो नायक के व्यक्तित्व एवं सम्पूर्णता को लक्ष्य करके अंकित किये जाते है आरम्भिक कथानक में काम तथा अर्थ का भरपूर रोचक चित्रण रहता है तथा श्रोताओं का सहज मनोरंजन होता है, परन्तु आगे चलकर कथानक की गति के साथ मनोरंजन की गति धीमी पड़ जाती है। इन महाकाव्यों की परिणति शान्त रस में होता है। शृङ्गार, वीर आदि रसों का चित्रण अंग रसों के रूप में ही दीखता है। इसलिए इनका उत्तरार्द्ध पाठकों की दृष्टि से पूर्वार्द्ध की अपेक्षा कम आकर्षक तथा न्युन हृदयावर्जक होता है।

जैन महाकाव्यों की विशेषताओं को इस प्रकार उल्लिखित किया जा सकता है–

(i) प्रायः सभी महाकाव्यों का प्रारम्भ मंगलाचरण वस्तु निर्देश, सज्जन दुर्जन चर्चा, आत्म-लघुता, पूर्वाचार्यों के स्मरण से होता है और अधिकांश जैनकाव्यों के अन्त में कवि का परिचय और उसकी गुरु परम्परा का उल्लेख मिलता है।

(ii) उसका कथानक इतिहास पुराण, दन्तकथा, प्राचीन महाकाव्य, समसामयिक घटना या व्यक्ति पर आधृत है। उनका कथानक व्यापक और सुसंगठित होता है। अधिकांश महाकाव्यों में पँच नाट्य सन्धियों की योजनापूर्वक कथानक का विस्तार किया जाता है।

(iii) कर्मफल को बताने के लिए प्रायः सभी महाकाव्यों में पूर्वभव की कथाओं की योजना की गयी है।

(iv) जैन महाकाव्यों में कवि समय-सम्मत वर्ण्य-विषयों का विवेचन अर्थात् सन्ध्या, रात्रि, सूर्योदय, चन्द्रोदय, ऋतुवर्णन, पर्वत, जल क्रीडा आदि का वर्णन कभी मूलकथा के साथ तो कभी अवान्तर कथा के साथ दिया गया है। अमरचन्द्र सूरि ने तो वर्ण्य-वस्तु के उपवर्ण्य विषय बताकर वस्तु-वर्णन प्रसंग को और आगे बढ़ा दिया है।

(v) जैन महाकाव्यों में भी रस को मूल तत्त्व के रूप में माना गया है। अधिकांश जैन महाकाव्यों में शान्त रस की प्रधानता है तथा अन्य रसों को गौण रूप दिये गये है।

(vi) जैन महाकाव्यों में आवश्यकतानुसार अलङ्कारों का उपयोग हुआ है। वैसे वाग्भट ने अलङ्कारों को महाकाव्य के प्रमुख लक्षणों में नहीं माना है।

(vii) अनेक जैन महाकाव्यों की भाषा शैली प्रौढ़ है पर अधिकांश पौराणिक महाकाव्यों की भाषा गरिमापूर्ण नहीं है। उसमें प्राकृत अपभ्रंश देशी शब्दों के मिश्रण है।

(viii) जैन महाकाव्यों का उद्देश्य विशेषकर धर्म फल को प्रदर्शित करना है फिर भी उनमें त्रिवर्ग– धर्म, अर्थ और काम के फल की चर्चा करके अन्तिम फल मोक्ष बताया गया है।

(क) कथावस्तु की दृष्टि से दोनों का तुलनात्मक अध्ययन– आचार्य दण्डी ने अपने महाकाव्य लक्षण में महाकाव्यों की कथा को इतिहास से प्रादुर्भूत होना चाहिए और कथा-वस्तु के अन्तर्गत ही आशी-नमस्क्रिया वस्तु का भी निर्देश किया है इसी प्रकार आचार्य विश्वनाथ ने भी महाकाव्य के अपने लक्षण में महाकाव्य की कथा को इतिहाश्रित बताया है। दशरूपककार धनञ्जय ने कथा के संदर्भ में कुछ अधिक न कहकर वस्तु को आधिकारिक और प्रासंगिक[१] दो भेद किये है और पुनः आधिकारिक और प्रासंगिक कथावस्तु का लक्षण इस प्रकार किया है।

आधिकारिक कथावस्तु की परिभाषा– 'फल' का स्वामित्व कहलाता है। उस अधिकारी से निवृत्त अर्थात् सम्पन्न की गयी अभिव्यापी या फल पर्यन्त रहने वाली कथावस्तु अधिकारी कहलाती है।[२]

उन्होंने प्रासंगिक की परिभाषा इस प्रकार की है परार्थ अर्थात् दूसरे इतिवृत्त आधिकारिक या प्रधान कथावस्तु को सिद्ध करने के लिए उपस्थित जिस इतिवृत्त का प्रसंगवश अपना भी प्रयोजन सिद्ध हो जाता है, वह प्रासंगिक है।

आचार्य धनञ्जय ने आधिकारिक और प्रासंगिक कथावस्तु के भेदों का भी उल्लेख किया है। साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने वस्तु के दो– (१) आधिकारिक और (२) प्रासंगिक भेद किये है और प्रायः धनञ्जय के वस्तु भेद की तरह ही वस्तु-भेदों का निरूपण किया है।[३]

कुमारसम्भव की आधिकारिक कथावस्तु के अन्तर्गत पार्वती जन्म-विवाह, कार्तिकेय के जन्म की कथा, तारक वध रखा जा सकता है[४] और मदन-दहन, रति-विलाप तथा ब्रह्मचारी द्वारा पार्वती की परीक्षा कुमारसम्भव की प्रासंगिक कथावस्तु है।[५]

जैनकुमारसम्भव में सुमङ्गला के गर्भाधान संकेत–

''कौमारकेलिकलनाभिरमुष्य पूर्व-लक्षाः षडेकलवतांनयतः सुखाभिः।
आद्या प्रिया गरभमेण दृशामभीष्टं, भर्तुः प्रसादमविनश्वरमाससाद''।।[६]

इसको आधिकारिक तथा इन्द्र द्वारा ऋषभदेव से विवाह हेतु की गयी स्तुति को प्रासंगिक कथा के अन्तर्गत रखा जा सकता है–

''तद्गेहि धर्मद्रुमदोहदस्य, पाणिग्रहस्यापि श्रवत्वमादिः।
न युग्मिभावे तमसीव मग्नां महीमुपेक्षस्व जगत्प्रदीप''।।[७]

कुमारसम्भव की कथावस्तु चरित के अंकन एवं ऐतिहासिक पात्रों शंकर पार्वती, कुमार कार्तिकेय आदि के चित्रण के कारण पुराणाश्रित तथा ऐतिहासिक है।

जैनकुमारसम्भव में इन्द्रादि देवों का चित्रण किया गया है तथापि इन्हें प्रभु रूप में स्वीकार किया गया है इस काव्य के नायक देव नहीं मानव है अतः इसे पौराणिक महाकाव्य की कोटि में रखा जा सकता है। ऐतिहासिक चरितो (ऋषभदेव, भरत आदि) के उल्लेख होने से यह ऐतिहासिक है।

जैनकुमारसम्भव के लिए ऋषभदेव काव्य के नायक नहीं अपितु प्रभु

भी है यथा–

स एव देव स गुरु स तीर्थ
स मङ्गलं सैव सखा स तातः।
स प्राणितं स प्रभुरित्युपासा-
मासे जनैस्तद्गत सर्वकृत्ये।।[८]

यहाँ देवचरित का वर्णन होने के कारण जैनकुमारसम्भव पुराणाश्रित है।

''देवि तवमेवास्य निदानमास्से सर्गे जगन्मङ्गलगान हेतोः।
सत्यं त्वमेवेति विचारयस्व रत्नाकरे युज्जायत एव रत्नम्।।[९]

यहाँ (कुमारसम्भव) भी देवचरित के वर्णन से पुराणाश्रित है अतएव दोनों ही महाकाव्यों की कथावस्तु ऐतिहासाश्रित एवं पुराणाश्रित दोनों है।

किन्तु जिस प्रकार कुमारसम्भव के प्रामाणिक भाग प्रथम आठ सर्गों में कार्तिकेय का जन्म वर्णित नहीं है, उसी प्रकार जैनकुमारसम्भव में भी कुमार भरत के जन्म का वर्णन नहीं है, केवल सुमङ्गला के गर्भाधान का संकेत किया गया है।[१०]

इस दृष्टि से दोनों ही महाकाव्यों के शीर्षक उनके प्रतिपाद्य विषयों पर चरितार्थ नहीं होते। दोनों ही महाकाव्यों की कथावस्तु अति संक्षिप्त है।

कुमार-सम्भव की कथावस्तु जैनकुमारसम्भव की कथावस्तु की अपेक्षा कुछ अधिक विस्तृत है, परन्तु उतना नहीं जितना कि महाकवि ने अपने वर्णना शक्ति के द्वारा इसे सत्रह सर्गों का महाकाव्य बना दिया है।

जैनकुमारसम्भव की कथावस्तु अति संक्षिप्त है जो दो या तीन सर्गों की सामग्री मात्र है या फिर अधिक से अधिक पाँच या छः सर्गो की। छठें सर्ग के बाद काव्य को शेष पाँच सर्गो में घसीटा गया है। यह अवांछनीय विस्तार यद्यपि कवि की वर्णनाशक्ति की महत्ता है तथापि कथानक की अन्विति छिन्न हो गयी है और काव्य का अन्त अतीव आकस्मिक हुआ है। सुमङ्गला द्वारा देखे गये स्वप्नों का ऋषभदेव द्वारा सोदाहरण फल विवेचन के पश्चात् इन्द्र द्वारा उस कथन की पुनः पुष्टि एकदम व्यर्थ सी लगती है। बेहतर होता यदि यह काव्य आठ या नव सर्गो में पूरा कर दिया गया होता। ऐसे में यह काव्य रसिकों के लिए अधिक हृदयावर्जक हो जाता।

जैन महाकाव्यों तथा संस्कृत महाकाव्यों की मूल प्रवृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात् अब हम संस्कृत साहित्य के देदीप्यमान नक्षत्र महाकवि कालिदास कृत कुमारसम्भव और जैन महाकवियों में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखने वाले श्री जयशेखर सूरि कृत जैनकुमारसम्भव महाकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन विस्तार पूर्वक करेंगे।

जिसमें भाषा, शैली, गुण, रीति, वृत्ति, रस, छन्द, अलङ्कार, प्रकृति वर्णन इत्यादि संदर्भों में अवलोकन करना आवश्यक होगा।

(ख) कविता-कामिनी-कान्त कालिदास न केवल संस्कृत-वाङ्मय के अपितु विश्व-वाङ्मय के मुकुटालङ्कार है उनकी कविता की समस्त विशेषताओं का उल्लेख करते हुए जर्मन कवि गेटे का विचार इस प्रकार है– "संस्कृत साहित्य के उपवन में कालिदास का समागम वसन्त दूत के

रूप में माना गया है फलस्वरूप उपवन का कोना-कोना पुष्पित हो उठा। उसने संस्कृत को वाणी दी, नई-नई साज-सज्जाएं, नये भाव, नयी दिशाएं, नये विचार, नयी-नयी पद्धतियाँ दी। वह संस्कृत का सबसे बड़ा कवि और नाटककार हुआ"।[११]

महाकवि कालिदास के सम्बन्ध में गेटे के इन भावों को विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इन शब्दों में व्यक्त किया है- स्वर्ग और मृत्यु का जो यह मिलन है, उसे कालिदास ने सहज ही सम्पन्न कर किया है; उन्होंने फूल को इस सहज भाव में परिणत कर लिया है, मर्त्य की सीमा को उन्होंने इस प्रकार स्वर्ग से मिला दिया है कि बीच का व्यवहार किसी को भी दृष्टिगोचर नहीं होता। आचार्य पं० बलदेव उपाध्याय ने कालिदास की कविताओं के संदर्भ में अपना विचार इस प्रकार व्यक्त किया है- महाकवि कालिदास की कविता देववाणी का शृङ्गार है। माधुर्य का निवेश, प्रसाद की स्निग्धता, पदों की सरस शय्या, अर्थ का सौष्ठव, अलङ्कारों का मंजुल प्रयोग कमनीय काव्य के समस्त लक्षण कालिदास की कविता में अपना अस्तित्व धारण किये हुए है। कालिदास भारतीय संस्कृत के प्रतिनिधि कवि है जिनके पात्र भारतीयता की भव्य मूर्ति है। जीवन के विविध परिस्थितियों के मार्मिक रूप को ग्रहण करने की क्षमता, जिस कवि में विशेष रूप से होगी, जनता का वही सच्चा प्रिय कवि होगा।

यद्यपि विद्वानों के उपर्युक्त कथनों में कालिदास की कविताओं की समस्त विशेषता प्रत्यक्षतः परिलक्षित होता है, तथापि परोक्ष रूप से उसका भाषा के

साथ भी सम्बन्ध है।

कालिदास का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। इनकी भाषा व्याकरण से परिष्कृत है। ये चुने हुए शब्दों का प्रयोग करते है। किसी भी बात को घुमाफिराकर कहने की अपेक्षा सीधे कह देना उन्हें अधिक प्रिय है। इनके द्वारा 'तु' 'हि' 'च' 'वा' का प्रयोग केवल पादपूर्ति के लिए ही किया गया है अपितु कुमारसम्भव में इनका सार्थक प्रयोग हुआ है।

कुमारसम्भव का हिमालय वर्णन भाषा की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है और इसमें भाषा की प्रौढ़ता परिलक्षित होती है।

> कपोलकण्डुः करिभिर्विनेतुं विघट्टितानां सरद्रुमाणाम्।
> यत्र स्नुतक्षीरतया प्रसूतः सानून गन्धः सुरभी करोति।।[१२]

भाषा माधुर्य की दृष्टि से निम्न श्लोक है–

> मधु द्विरेफः कुसुमैकपात्रेपयौप्रियां स्वामनुवर्तमानः।
> शृङ्गेण च स्पर्श निमीलिताक्षीं मृगीमकण्डूयत कृष्ण सारः।।

उपर्युक्त श्लोक में 'च' पद का सार्थक प्रयोग[१३] किया गया है। हि पद का सार्थक प्रयोग ब्रह्मा द्वारा देवताओं से शिवमहिमा का कथन श्रवणीय है–

> स हि देव परं ज्योतिस्तमः पारे व्यवस्थितम्।
> परिच्छिन्न प्रभा वर्द्धिनं मया न च विष्णुना।।[१४]

संस्कृताचार्यों ने प्रमुख रूप से रीतियाँ तीन प्रकार की मानते है– वैदर्भी,

गौड़ी तथा पाञ्चाली। गौड़ी रीति समास प्रधान होती है, इसमें बड़े-बड़े समास का प्रयोग होता है। पाञ्चाली रीति छोटे-छोटे समासों से युक्त होता है। ओज, माधुर्य और प्रसाद काव्य के तीन गुण है यद्यपि रसों का गुणों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है तथापि इनका गौण रूप से पद-संघटना के साथ भी सम्बन्ध होता है।

कालिदास प्रमुख रूप से वैदर्भी रीति के कवि है। इस रीति में समास प्रायः नहीं होता और काव्य पढ़ते ही उसका अर्थ समझ में आ जाता है। यह रीति प्रसाद गुण युक्त होती है।

उपमा और अर्थान्तरन्यास की विवेकपूर्ण योजना से कुमारसम्भव की भाषा श्रीवृद्धि को प्राप्त करती है। 'उपमा कालिदासस्य' इसीलिए कहा गया है। यथा–

तेषांमाविरभूद् ब्रह्मा परिम्लानमुखश्रियाम्।
सरसां सुप्तपद्मानां प्रातर्दीधितिमानिव।।[१५]

अर्थात् तारकासुर के भय से उदास मुख वाले इन्द्रादि देवताओं के समक्ष, दया के सागर ब्रह्मा जी उसी प्रकार प्रकट हुए, जैसे प्रातःकाल मुकुलित कमलों से युक्त तालाबों के सामने सूर्य का प्रादुर्भाव होता है।

अर्थान्तरन्यास उपमा के पश्चात् कालिदास का प्रिय अलङ्कार है, जिसके अलङ्करण से उनकी कविता में सहजता एवं सरलता दृष्टिगत होती है–

दिवाकराद्रक्षति यो गुहासु लीनं दिवाभीतमिवाऽन्धकारम्।

क्षुऽद्रेपि नूनं शरणं प्रपन्ने ममत्वमुच्चैः शिरसां सतीव।।[१६]

सूक्तियों के विधान से भाषा प्रौढ़, मधुर एवं शसक्त हो जाती है। कुमारसम्भव सूक्तिसार संग्रह है। कुछ विशिष्ट सूक्तियाँ इस प्रकार है–

१. एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणोष्विवाङ्कः।११-१.३

२. कठिना खलु स्त्रियः। -४/५ कु०सं०

३. वृक्षवृक्षोऽपि संवर्ध्यं स्वयं क्षेत्तुमसाम्प्रतम्। -२/५५

४. अप्यप्रसिद्धं यज्ञे स हि पुसांमनन्यसाधारणमेव कर्म।। -३/१९

५. अशोच्या हि पितुः कन्या सद्भर्तृप्रतिपादिता। -६/७९

६. स्त्रोतं कस्य न तुष्टये? -१०/९

७. अनन्तपुष्पस्य मघोर्हि चूते द्विरेफमाला सविशेष सङ्गा।। -१/२७

पूर्वोक्त सरस सूक्तियों के कारण कालिदास की भाषा प्राञ्जल हो गयी है तथा सरस एवं सुबोध होने के कारण अत्यन्त मनोहारी हो गयी है।

जैनकुमारसम्भव की भाषा उदात्त एवं प्रौढ़ है जो कवि की मुख्य विशेषता है। इसमें अधिकांशतः प्रसादपूर्व एवं भावानुकूल पदावली प्रयुक्त है तथा प्रसंगानुकूल ही भाषा का व्यवहार किया गया है। इस महाकाव्य की सुन्दरता का श्रेय इसमें प्रयुक्त अनुप्रास और यमक अलङ्कार के प्रयोग को है। जिससे भाषा में माधुर्य और मनोहरता आ गयी है। कवि ने माधुर्य, ओज और प्रसाद गुणों का यथास्थान सुन्दर विवरण प्रस्तुत किये हैं। इसकी भाषा

प्राञ्जल है तथा अनेक प्रसंगों में प्रसाद गुण युक्ता वैदर्भी रीति का प्रयोग है विशेषतः पञ्चम सर्ग में। तृतीय सर्ग में इन्द्र-ऋषभदेव संवाद माधुर्य गुणों से युक्त है। जैनकुमारसम्भव की भाषा यद्यपि कहीं-कहीं सहज है किन्तु कहीं-कहीं वह कठिन हो गयी है यही कालिदास के कुमारसम्भव से अन्तर है कुमारसम्भव में हमें दुरुहता के दर्शन नहीं होते उनकी भाषा केवल प्रसाद गुण युक्त है किन्तु जयशेखर सूरि की भाषा तीनों गुणों से युक्त है। इन्होंने काव्य में कहीं-कहीं दुर्लभ शब्दों का प्रयोग करके तथा लुङ्, लिट्, सन्, कानच, ण्मुल आदि प्रत्ययों का प्रयोग करके काव्य को दुरुह बना दिया है।

किन्तु इतना होने पर भी जैनकुमारसम्भव में अधिकांशतः माधुर्य की छटा ही दृष्टिगत होती है। इस प्रकार हम कह सकते है कि जयशेखर सूरि का शब्द चयन तथा शब्दों का गुम्फन, उनकी पर्यवेक्षण शक्ति तथा वर्णन कौशल सभी प्रशंसनीय है किन्तु कालिदास के कुमारसम्भव से तुलना करने पर पता चलता है कि यद्यपि दोनों महाकवियों की भाषा प्रौढ़ है तथा दोनों ने ही सुरुचि वर्णनों द्वारा उसे सशक्त एवं उदात्त बनाया है। किन्तु कुमारसम्भव के प्रमाणिक अंश (१ से ९ सर्ग तक) में दोषपूर्ण भाषा परिलक्षित नहीं होती वही जैनकुमारसम्भव में दोषपूर्ण भाषा देशी शब्दों के प्रयोग तथा कहीं-कहीं भाषा की दुरुहता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।

(ग) भाव सौन्दर्य के आधार पर विचार करने पर ज्ञात होता है कि 'दीपशिखा' कालिदास को मनुष्य के मनोविज्ञान का प्रगाढ़ ज्ञान है मानव हृदय में स्थित भाव एवं इसकी प्रतिक्रिया के विवेचन के

वे सच्चे पारखी हैं। केवल पुरुष के ही नहीं अपितु नारी भावों के चित्रण में वे सिद्धहस्त कवि है। यथा–

भगवान शिव समाधिस्थ है, जगदम्बा पार्वती उनकी सुश्रूषा में उपस्थित है। कामदेव दैवकार्य अर्थात् पार्वती-शंकर से पुत्र की प्राप्ति हेतु अपने प्रभाव का विस्तार करता है उसके प्रभाव से जगत पिता भगवान शंकर की दशा का वर्णन करते हुए कहते है–

हरस्तु किञ्चित्परिलुप्तधैर्यचन्द्रोदयारम्भइवाम्बुराशिः।
उमा मुखं विम्वफलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि।।[१७]

'जैसे चन्द्रोदय होने से अत्यन्त गम्भीर समुद्र भी क्षुब्ध हो उठता है, उसी प्रकार शंकर जी भी (काम के सम्मोहन नामक वाण चढाने के कारण) कुछ अधीर से हो उठे और विम्वाफल के समान लाल ओठ वाली पार्वती के मुख को अपनी तीनों आँखों से देखने लगें'।

उपर्युक्त पद्य में जहाँ काम के प्रभाव से प्रभावित शिव के भावों का चित्रण किया गया है, वहीं पदार्थ अर्थात् समुद्र के परिवर्तित भावों का भी सुन्दर वर्णन हुआ है।

पार्वती के परिवर्तित भावों को कालिदास जी इस प्रकार व्यक्त करते है–

''विवृण्वती शैलसुतापि भावमङ्गैः
स्फुरद्बालकदम्व कल्पैः।

साचीकृता चारुतरेण तस्थो
मुखेन पर्यस्तविलोचनेन"।।[१८]

(इधर) शंकर जी की दृष्टि पड़ते ही पार्वती का सम्पूर्ण अङ्ग प्रफुल्लित कदम्ब पुष्प के समान रोमांचित हो उठा, जिससे उनके हृदय का (शंकर के प्रति) मधुर भाव छिपा न रह सका। उनकी आखें लज्जा से झुक गई और वह तनिक तिरछी सी होकर खड़ी हो गयी। उस समय उनका मुख और भी सुन्दर लगने लगा।

किसी अभिलषित की प्राप्ति की आशा में प्रसन्न वदन होना स्वाभाविक है, किन्तु हानि के प्रति दुःख का होना कहीं उससे कम स्वाभाविक नहीं है।

शिव के त्रिनेत्र से निकली अग्नि द्वारा अपने मृत पति के वियोग में विलखती रति, कामदेव के मित्र वसन्त के आते ही अत्यधिक शोकाकुल हो जाती है रति के भाव परिवर्तनों के विषय में महाकवि कहते है–

"तमवेक्ष्य रुरोद साभृशं स्तनसम्वाधमुरो जघान च।
स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो विवृतद्वारमिवोप जायते"।।[१९]

अर्थात् वसन्त को देखते ही रति छाती पीट-पीट कर और भी जोर से रोने लगी, क्योंकि अपने सामने प्रियजनों को देखकर दुःख का द्वार एकाएक खुल सा पड़ता है।

तपोवन में पार्वती तप में लीन हैं। छद्म-वेशधारी (शिव) ब्रह्मचारी उनके

आश्रय में प्रवेश करते है। अतिथि सत्कार के प्रति पार्वती की भाव प्रवणता के संदर्भ में वर्णन है–

तमातिथेयी वहुमानपूर्वया तपर्यया प्रत्युदियाय पार्वती।
भवन्ति साम्येऽपि निविष्टचेतसां वपुर्विशेष्वति गौरवाः क्रियाः।।[२०]

अर्थात् अतिथि सत्कार में प्रवीण पार्वती ने बड़े आदर एवं अत्यन्त श्रद्धा के साथ उस तपस्वी का आगे बढ़कर स्वागत किया। जो लोग अपने मन को भलीभाँति संयमित कर लेते है वे अपने समान वय वाले सत्पुरुषों से मिलते समय भी अत्यन्त आदर का व्यवहार करते है।

किन्तु पति निन्दा के समय पार्वती के परिवर्तित भावों को कवि इस प्रकार कहता है–

निवार्यतामालि! किमप्ययं वटुः पुनर्विवक्षुः स्फुरितोत्तराधरः।
न केवलं यौ महतोऽपभाषते श्रृणोति तस्मादपि यः स पापभाक्।।[२१]

अर्थात् हे सखी देखो, इस ब्रह्मचारी का अधर फिर हिल रहा है, सम्भवतः यह फिर कुछ कहना चाहता है। अतः इसे मना कर दो कि अब (यह) कुछ भी न कहें क्योंकि बड़ों का निन्दक ही पाप का भागी नहीं होता बल्कि उसे सुनने वाला भी पाप का भागी होता है।

शंकर जी के साथ पार्वती की शादी तय हो चुकी है किन्तु हिमालय ने अपनी पत्नी, के भावों को जानने के लिए उसकी ओर देखते है–

शैलः सम्पूर्णकामोऽपि मेनामुखमुदैक्षत।

प्रायेण गृहणीनेत्राः कन्यार्थेषु कुटुम्बिनः।।[२२]

जिस समय अंगिरा ऋषि शिव की महिमा का वर्णन कर रहे थे, उसे सुनती हुई पार्वती के भाव परिवर्तनों के संदर्भ में कालिदास कहते हैं–

एवंवादिनि देवर्षो पार्श्वे पितुरधोमुखी।
लीला कमल पत्राणि गणयामास पार्वती।।[२३]

अर्थात् पति विषयक वार्ता को सुनकर पार्वती लज्जा वश अपने पिता के पास नम्र मुखी हो लीला कमल पत्रों को गिन रही थी।

शिवपार्वती का विवाह तय हो चुका है। पार्वती की पति प्राप्ति विषयक उन्मुखता का वर्णन किया जा चुका है। इधर पार्वती जी से मिलने की उत्सुकता में शंकर जी के उत्पन्न भावों के संदर्भ में कवि की उक्ति इस प्रकार है–

पशुपतिरपि तान्य हानि कृच्छाद
गमयदद्रिसुता समागमोत्कः।
कमपरवशं न विप्र कुर्युर्विभुमपि
तं पदमी स्पृशान्ति भावाः।।[३]

अर्थात् हिमालय की पुत्री पार्वती से मिलने की उत्सुकता में महादेव जी ने उन तीन दिनों को बड़ी कठिनाई से बिताया। भला जब सांसारिक भाव जितेन्द्रिय भगवान शंकर को इस प्रकार विकल बना सकते है, तो फिर दूसरा ऐसा कौन हो सकता है, जो उससे अधीर न हो सके।

पूर्वोक्त वर्णनों से स्पष्ट है कि कालिदास जी भावों के वर्णन में हस्तसिद्ध है और उनका कुमारसम्भव भावों का सागर है।

महाकवि कालिदास से प्रभावित जयशेखर सूरि जी भी अपने महाकाव्य में स्पष्ट कर दिया है कि ये भी पुरुष के भावों का सूक्ष्म चित्रण के साथ नारी मनोभावों का स्पष्ट चित्रण करते है–

> या प्रभूष्णुरपि भर्तरि दासी-
> भावमावहति सा खलु कान्ता।
> कोपपंककलुषा नृषु शेषा
> योषितः क्षतजशोषजलूकाः।।[२४]

अर्थात् समर्थवान होते हुए भी जो स्त्री पति के प्रति दासी भाव को धारण करती है वह ही पत्नी है शेष स्त्रियाँ तो खून चूसने वाली जोंक के समान है।

पुरुष के मनोभाव वर्णन में कवि देवाधिप इन्द्र द्वारा स्वामी ऋषभदेव की स्तुति प्रसंग में इन्द्र की भक्तिभाव को पूर्ण रूपेण प्रकाशित करने में समर्थ है–

> तव हृदि निवसामीत्युक्तिरीशे न योग्या
> मम हृदि निवसत्वं नेति नेता नियम्यः।
> न विभुरुभयथाहं भाषितुं तद्यथार्ह
> मयिकुरुकरुणार्हे स्वात्मनैव प्रसादम्।।[२५]

अर्थात् मैं आपके हृदय में निवास करता हूँ यह आप (प्रभु) के योग्य नहीं है। मेरे हृदय में आप (प्रभु) निवास करते है, ऐसा हो ही नहीं सकता, क्योंकि मैं क्षुद्र हृदय वाला हूँ और आप विश्व (नियमों के) कोश है। इस प्रकार द्वय विधि कहने में असमर्थ मुझ पर हे करुणाकर- अर्थात् मुझे अपना समझकर करुणा (दया) कीजिए। इस प्रकार हम कह सकते है कि जैनकुमारसम्भवकार जयशेखर सूरि जी भले ही कुमारसम्भव का अनुकरण करने का प्रयास किये है किन्तु कालिदास के सामने भावाभिव्यक्ति में नन्हें बच्चें के समान परिलक्षित होते हैं।

कल्पनाजगत के अन्तरिक्ष में विचरण करने वाले कालिदास की इसी विशेषता के कारण आधुनिक साहित्य समीक्षक कालिदास को 'भारत का शेक्सपीयर' मानते है। काल्पनिक जगत में विचरण करने का उनका आधार निजी कल्पना के साथ-साथ इतिहास-पुराण में वर्णित वस्तु वर्णन को परिवर्तित करने की उनकी अपार काल्पनिक क्षमता है।

विश्ववन्ध महाकवि कालिदास जी कुमारसम्भव की कथा शिव-पुराण से ग्रहण किया है किन्तु शिवपुराण में वर्णित कुमार कार्तिकेय जन्म की कथा अपनी कल्पनाओं द्वारा परिवर्तित कुमारसम्भव में जिस प्रकार नियोजित किया है यह उन्हीं के वश की बात थी, क्योंकि इस प्रकार करने को कौन कहे कोई कवि सोच भी नहीं सकता। शिव महापुराण के अन्तर्गत 'कुमारखण्ड' में कुमार कार्तिकेय के जन्म की जो कथा उपन्यस्त है[२६], उसमें परिवर्तन करते हुए कालिदास कुमारसम्भव में इस प्रकार वर्णित किया है-

युगान्त कालाग्निमिवाग्निमिवाविषह्यं
परिच्युतं मन्मथरङ्गभङ्गात्।
रतान्तरेतः स हिरण्यरेतस्यधोर्ध्व-
रेतास्तदमोघमाघात्।।[२७]

अर्थात् कामक्रीड़ा के भंग होने के कारण अपने वीर्य को ऊपर खींचने में समर्थ शंकर जी ने संभोग के अन्त में निकले हुए, प्रलयकाल की अग्नि के समान असहनीय तथा उत्पादन में अचूक वीर्य अग्नि को दे दिया और अग्नि ने इन्द्र की सलाह पर उस वीर्य को गंगा जी को सौंप दिया–

गङ्गावारिणि कल्याणकारिणि श्रमहारिणि।
समग्नो निवृत्तिं प्राप पुष्पभारिणि तारिणि।।

तत्र माहेश्वरं धाम सञ्चक्राम हविर्भुजः।
गङ्गायामुत्तरङ्गायामन्तस्तापविपद्धृतिः।।[२८]

गङ्गाजी में स्नान करने आयी छः कृत्तिकाओं के गर्भ में वह वीर्य प्रवेश कर गया और कृत्तिकाओं ने अपने-अपने पतियों के तथा लोक-लाज के भय से उसे सरपत के जंगल में छोड़ दिया, जहाँ वह वीर्य कुमार के रूप में अवतरित होकर अपने तेज से ब्रह्म को भी चुनौती देने लगा–

जगच्चक्षुषि चण्डांशौ किञ्चिदभ्युदयोन्मुख।
जग्मुः षटकृत्तिका माघे मासि स्नातुं सुरापगा।।[२९]

कृतानुरेतसो रेवस्तासामभि कलेवरम्।

अमोघं सञ्चाराय सद्यो गङ्गावगाहनात्।।[३०]

उपर्युक्त वर्णनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि संसार के प्रायः समस्त कवियों ने वस्तु वर्णन में अपनी कल्पना का उपयोग कर उसे रमणीय रूप प्रदान करने का प्रयास किया है वही कालिदास जी कल्पनाओं द्वारा कथा में ही परिवर्तन करने का अद्वितीय साहस करते हुए कथा और उसके विषय वस्तु को मधुर, मनोहर और अतीव सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया है।

किन्तु जैनकुमारसम्भव में कुमारसम्भव की कल्पनाओं को यथावत ग्रहण किया है। कुमारसम्भव में किये गये हिमालय वर्णन की कल्पना का अनुकरण करके अयोध्यापुरी का वर्णन किया– अस्त्युत्तरस्यां दिशि कोशलेति .....। और इसी प्रथम सर्ग में ऋषभदेव के जन्म से योवन तक का वर्णन भी कुमारसम्भव में पार्वती के जन्म से योवन तक के वर्णन से प्रभावित है। अतः स्पष्ट है कि जयशेखर सूरि जी कल्पना जगत में कालिदास जी से प्रभावित है किन्तु उनकी एक भिन्नता उनकी विशिष्टता को द्योतित करता है– सुमङ्गला के द्वारा देखा गया 'चौदह स्वप्न वर्णन'–

प्रथमं सा लसद्दन्त .... इत्यादि। -७/२४-५१

उपर्युक्त चौदह स्वप्नों को देखकर सुमङ्गला भयभीत होती है और इन स्वप्नों का फल जानने के लिए वह ऋषभदेव के पास जाती है। अपने आवास में सुमङ्गला को असमय में आते हुए देखकर ऋषभदेव की नाना प्रकार की

कल्पना भी कवि की सर्जना शक्ति की विशिष्टता है–

य लयं विहारेण यदन्तरीय .... इत्यादि। –८/४-५

ऋषभदेव द्वारा स्वप्न फलों का कथन भी कवि की उदात्त कल्पना शक्ति का द्योतक है।

(घ) जैनकुमारसम्भव एवं कुमार-सम्भव दोनों महाकाव्यों के नायक धीरोदात्त नायक के गुणों से युक्त होने के कारण धीरोदात्त नायक हैं। क्योंकि जैनकुमारसम्भव में जयशेखर सूरि जी नायक के अनिवार्य गुणों की ओर संकेत किया है जो इस प्रकार है– दाता, कुलीन, मधुरभाषी, वैभवशाली तेजस्वी तथा योगी एवं मोक्षकामी और उसका नायक ऋषभदेव इन गुणों से सम्पन्न है। जो धीरोदात्त नायक के गुण है। इसी प्रकार कालिदास का नायक कुमार कार्तिकेय है। उनका जन्म ही असुराधिपति तारक के आतंक से देवों की मुक्ति के लिए हुआ है अतः उनमें उत्साह, शूरता, दृढ़ता, तेजस्विता और बुद्धिमत्ता आदि गुण प्रचुर मात्रा में समाहित है। कुमार कार्तिकेय उच्च कुलीन शिव पार्वती के पुत्र है।

जगत्त्रयीनन्दन एष वीरः प्रवीरमातुस्तवनन्दनोऽस्ति।
कल्याणि कल्याणकरः सुराणां त्वत्तोऽपरस्याः कथमेष सर्गः।।[३१]

वे महान तेजस्वी और दिव्य शरीर वाले हैं–

''ताभिस्तत्रामृतकरकलाकोमलं भासमानं

तद्विक्षिप्तं क्षणमभिनभोगर्भमभ्युज्जिहानैः।
स्वैस्तेजोभिर्दिनपतिशतस्पर्धमानैरमानै
र्वक्त्रैः षड्भिः स्मरहर गुरुस्पर्धयवाजनीव"।।[32]

"अथाह देवी शशिखण्डमौलिं कोऽयं शिशुर्दिव्यवपुः पुरस्तात्।
कस्याधवा धन्यतपस्य पुंसो मातास्य का भाग्यवतीषु धुर्मा"।।[33]

वे आज्ञाकारी समस्त शास्त्र एवं शस्त्र विद्याओं के ज्ञाता तथा सर्वजन प्रिय हैं-

"शासनं पशुपतेः सकुमारः स्वीचकारः शिरसावतेन
सर्वथैव पितृभक्तिरतानामेश एव परमः खलु धर्मः।।[34]

इति बहुविधं वालक्रीडा विचित्र विचेष्ठितं
ललित ललितं सान्द्रानन्दं मनोहरमाचरन्।
अलभत परां बुद्धि दिने नवयोवनं
स किल सकलं शास्त्रं विवेद विभुर्यथा।।[35]

अशेष विश्व प्रिय दर्शनेन धुर्या त्वमेतेन सुपुत्रिणीनाम्।
अलं विलभ्व्याचलराजपुत्रि स्वपुत्र मुत्संगतलेनिधेहि।।[36]

वे दयावान लज्जाशील और श्रद्धावनतः हैं-

गतश्रियं वेरि वराभिभूतां दशां सुदीनाभभितो दधानाम्।
नारोमवीरामिव तामवेक्ष्य स वाढ़यन्तः करुणापरोऽभूत।।[37]

उत्कीर्णवामीकरपंकजानां दिग्दन्तिदानद्रवदूषितानाम्।

हिरण्यहंसव्रजवर्जितानां विदीर्णवैदूर्यमहाशिलानाम्।।

आविर्भवद्बालतृणात्रियतानां तदीयलीला गृह दीर्घिकाणाम्।

स दुर्दशां वीक्ष्य विरोधि जातां विषादवैलक्ष्य भरं वभार।।[३८]

पादौ महर्षेः किल कश्यपस्य कुलादि वृद्धस्य सुरासुराणाम्।

प्रदक्षिणी कृत्य कृतांजलिः सन्षड्भिः शिरोभिः स नतैर्ववन्दे।।[३९]

कुमार कार्तिकेय महायोद्धा, आत्मश्लाघा से विरत है–

न जामदग्न्यः क्षमकालरात्रिकृत्म क्षत्रियाणां समराम वल्गाति।

येन त्रिलोकी सुभटेन तेन कुतोऽवकाशः सह विग्रहग्रहे।।[४०]

शत्रु की प्रशंसा करने वाले है–

दैत्याधिराज भवता यदवादि गर्वात-

तत्सर्वमप्युचितमेव तवैव किन्तु।

द्रष्टास्मि ते प्रवर बाहुबलं वरिष्ठं

शस्त्रं गृहाण कुरु कार्मुकमाततज्यम्।।[४१]

कुमार कार्तिकेय ने अपनी प्रतिज्ञा 'तारकासुरवध' का पूर्ण निर्वाह किया है। अतः वह दृढ़ निश्चयी भी है–

शक्तया हृतासुम सुरेश्वरमापतन्तं

कल्पान्तवातहसभिन्नभिवाद्रिधृंगम्।

दृष्ट्वा प्ररुढपुलकाञ्चितचादेहा

देवाः प्रभोदयगमंस्त्रिदशेन्द्रमुख्याः।।[४२]

अतः कुमारसम्भव के नाम कार्तिकेय, धीरोदात्त आदि गुणों से युक्त है।

जयशेखरसूरि ने अपने नायक में सच्चरित, त्याग आदि आदर्श गुणों को प्रतिष्ठापित किया है। महाकवि कालिदास कृत कुमारसम्भव का नायक अपने उद्देश्य तारकवध की प्राप्ति के लिए उत्साह वीर, दृढ़, निश्चयादि गुणों से युक्त है।

(ङ) प्रकृति निरुपण की दृष्टि से दोनों महाकाव्यों की तुलना–

काव्य शास्त्रियों के महाकाव्य के लक्षणों में प्रकृति चित्रण का उल्लेख उसकी महत्ता और उपयोगिता की स्वीकृति है। प्रकृति वर्णनों से काव्य सौन्दर्य में अभिवृद्धि भी होती है। जैनकुमारसम्भव में कवि ने प्रकृति का भव्य वर्णन किया है और षड्-ऋतुओं के वर्णनों में जयशेखर का काव्य कौशल स्पष्टतः परिलक्षित होता है–

१. वसन्त ऋतु का वर्णन–

कदापि नाथं विजिहीर्षुमन्त-

र्वर्ज वर्णं विबुध्येव समं वधूभ्याम।

पत्रैश्च पुष्पैश्च तरूनशेषा।

न्विभूषयामास ऋतुर्वसन्तः।।[४३]

२. ग्रीष्म ऋतु का वर्णन–

दोषोन्नतिर्नास्य तमोमयीष्टा,
दृष्टेति तामेष शनैः पिपेष।
पुपोष चाहस्तदमुष्यपूजा-
पर्यायदानादुतितद्युतीति।।[४४]

३. वर्षा ऋतु का वर्णन–

पुष्टयर्थमीशध्वजतैकसद्म
ककुद्मतः किं जलभृज्जलौघैः
उदीततृष्यामवनीं समंता-
द्वितन्वती प्रावृडथ प्रवृत्ता।।[३]

४. शरद ऋतु का वर्णन–

प्रसादयंत्यांबु पयोजपुञ्जं
प्रवोधयन्त्याविधुमिद्धयन्त्या
अस्याभिषेकार्चनवक्त्रदास्या,
अधिकारऽसौ शरदोपतस्थे।।[१]

५. हेमन्त ऋतु का वर्णन–

मनाग् मुखश्रीः परमेश्वरस्य
जिहीर्षिता श्वैः शरदा मदाढयैः।
विधाय मन्तोः फलमन्तमेषु

पद्मेषु भेजे प्रशलर्तुरेनम्।।[४७]

६. शिशिर ऋतु का वर्णन–

अथ प्रभाह्रासकरीं बिमोच्य
दुर्दक्षिणाशां शिशिरर्तुरंशुम्।
अचीकरदीप्तिकरं प्रणन्तु-
मिवोत्तरारङ्गमसङ्गमेनम्।[४८]

महाकवि कालिदास प्रकृति के पुजारी है। उन्होंने कुमारसम्भव में यद्यपि प्रत्येक ऋतु का वर्णन यत्र-तत्र किया है किन्तु उनका वसन्त ऋतु वर्णन वैज्ञानिक तथ्य पर आधारित है–

कुवेरगुप्तां दिशमुष्णरश्मौ,
गन्तुं प्रवृत्ते समयं विलंध्य।
दिग्दक्षिणा गन्धवहं मुखेन
व्यलीकनिश्वासमिवोत्ससर्ज।।[४९]

अर्थात् वसन्त के आगमन के असमय में ही सूर्य दक्षिणायन से उत्तरायण में आ जाता है और दक्षिण दिशा में बहने वाला मलय पवन ऐसा प्रतीत होता है, जैसे- सूर्य के विरह में वह लम्बी-लम्बी सासें ले रहा हो और इस ऋतु में झनझनाते बिछुओं वाली सुन्दरी के पाद प्रहार के विना ही अशोक वृक्ष तत्काल ऊपर से नीचे तक पुष्पों से लद जाता है–

अश्रूत सद्यः कुसुमान्यशोकः

स्कन्धात्प्रभत्येव सपल्लवानि।
पादेन पापैक्षत सुन्दरीणां
सम्पर्कमासिञ्जितनूपुरेण।।[५०]

स्पष्ट है कि कालिदास कृत वसन्त वर्णन की यह झांकी जयशेखर कृत षड-ऋतु की अपेक्षा गम्भीर, मौलिक तथा अतीव सुन्दर है। जैनकुमारसम्भव के दसवें सर्ग के ६ पद्यों में प्रभात वर्णन प्रकृति चित्रण की दृष्टि से सर्वोत्तम अंश है जयशेखर ने प्रकृति की नाना चेष्टा को अपनी प्रतिभा की तूलिका से उजागर किया है-

लक्ष्मीं तथाम्वरमथात्मपरिच्छं च
मुञ्चन्तमागमितयोगमिवास्तकामम्।
दृष्टवेशमल्परुचि मुञ्झति कामिनीव
तं यामिनी प्रसरमम्बुरुहाक्षि पश्य।।[५१]

अर्थात् चन्द्रमा ने रात भर अपनी प्रिया से रमण किया है। इस स्वच्छन्द काम के लिए उसकी कान्ति मलान हो गयी है। प्रतिद्वन्दी सूर्य के भ्रम से वह अपना समूचा वैभव तथा परिवार छोड़कर नंगा भाग गया है। उसकी निष्कामता को देखकर पश्चली की तरह यामिनी ने उसे निर्दयता पूर्वक ठुकरा दिया है। उसे भागते देख सभी तारे एक-एक करके बुझ गये है। वे टिक भी कैसे सकते है, जबकि उनका अधिपति चन्द्रमा ही भाग गया है-

अवशमनशद्गीत शीतधुति स निरम्वरः
खरतरकरे ध्वस्यद्धान्ते रनावुदयोन्मुखे।

विरलविरलास्तज्जायन्ते नभोऽध्वतारका:

परिवढदृढीकराभावे बले हि कियद्बलम्।।[५२]

इसी सर्ग में प्रभात वर्णन के अन्तिम पद्य में कमल को मन्त्र साधक कामी के रूप में चित्रित किया गया है। कवि कहता है कि जैसे कामी अपने मनोरथ की पूर्ति के लिए नाना तन्त्र-मन्त्र का जाप करता है, उसी प्रकार कमल ने भी गहरे जल में खड़ा होकर सारी रात आकर्षण मन्त्र का जाप किया है। प्रात:काल उसने सूर्य की किरणों के स्पर्श से स्फूर्ति (शक्ति) पाकर, प्रतिनायक चन्द्रमा की लक्ष्मी का अपहरण कर लिया है; अर्थात् उसे अपनी अंक शय्या पर लिटाकर आनन्द लूट रहा है-

गम्भीराम्भ: स्थितमथजपन्मुद्रितास्यं निशाया-

मन्तर्गुञ्जन्मधुकरमिषान्नूनमाकृष्टिमन्त्रम्।

प्रातर्जातस्फुरणमरुणस्योदये चन्द्रविम्वा-

दाकृष्याब्जं सपदि कमलां स्वाङ्कतल्पीचकार।।[५३]

चन्द्रोदय, सूर्योदय आदि के अन्तर्गत प्रकृति के मानवीयकरण के कवि ने इस प्रकार प्रमाणित किया है-

सुधानिधानं मृगपत्रलेखं

शुभ्रांशुकुंम्भं शिरसा दधाना।

कौसुंभवस्त्रायितचान्द्ररागा,

प्राची जगन्मङ्गलदा तदाभूत।।[५४]

न स्त्री ततः कापि मया समाना
मानास्पदं या वत सा पुरोस्तु।
इतीव सल्लक्ष्मलिपींदुपत्र-
मुच्चैः समुन्तंभवति स्म रात्रिः।।[५५]

अथप्रभाह्लासकरीं विमोच्य,
दुर्दक्षिणाशां शिशुरर्तुरंशुम्
अचीकरदीप्तिकरं प्रणत्तु-
मिवोत्तरासङ्गमसङ्गमेनम्।[५६]

शीतेन सीदत्कुसुमासु युष्मा-
स्वचस्यि देवस्य मदेक निष्ठा।
इति स्फुटत्पुष्परदा तदानीं
शेषा लताः कुन्दलता जहास।।[५७]

निराकरिष्णुस्तिमिरारिपक्षं
महीभृतां मौलिषु दत्तपादः।
अथ ग्रहणामधिभूरुदीये
प्रसादयन् दिग्ललनाननानि।।[५८]

तमो मयोन्मादमवेक्ष्य नश्य-
देतैरमित्रं स्वगुहास्व धारि।
इति क्रुधवे द्युपतिर्गिरीणां
मूर्ध्नां जघानायतकेतुदण्डैः।।[५९]

रात्रि की लालिमा में छिटके तारे मनोरम दृश्य उपस्थित करते है। कवि का अनुमान है कि रात्रि की कालिमा शंकर का गज चर्म है, तारे असंख्य अस्थि खण्ड है। जो श्मसान में उनके चारों तरफ बिखरे रहते हैं–

अभूक्त भूतेशत नो विंभूतिं
भौती तमोभिः स्फुटतारकौधा।
विभिन्न कालच्छविदन्तिदैत्य
चर्मावृतेर्भूरि नरास्थिभाजः।।[६०]

रात्रि वर्णन प्रसंग में जयशेखर ने अनेक कमनीय कल्पनाएं की हैं। उनके कल्पनानुसार रात्रि गौर वर्ण की थी। यह अनाथ साध्वियों को सताने का फल है, कि वह उसके शाप से काली पड़ गयी। निम्नोक्त पद्य में रात्रि के अन्धकार को चकवों की विरहाग्नि का धूआं माना गया है–

हरिद्रेयं यद भिन्ननामा वभूव गौर्मेव निशातत प्राक्।
सन्तापयन्ती तु सतीरना धास्तच्छापदग्धाजनि कालकाया।।[६१]

यत्कोकयुग्मस्य वियोगवह्नि
र्जज्वाल मित्रेऽस्तमिते निशादौ।
सौद्योतस्वद्योतत्कुलस्फुलिङ्गं
दद्धूमराजिः किमिदं तमिस्त्रम्।[६२]

महाकवि कालिदास ने प्रकृति चित्रण में जिस प्रकार की कल्पनाओं को कुमार-सम्भव में तरलित किया है, वह केवल उनके ही वश की बात हो

सकती है।

रात्रि वर्णन प्रसङ्ग में-

इस अधेरे के कारण न तो ऊपर दिखाई दे रहा है, न नीचे, न तो आस-पास दिखाई दे रहा है और न तो पीछे ही। इस रात्रि के गोद में अन्धकार से घिरा हुआ संसार ऐसा दीखता है, मानों गर्भपात के समय गर्भ की झिल्ली से घिरा हुआ कोई बालक हो-

नौर्ध्वमीक्षण गर्तिन चाप्ययां नाभितोन पुरतो न पृष्ठतः।
लोक एष तिमिरौधवोष्ठितो गर्भवास इव वर्तते निशि।।[६३]

और पुनः इसी वर्णन प्रसङ्ग में कहते है- अन्धकार ने तो उजली, मैली, चल-अचल, टेढ़ी-सीधी, विभिन्न गुणों से युक्त सभी वस्तुओं को एक समान कर दिया है। ऐसे दुष्टों की महत्ता को धिक्कार है, जो अच्छे-बुरे गुणों का अन्तर ही मिटा देते है-

शुद्धमाविलमवस्थितं चलं वक्रमार्जवगुणान्वितं च यत्।
सर्वमेव तमसा समीकृतं घिङ महत्वमसतां हतान्तरम्।।[६४]

चांदनी के फैलने में अन्धकार दूर हो गया है और तालाबों में कमल सम्पुटित हो चुके है; जिससे ऐसा प्रतीत होता है, मानों चन्द्रमा रूपी नायक रात्रि रूपी नायिका के मुख पर बिखरे हुए अन्धकार रूपी बालों को हटाकर चुम्बन ले रहा हो और उसके रस में आनन्द मग्न हो जाने के कारण मानों उसकी कमल रूपी आखें मुँद गयी हो-

अङ्गुलीभिदिव केश सञ्चयं-
सन्नि गृह्य तिमिरं मरीचिभिः।
कुश्मलीकृत सरोज लोचनं
चुम्वतीव रजनीमुखं शशी।।[६५]

तारिकाओं के वर्णन में कवि का अनुमान है कि तारिकाएं उन नव वधुओं के समान हैं, जो पहली बार संभोग के डर से काँपती हुई अपने पति के पास जा रही हो-

एवं चारुमुखी योगतारया युज्यते तरलविश्वयाराशि।
साध्वसादुपगतप्रकम्पया कन्ययेव नव दीक्षया वरः।।[६६]

इस प्रकार महाकाव्यों में प्रकृति का मानवीयकरण करके नानाविधि विस्तृत वर्णन किया गया है। उन सभी का उल्लेख न तो, यहाँ अभीष्ट है और न ही सम्भव है।

उपयुक्त कुछ प्रमुख प्राकृतिक दृष्यों का सूक्ष्मतः अवलोकन करने के उपरान्त स्पष्ट होता है कि यद्यपि जैनकुमारसम्भव में कवि ने प्रकृति नाना रूपों का भव्य चित्रण किया है तथापि वे चित्र कालिदास के प्राकृतिक चित्रों की तुलना में शुष्क और नीरस है तथा कालिदास द्वारा निरूपित प्रकृति-वर्णन अनायास ही मानव हृदय को अपनी ओर आकर्षित करने में सक्षम है।

जहाँ तक प्रकृति चित्रण के स्वरूप का प्रश्न है, दोनों ही महाकाव्यों में प्रकृति कहीं यथावत वर्णित है तो कहीं आलम्बन में और कहीं-कहीं उद्दीपन

के रूप में भी वर्णित है जैसा कि अन्यत्र संस्कृत साहित्य में दिखाई पड़ते हैं। एक मौलिक बात यह है कि प्रकृति के सौम्य रूपों का वर्णन दोनों ही कवियों ने किया है किन्तु प्रकृति का भयावह रूप का वर्णन कहीं नहीं है।

जैनकुमारसम्भव और कालिदासीय कुमार-सम्भव के तुलनात्मक अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि जैनकुमारसम्भव में कोई अङ्गी रस स्पष्ट नहीं होता जबकि शृङ्गार वात्सल्य और हास्य रस को केवल प्रतिष्ठापित किया गया है यद्यपि उसका चित्रण सुनियोजित ढंग से नहीं किया गया है। इस महाकाव्य में नायक ऋषभदेव के विवाह तथा कुमार (भरत) के जन्म से सम्बन्धित विषय होने के कारण इसमें शृङ्गार रस की प्रधानता अपेक्षित थी किन्तु महाकवि ने अपनी निवृत्ति वादी दृष्टिकोण के कारण इस प्रसंग की अवहेलना किया है। तथा नायक वीतरागिता को उसकी आसक्ति की अपेक्षा अधिक उभारा है। वास्तव में इसमें जो शृङ्गार रस का चित्रण है वह लौकिक वासनात्मक स्वरूप न होकर धर्म प्रधान शृङ्गार के रूप में है चूँकि ऋषभदेव सामान्य नायक नहीं अपितु जैनियों के आराध्य देव के रूप में हैं। अतः कवि अपने पूजनीय एवं आदरणीय नायक को लौकिक शृङ्गार के रूप में वर्णित न कर धर्म प्रधान नायक के रूप में चित्रित किया है जैन काव्य साहित्य के इतिहास-भाग छः के अनुसार यद्यपि इस महाकाव्य में अंगी रस का अभाव बताया गया है किन्तु चूँकि किसी महाकाव्य में अंगी रस का होना आवश्यक है अतः शृङ्गार रस इस महाकाव्य का अंगी रस माना जा सकता है। यथा-

उनके लिए वैषयिक सुख विष तुल्य है–

> तनोषि तत्तेषु न किं प्रसादं,
> न सायुगीनायदमीत्वयीश।
> स्याद्यत्र शक्तेरवकाशनाशः
> श्रीयेत शूरैरपि तत्र साम।।[६७]

यहाँ ऋषभदेव अवक्रमित से काम में प्रवृत्त होते है और उचित उपचारों से विषयों को भोगते हैं।

एक अन्य स्थान पर शृङ्गार रस का यह उदाहरण- स्वामी ऋषभदेव को देखने के लिए पौर स्त्री के वर्णन प्रसंग में उसकी उत्सुकता की तीव्रता एवं अधीरता तथा आत्मविस्मृति को इस प्रकार दर्शाया है–

> कापि नार्थममितश्लथनीवी प्रक्षरन्निवसनापि न ललज्जे
> नायकाननानिबेशितनेत्रे जन्यलोकनिकरेऽपि समेता।।[६८]

किन्तु कालिदासीय कुमार-सम्भव पूर्ण रसवादी कृति है, जिसमें शृङ्गार रस अङ्गी रस है और शृङ्गार के दोनों रूप संयोग तथा वियोग या विप्रलम्भ शृङ्गार के अनुपम उदाहरणों से भरा पड़ा है। कुमार-सम्भव का आठवाँ सर्ग संभाग शृङ्गार की दृष्टि से भारतीय साहित्य में उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित हैं। यथा–

> एवमिन्द्रिय सुखस्य वर्त्मनः सेवनादनुगृहीतमन्मथः।
> शैलराजभवने सहोमया भासमात्रमवसदवृणध्वजः।।[६९]

कोई स्त्री नव विवाहित ऋषभदेव को देखने के लिए शीघ्रता में अपने रोते हुए शिशु को छोड़कर गोद में बिल्ली का बच्चा उठाकर दौड़ पड़ी। उसे देखकर सारी बारात हँसने लगी किन्तु उसे इसका भान तक नहीं हुआ–

"तूर्णिमृढा .... जन्यर्जनः स्वयम्"।।[७३]

शान्त रस की अभिव्यक्ति में स्वामी ऋषभदेव को गार्हस्थ्य जीवन में प्रवृत्त करने के लिए इन्द्र की उक्तियाँ द्रष्टव्य है–

"बयस्थनंगस्य .... विमनास्त्वदन्यः"।।[७४]

क्रुद्ध भैंसे के चित्रण में भयानक रस की अभिव्यञ्जना हुई है–

महातनुः .... प्राजनाविश्रम क्षणम्।।[७५]

महाकवि कालिदास का हास्य रस सभ्य और ऊँचे दर्जे का जिसे पढ़कर पाठक केवल मुस्कुराता है इनकी कविता ठहाके के साथ हँसी नहीं करती। कुमारसम्भव के पंचम सर्ग में पार्वती के आश्रम में आये हुए ब्रह्मचारी द्वारा शंकर जी की निन्दा के पद्य इसके उदाहरण है–

"इयञ्च तेऽन्या पुरतो विडम्बना यदूढया वारणराजहार्यया।
विलोक्यवृद्धोक्षमधिष्ठितं त्वया महाजनः स्मैरमुखोभविष्यति।।"[७६]

"द्वयं गतं सम्प्रति शोचनीयतां समागमप्रार्थनया पिनाकिनः।
कला च सा कान्तिमती कलावतस्त्वमस्यलोकस्य च नेत्र कौमुदी।।[७७]

हास्य रस के उदाहरण के रूप में कुमारसम्भव में पार्वती की एक

सखी ने परिहासपूर्वक उन्हें आशीर्वाद दिया कि तुम अपने इन चरणों से सुरत विशेष की क्रिया द्वारा अपने पति शंकर के शिर पर विद्यमान चन्द्रकला का स्पर्श करो–

''पत्युः शिरश्चन्द्रकलामयेन स्पृशेति सख्या परिहासपूर्वम्।
सा रंजयित्वा चरणौ कृताशीर्माल्येन तां निर्वचनं जघान।।'' कु०सं० ७/१२

शंकर जी के दर्शन के लिए उत्सुक स्त्रियों की विभिन्न दशाओं का चित्रण में हास्य रस दर्शनीय है[७८]–

आलोक मार्गं सहसा व्रंजन्त्या कयाचिदुद्वेष्टनवान्तमाल्यः।
बद्धुं न संभावित एव तावत्करेण रुद्धोऽपि च केशपाशः।।

प्रसाधिकाऽऽलम्वितमग्रपादमाक्षिप्य काचिद्द्रवरागमेव।
उत्सृष्टलीला गति राग वाक्षादलक्तकाङ्कां पदवीं ततान।।

विलोचनं दक्षिण मञ्जनेन संभाव्य तद्वञ्चित वामनेत्रा।
तथैव वातायनसंनिकर्ष ययौ शलाकामपरा वहन्ती।
जालान्तर प्रेषित दृष्टिरन्या प्रस्थान भिन्नां न ववन्ध नीवीम्।
नाभि प्रविष्टा भरण प्रभेण हस्तेन तस्या व वलम्व्य वासः।।

अर्धाचिता सत्वरमुत्थितायाः पदे-पदे दुर्निमिते गलन्ती।
कस्याश्चिदासीद्रशना तदानीमङ्गुष्ठमूलार्पित सूत्र शेषा।।

कुमार-सम्भव के ग्यारहवें सर्ग के श्लोक ४६-४८ में भी हास्य रस का चित्रण है।

कुमार-सम्भव में हास्य रस का परिपाक अन्य रसों की अपेक्षा अधिक नहीं हुआ है कि जैनकुमारसम्भव से उत्कृष्ट तो है ही। महाकवि ने चतुर्थ सर्ग के मदन दहन प्रसंग में करुण रस को विनियोजित किया है। वह उनके रस ज्ञान का चरमोत्कर्ष है। पूरा-पूरा चतुर्थ सर्ग करुण रस पर आधारित है–

उपमानमभूद्विलासिनां करणं यत्तव कान्तिमन्तया।
तदिदं गतमीदृशीं दशां न विदीर्ये कठिनाः खलु स्त्रियः।।[७९]

शान्त रस की भी उत्कृष्ट प्रतिष्ठा है[८०]–

भास्वन्ति रत्नानि महौषधींश्च पृथूपदिष्टां दुदुहुर्धरित्रीम्।
अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्य विलोपि जातम्।।

रौद्र रस–

अपनी समाधि में विवरण स्वरूप कामदेव को देखकर भगवान शिव का स्वरूप रौद्र रस से संयुक्त है[८१]–

तपः परामर्शविवृद्धमन्योर्भ्रूभङ्गदुष्प्रेक्ष्य मुखस्य तस्य।
स्फुरन्नुदर्चिः सहसा तृतीयादक्ष्णां कृशानुः किल निष्पपात।।

वीर रस–

कुमारसम्भव का चौदहवां सर्ग जिसमें कुमार कार्तिकेय और तारकासुर के बीच युद्ध का वर्णन है वीर रस से भरा पड़ा है– जिसमें एक उदाहरण–

बाणैः सुरारिधनुषः प्रसृतैरनन्तैनिर्घोष भीषित भटोलसदंशुजालैः।
अन्धीकृता खिल सुरेश्वर सैन्य ईशसूनुः कुतोऽपि विषयं न जगाम दृष्टेः।।[८२]

भयानक रस–

भगवान शिव के बैल नदी का स्वरूप वर्णन इस प्रकार है[८३]–

तुषार संघात शिलाः खुराग्रैः समुल्लिखन्दर्प कलः ककुद्मान्।
दृश्टः कथंचिद् गवयैर्विविग्नैरसोढसिंह ध्वनिरुन्ननाद।।

वीभत्स रस–

युद्ध में वीरों के कवन्ध या धड़ बड़ी कठिनाई से नाचते थे[८४]–

रणाङ्गणे शोणित पङ्कपिच्छिले कथं कथंचिन्ननृतुर्धृतायुधाः।
नदत्सु तूर्येषु परेतयोषितां गणेषु गायत्सु कबन्धराजयः।।

इस वर्णन में वीभत्स रस है और वीरों की दशा का वर्णन है–

न रथी रथिनं भूयः प्राहस्च्छस्त्रभूर्च्छितम्।
प्रत्यापसन्त मन्विच्छन्नातिष्ठद्युधि लोभतः।।[८५]

अद्‌भुत रस में प्रतिष्ठित है।

छन्द की दृष्टि से दोनों महाकाव्यों की तुलना करने पर ज्ञात होता है। महाकवि जयशेखर सूरि छन्दों के प्रयोग में नाट्य शास्त्र के नियमों का अनुपालन किया है। उन्होंने सर्ग के अन्त में छन्द बदल दिया है। प्रथम सर्ग में अयोध्यापुरी के वर्णन में उपजाति छन्द का प्रयोग किया है–

''अस्त्युत्तरस्यां दिशि कोशलेति इत्यादि।'' तथा सर्ग के अन्त में शार्दूल विक्रीडित छन्द की योजना है–

"नारीणां नयनेषु चापलपरीवादं विनिघ्नन् वपुः" इत्यादि।

महाकवि कालिदास का उपजाति प्रिय छन्द है उन्होंने कुमारसम्भव में इसका अत्यधिक प्रयोग किया है। एक उदाहरण हिमालय द्वारा पार्वती विवाह संस्कार के वर्णन प्रसंग में द्रष्टव्य है–

"अधोषधीनामाधपस्य वृद्धौ तिथौ च जामिलगुणान्वितायाम्।
समेत बन्धुर्हिमवान्सुताया विवाहदीक्षाविधिमन्वतिष्ठम्।।"[८६]

जैनकुमारसम्भव के द्वितीय सर्ग में वसन्ततिलका और सर्गान्त में मन्दाक्रान्ता छन्दों की योजना हुई है– छठे सर्ग में मालिनी और अन्तिम सर्ग में उपेन्द्रव्रजा, इन्द्रवज्रा तथा शिखरिणी छन्द की योजना है। कुल मिलाकर जयशेखर सूरि ने इस महाकाव्य में १७ छन्द प्रयुक्त किये है। उन्होंने अनुष्टुप, वियोगिनी, पुष्पिताग्रा छन्द का प्रयोग नहीं किया है।

महाकवि कालिदास छन्दों के प्रयोग में जयशेखर सूरि से अधिक प्रौढ़ थे। उन्होंने एक ही सर्ग (बारहवें) में पाँच छन्दों की योजना करके छन्दशास्त्र की अपनी परिपक्वता को प्रकट कर दिया है। वे छन्द निम्न है–

१. रथोद्धता–

इत्युदीर्य भगवांस्तमात्मजं घोरसङ्स्महोत्सवोत्सुकम्।
नन्दनं हि जहि देवविद्विषं संयतीति निजगाद शंकरः।।[८७]

२. उपजाति–

अथ प्रपेदे त्रिदशेरशेषे क्रूरासुरोपप्लवदुःजितात्मा।

पुलोमपुत्रीदयितोऽन्धकारिं पत्रीव तृष्णातुरितः पयोदम्।।[८८]

३. स्वगता–

शासनं पशुपतेः स कुमार स्वीचकार शिरसावतेन।
सर्वथैष पितृभक्तिरतनामेष एव परम खलु धर्मः।।[८९]

४. द्रुतविलम्वित–

असुरयुद्धविधो विवुधेश्वरे पशुपतौ वदतीति तमात्मजम्।
गिरिजया मुमुदे सुत विक्रमे सति न नन्दति काखलुबीरसू।।[९०]

५. हरिणी–

सुरपरिवृढः प्रौढं वीर कुमारभुपापते-
बलवदममारा तिस्त्रत्रीणां दृगज्जनभज्जनम्।
जगदभयदं सद्यः प्राप्यः प्रमोदपरोऽभवद्
ध्रुवमभिमते पूर्णे कोवामुदा न हि माद्यति।[९१]

अनुष्टुप-कालिदास का प्रिय छन्द है और कवि ने इसका विधान इस प्रकार किया है–

तस्मिन्विप्रकृताः काले तारकेण दिवौकसः।
तुरासाहं पुरोधाय धाम स्वायंभुवं ययुः।।[९२]

रति विलाप के प्रसंग में– वियोगिनी-वृत्त का उदाहरण द्रष्टव्य है–

अथमोह परायणा सती विवशा कामवधूर्विवोधिता।

पुलोमपुत्रीदयितोऽन्धकारिं पत्रीव तृष्णातुरितः पयोदम्।।[८८]

३. स्वगता–

शासनं पशुपतेः स कुमार स्वीचकार शिरसावतेन।
सर्वथैष पितृभक्तिरतनामेष एव परम खलु धर्मः।।[८९]

४. द्रुतविलम्वित–

असुरयुद्धविधो विवुधेश्वरे पशुपतौ वदतीति तमात्मजम्।
गिरिजया मुमुदे सुत विक्रमे सति न नन्दति काखलुबीरसू।।[९०]

५. हरिणी–

सुरपरिवृढः प्रौढं वीर कुमारभुपापते-
बलवदममारा तिस्त्रत्रीणां दृगज्जनभज्जनम्।
जगदभयदं सद्यः प्राप्यः प्रमोदपरोऽभवद्
ध्रुवमभिमते पूर्णे कोवामुदा न हि माद्यति।[९१]

अनुष्टुप-कालिदास का प्रिय छन्द है और कवि ने इसका विधान इस प्रकार किया है–

तस्मिन्विप्रकृताः काले तारकेण दिवौकसः।
तुरासाहं पुरोधाय धाम स्वायंभुवं ययुः।।[९२]

रति विलाप के प्रसंग में– वियोगिनी-वृत्त का उदाहरण द्रष्टव्य है–

अथमोह परायणा सती विवशा कामवधूर्विवोधिता।

विधिना प्रतिपादयिष्यता-नववैधव्यमसह्य वेदनम्।।[९३]

पुष्पिताग्रा-

अथ मदनवधूरुपप्लवान्तं व्यसनकृशा परिपालयां-वभूव।
शशिनः इव दिवातनस्य लेखा किरण परिक्षयधूसरा प्रदोषम्।।[९४]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि जो छन्द जयशेखर ने छुआ तक नहीं है उसे कालिदास ने प्रिय छन्द के रूप में अपनाया है। वैसे दोनों ही महाकवियों ने किया है। दोनों ही महाकाव्यों ने नाट्य शास्त्रानुकूल छन्द विधान किया गया है और सर्ग के अन्त में छन्द बदल दिये गये है। इतना होने पर भी काव्य की अन्यान्य विधाओं की भाँति कालिदास का छन्दशास्त्र ज्ञान, जयशेखर सूरि की तुलना में व्यापक और प्रौढ़ है। अलङ्कार की दृष्टि से- तुलनात्मक अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि कालिदास जी अलङ्कार विधान में तो काव्य जगत में शीर्षस्थ थे जिसमें उनका प्रिय अलङ्कार उपमा है। 'उपमा कालिदासस्य' यह प्रख्यात् कथन उपमा अलङ्कार में शीर्षस्थ का द्योतन है।

श्री जयशेखरसूरि द्वारा नियोजित अलङ्कार उनके महाकाव्य के काव्य सौन्दर्य को प्रस्फुटित करते है और भाव-प्रकाशन को समृद्ध बनाते है। उन्होंने मुख्यतः शब्दालङ्कार में श्लेष, अनुप्रास और यमक का विधान किया है। सुमङ्गला की सखियों की नृत्य मुद्राओं में श्लेष-

"सुश्रुताक्षरपथानुसारिणी -------- स्वमार्हतम्।।"[९५]

शब्दालङ्कारों में कवि ने अनुप्रास और यमक का अत्यधिक प्रयोग किया है और दोनों ही अलङ्कार काव्य में किसी न किसी रूप में व्याप्त है। जयशेखर सूरि का यमक अलङ्कार क्लिष्टता से मुक्त है–

"परांतरिवोदक -------- व्यतरद् द्वितीया"।।[९६]

अर्थालङ्कारों में उपमा कवि का प्रिय अलङ्कार है। जिसका उदाहरण है– सुमङ्गला और सुनन्दा की दृष्टि की चंचलता–

"शैशवाववधिवधू -------- इवान्तिषदीयम्"।।[९७]

जैनकुमारसम्भव को 'सूक्ति सागर' बनाने का श्रेय दृष्टान्त और अर्थान्तरन्यास को है। काव्य में दृष्टान्त और अर्थातरन्यास की भरमार है।

"दृष्टनष्ट -------- पनायति"।[९८]

आदि दृष्टान्त के उदाहरण है। कवि ने अर्थान्तरन्यास का सर्वाधिक प्रयोग किया है।

अलङ्कार के संदर्भ में कालिदास ने अपने कथन– 'किमिव हि मधुराणाम मण्डनं नाकृतीनाम्' का अक्षरशः पालन किया है। कुमारसम्भव में अलङ्कारों की योजना स्वाभाविक रूप में हुई है।

कालिदास के कुमारसम्भव में शब्दालङ्कार की अपेक्षा अर्थालंकारों की शशक्त अभिव्यक्ति हुई है। उपमा कालिदास का सर्वप्रिय अलंकार है। कुमारसम्भव में उपमा की भरमार है।

तारकासुर के आतंक से मुरझाए हुए मुखों वाले देवताओं के सम्मुख ब्रह्मा जी वैसे ही प्रकट हुए जैसे कमलों से युक्त तालाब के सामने सूर्य प्रकट होता है–

तेषामाविरभूद्ब्रह्मा परिम्लानमुखश्रियाम्।
सरसां सुप्त पद्मानां प्रातदीर्पितिमानीव।।[९९]

पार्वती के बिम्वाफल रूपी मुख को देखकर भगवान शंकर का धैर्य वैसे ही डगमगा गया जैसे चन्द्रमा के उदय होने पर समुद्र का जल डगमगा जाता है–

"हरस्तु किंचित्परिलुप्तधैर्यश्चन्द्रोयारम्भइवाम्वराशिः।
उमा मुखं विम्बफलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि।।[१००]

उपमा के बाद अर्थान्तरन्यास कालिदास को सर्वाधिक प्रिय है। कुमार-सम्भव में इसका प्रयोग वहुधा हुआ है। कुमार-सम्भव को 'सूक्ति सागर' बनाने में अर्थान्तरन्यास को विशेष योगदान है। हिमालय पर्वत के वर्णन प्रसंग में अर्थान्तरन्यास की अनुपम छटा द्रष्टव्य है–

"दिवाकरावक्षति यो गुहासु लीनं दिवाभीतमिवाऽन्धकारम्।
क्षुद्रऽपि नूनं शरणं प्रपन्ने ममत्वमुच्चैः शिरसां सतीव"।।[१०१]

पार्वती की माता मैना द्वारा उन्हें (पार्वती) तपस्या से रोके जाने का वर्णन प्रसङ्ग में कवि ने उनके मनोभावों को दृष्टान्त अलंकारों के माध्यम से व्यक्त किया है–

मनीषीताः सन्ति गृहेषु देवतास्तपः क्ववत्से क्व चतावक वपुः।
पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं शिरीष पुष्पं न पुनः वपुः पतत्त्रिणः।।[१०२]

हिमालय के स्वरूप को रूपक अलंकार द्वारा इस प्रकार वर्णित करते है कि उसका स्वरूप कुछ अधिक ही निखरा हुआ प्रतीत होता है–

यः पूरयन् -------- प्रदायित्वमिवोपगन्तुम।।[१०३]

समासोक्ति अलंकार द्वारा वसन्त रूपी नायक का व्यवहार इस प्रकार चित्रित किया गया है।

वालेन्दु वक्राण्यविकास -------- वनस्थलीनाम्।[१०४]

हिमालय के कथन (ब्रह्मर्षियों से) में दीपक अलंकार की सुन्दर अभिव्यञ्जना हुई है–

अवेमि पूतमात्मानं द्वयेनेवद्विजोत्तमाः।
मूर्ध्नि गङ्गाप्रपातेन धौतपादाम्भसा च वाः।।[१०५]

पार्वती के कण्ठ एवं मौक्तिक माल के भूषण भूष्य भाव को अन्योन्य अलंकार में इस प्रकार वर्णित किया गया है–

कण्ठस्य तस्याः स्तनबन्धुरस्या मुक्ता कलापस्य च निस्तलस्य।
अन्योन्यशोभाजननाद्बभूव साधारणौ भूषण भूष्यभावः।।[१०६]

उपर्युक्त वर्णनों से स्पष्ट होता है कि जैनकुमारसम्भव एवं कालिदासीय कुमारसम्भव दोनों ही महाकाव्यों में अलङ्कारों की प्रभावपूर्ण योजना की गयी

है, किन्तु कुमार-सम्भव में अलङ्कारों का स्वरूप अधिक भव्य एवं पुष्ट है अपेक्षाकृत जैनकुमारसम्भव के।

सन्दर्भ :

१. वस्तु च द्विधा - तत्राधिकारिकं मुख्यमंग प्रासगिकं विदुः दशः–१/११

२. अधिकारः फलस्वाम्यधिकारी च तत्प्रभुः।

तन्निवृत्तयभिव्यापि वृतं स्याधिकारिकम्।। –दशरूपक–१/१२

३. साहित्यदर्पण– ६/४२-४४

४. कुमारसम्भव– १/२१, ७/८३, १०/६०

५. वही, ३/७२, ४/१-४६, ५/३०-७३

६. जै० कु० सं०– ६/७४

७. वही, ३/९

८. वही, १/७३

९. वही, ११/११

१०. वही, ६/७४

११. गेटे

१२. कुमारसम्भव– १/९

१३. वही, ३/३६

१४. वही, २/५८

१५. वही, २/२

१६. वही, १/१२

१७. वही, ३/६७

१८. वही, ३/६८

१९. वही, ४/२६

२०. वही, ५/३१

२१. वही, ५/८३

२२. वही, ६/८५

२३. वही, ६/८४

२४. जै०कु०सं०– ५/८१

२५. वही, २/७२

२६. शिवपुराण– तृतीय अध्याय, कुमारखण्ड

२७. कुमारसम्भव– ९/१४

२८. वही, १०/३६–३७

२९. वही, १०/५४

३०. वही, १०/५८–५९

३१. वही, ११/१०

३२. वही, १०/६०

३३. वही, ११/६

३४. वही, १२/५८

३५. वही, ११/५०

३६. वही, ११/१४

३७. वही, १३/३६

३८. वही, १३/२९-४०

३९. वही, १३/४४

४०. वही, १५/३७

४१. वही, १७/१७

४२. वही, १७/५१

४३. जै०कु०सं०- ६/५२

४४. वही, ६/५७

४५. वही, ६/५९

४६. वही, ६/६३

४७. वही, ६/६६

४८. वही, ६/६९

४९. कुमारसम्भव- ३/२५

५०. वही, ३/२६

५१. जै०कु०सं०- १०/८२

५२. वही, १०/८३

५३. वही, १०/८४

५४. वही, ६/१४

५५. वही, ६/१९

५६. वही, ६/६९

५७. वही, ६/७१

५८. वही, ११/१

५९. वही, ११/४

६०. वही, ६/३

६१. वही, ६/७

६२. वही, ६/११

६३. कुमारसम्भव– ८/५६

६४. वही, ८/५७

६५. वही, ८/६३

६६. वही, ८/७३

६७. जै०कु०सं०– ३/१५

६८. वही, ५/३९

६९. कुमारसम्भव– ८/२०

७०. वही, ५/५७

७१. जै०कु०सं०, १/२७–२८

७२. कु०सं०, ११/१८

७३. जै०कु०सं०– ५/४१

७४. वही, ४/६

७५. वही, ३/२४

७६. कु०सं० ५/७०–७१

७७. वही, ५/७३

७८. वही, ७/५७-७१

७९ वही, ४/५

८० वही, १/२

८१ वही, ३/७१

८२. वही, ४/१५

८३. वही, १/५७

८४. वही, १६/५०

८५. वही, १६/४७

८६. वही, ७/१

८७. वही, १२/५७

८८ वही, १२/१

८९. वही, १२/५८

९०. वही, १२/५९

९१. वही, १२/७०

९२. वही, २/१

९३. वही, ४/१

९४. वही, ४/४६

९५. जै०कु०सं०- १०/६१

९६. वही, ४/४६

९७. वही, ४/७८

९८. वही, ४/७४

९९. कु०सं०– २/२

१००. वही, ३/६७

१०१ वही, १/१२

१०२. वही, ५/४

१०३. वही, १/८

१०४. वही, ३/२९

१०५. वही, ६/५७

१०६. वही, १/४२

अष्टम् अध्याय
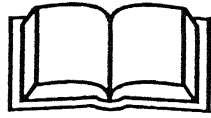
जैनकुमारसम्भव एक प्रेरणा श्रोत

जैनकुमारसम्भव की परवर्ती रचनाएं–

जिस प्रकार कुमारसम्भव का प्रभाव परवर्ती रचनाओं पर दीखता है, उसी प्रकार जैनकुमारसम्भव के प्रभाव को भी उसकी परवर्ती कृतियों पर देख सकते हैं।

१. काव्य मण्डन–

कवि मण्डन ने काव्य मण्डन तथा अपनी अन्य कृतियों में अपनी वंश परम्परा, धार्मिक वृत्ति आदि की पर्याप्त जानकारी दी है तथा स्थिति काल का भी एक महत्त्वपूर्ण संकेत दिया है। उसके जीवन वृत्त पर आधारित महेश्वर के काव्य मनोहर में भी मण्डन तथा उसके पूर्वजों का विस्तृत एवं प्रमाणिक इतिहास निबद्ध है। उसके अनुसार काव्यमण्डन के कर्ता श्रीमालवंश के भूषण थे। उनके गोत्र– सोनगिरि, चाहड़, वाहड़, देहड़ पदम, पाहुराज तथा काल थे।[१]

काव्यकार का मण्डन वाहड़ के द्वितीय तथा कनिष्ठ पुत्र थे। स्वयं कवि के कथनानुसार काव्यमण्डन की रचना उस समय हुई थी। जब पण्डपदुर्ग पर यवन नरेश आलमसाहि का शासन था। यवन शासक अतीव प्रतापी तथा शत्रुओं के लिए साक्षात् आतंक था–

अस्त्येतन्मण्ड्पाख्यं प्रस्थितयास्विमूदुर्गहं दुर्गमुच्चे-
र्यस्मिन्नालमसा हिर्निवसति वलवान्दुः सह पार्थिवाना।
यच्छौर्येरमन्दः प्रवलधरनिभृत्सैन्य वन्याभिपाती
शत्रुस्त्रीवाष्पवृष्ट्याप्याधिकतरमहो दीप्यते सिध्यमानः।।[२]

काव्य मण्डन का रचनाकाल १४१९ तथा १४३२ ई० की मध्यवर्ती अवधि को माना जा सकता है।

काव्यमण्डन की कथानक-

इस काव्य की कथा महाभारत पर आश्रित है। तथा इसकी शैली जैन कुमार सम्भव से प्रभावित है। जिसे तेरह सर्गों में विभक्त किया गया है। प्रथम सर्ग में मंगलाचरण के पश्चात् भीष्म, द्रोणाचार्य, कौरवों-वीरों तथा पाण्डव कुमारों के शौर्य एवं यश का वर्णन है। द्वितीय तथा तृतीय सर्गों में परम्परागत ऋतुओं का वर्णन है। चतुर्थ सर्ग में कौरवों द्वारा लाक्षागृह में पाण्डवों को जलाने के लिए खडयन्त्र का वर्णन है। पंचम सर्ग से सर्ग आठ तक पाण्डवों के तीर्थाटन का विस्तृत वर्णन है। सर्ग नौ में पाण्डव एक चक्रा नगरी में प्रछन्न वेश में एक दरिद्र ब्राह्मण के घर में निवास करते है तथा वहाँ भीम माता की प्रेरणा से नरभक्षी वकासुर को मारकर नगर वासियों की रक्षा करते हैं। द्रौपदी के स्वयंवर का समाचार सुनकर पाण्डव पाञ्चाल देश चल पड़ते है। सर्ग दश में स्वयंवर- मण्डप, आगन्तुक राजाओं तथा सूर्यास्त, रात्रि आदि का वर्णन है। ग्यारहवें सर्ग में द्रौपदी स्वयंवर में प्रवेश करती है। यहाँ उसके सौन्दर्य का विस्तृत वर्णन किया गया है। बारहवें सर्ग में राजा पाण्डवों को ब्राह्मण समझता है, किन्तु उनके वर्चस्व को देखकर उनकी वास्तविकता पर सन्देह करता है। दुर्योधन ब्राह्मण कुमार को अर्जुन समझकर द्रुपद को उसके विरूद्ध भड़काता है। इसी बात को लेकर दोनों में युद्ध ठन जाता है। अर्जुन अकेला ही शत्रु पक्ष को

परास्त करता है। पाण्डव, पत्नी तथा माता के साथ हस्तिनापुर लौट आते है। यहीं काव्य का अन्त हो जाता है।

इस संक्षिप्त कथानक को मण्डन ने अपने वर्णन चातुरी से तेरह सर्गो में विभक्त कर एक महाकाव्य का स्वरूप दे दिया है। इसमें ऋतुओं, तीर्थो, नदियों, युद्धों आदि का वर्णन विशेष सिद्ध हुए हैं।

२. भरत वाहुवलि महाकाव्य-

इस महाकाव्य के कर्ता का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है। प्रत्येक सर्ग के अन्तिम पद्य में प्रयुक्त 'पुष्पोदय' शब्द से कवि ने अपने, जिस नाम को इंगित किया है, वह पंजिका की पुष्पिका के अनुसार पुण्य कुशल है।[३] भरत बाहुवलि की रचना सं० १६५२-१६५९ के बीच हुई थी।

काव्य का कथानक-

षट्खण्ड विजय के फलस्वरूप भरत चक्रवर्ती पद प्राप्त करते हैं और वह अपने अनुज तक्षशिला नरेश वाहुवल द्वारा आधिपत्य स्वीकार न किये जाने से क्षुब्ध होकर दूत भेजते है। तक्षशिला नरेश के तेज को देखकर दूत की घिग्गी बँध जाती है- पहला सर्ग। द्वितीय सर्ग में दूत बाहुवल को अपने अग्रज को प्रभुत्व स्वीकार करने की प्रेरणा देते है। सर्ग तीन में बाहुवलि दूत की दुःचेष्टा से क्रुद्ध होकर अपनी अनुपम वीरता तथा भरत की लोलुपता की प्रशंसा करते है। दूत के अयोध्या लौटने के पूर्व ही बाहुवलि का आतंक फैल चुका होता है। चतुर्थ सर्ग में भरत बाहुवलि के

पराक्रम को याद कर दूत भेजने का भी पश्चाताप करते है। वह अपने भाई के वध का पाप भी नहीं लेना चाहता। सेनापति सुषेण उसे युद्ध के लिए प्रोत्साहित करता है। पाँचवे सर्ग का नाम है– सेनासज्जीकरण। परन्तु इसमें शरत तथा राजमहिर्षियों का वर्णन किया गया है। छठें से आठवें सर्ग तक भरत की सेना का प्रयाण, सैनिक मुगलों के वन-विहार, चन्द्रोदय, सूर्योदय, रतिक्रीडा का कवित्व पूर्ण वर्णन है।[४] प्रातःकाल भरत की सेना बाहुवलि के विरूद्ध प्रस्थान करती है। ६ से ८ सर्ग में सैन्य प्रयाण के उपरान्त योद्धाओं की प्रेयसियाँ, वियोग से विह्वल हो जाती है। नवें सर्ग में मन्दाकिनी की चारू वर्णन है। सर्ग दश में भरत आदि प्रभु के चैत्य में जाकर उनकी स्तुति करता है, वहीं उनकी भेंट तपस्यारत विद्याधर से होती है। जिसने भरत से पराजित होने के पश्चात् अधिपति नभि तथा विनभि के साथ मुनित्व स्वीकार कर लिया था।

सर्ग ग्यारह में चरों से यह ज्ञात है कि बाहुवलि भरत का आधिपत्य स्वीकार करने को तैयार नहीं है। उसके वीरों में अपार उत्साह है। बाहुवलि का मन्त्री सुमन्त्र से षडखण्ड विजेता अग्रज को प्राणीपात करने का परामर्श देता है, बाहुवलि सेना एकत्र करके युद्ध के लिए तैयार हो जाता है।

बारहवें सर्ग में भरत अपनी सेना को भावी युद्ध की गुरुता का भान करता है तथा उसकी विषय में ही अपने चक्रवर्तित्व की सार्थकता मानता है।[५] सेनापति सुषेण उसे विजय का विश्वास दिलाता है। सर्ग तेरह में बाहुवलि अपने सैनिकों को उत्साहित करता है। सिंह रथ को सेनाध्यक्ष

नियुक्त किया जाता है। चौदहवें सर्ग में दोनों सेनाएं समरांगण में उतरती है। स्तुति पाठक विपक्षी सेनाओं का परिचय देते है।

सेनाओं के तीन दिन के युद्ध का कवित्व पूर्ण वर्णन पन्द्रहवें सर्ग में तथा सोलहवें सर्ग में देवगण भीषण रक्तपात से बचने के लिए भरत तथा बाहुवलि को द्वन्द युद्ध के द्वारा बल-परीक्षा करने को प्रेरित करते हैं।

भरत और बाहुवलि दोनों युद्धभूमि में है। दृष्टियुद्ध, शब्दयुद्ध, मुष्टियुद्ध तथा दण्डयुद्ध में भरत पराजित होता है। किन्तु वह पराजय स्वीकार नहीं करता। हताश होकर वह बाहुवलि पर चक्र का प्रहार करता है। किन्तु वह चक्र केवल बाहुवलि का स्पर्श कर लौट आता है। बाहुवलि उसे तोड़ने के लिए मुष्टि उठाकर दौड़ता है। तीनों लोकों को नाश से बचाने के लिए देवता उसे रोक देते है। बाहुवलि उसी मुष्टि से केशलुंचन कर मुनि बन जाता है।

भरत समदर्शी अनुज को प्राणिपात करता है और उसके पुत्र को अभिषिक्त कर अयोध्या लौट आता है। सत्तरहवां सर्ग में षड् ऋतुएं भरत की सेवा में उपस्थित होते है। देवताओं से यह जानकर कि मानत्याग से बाहुवलि को कैवल्य ज्ञान प्राप्त हो गया है, भरत के हृदय में वैराग्य उत्पन्न होता है और उसे गृहस्थी में ही कैवल्य की प्राप्ति होती है।

जिस प्रकार जैनकुमारसम्भव में स्वामी ऋषभदेव के आदर्श चरित्र का चित्रण कविवर जयशेखर सूरि ने किया है उसी प्रकार भरत बाहुवलि महाकाव्य

में उनके पुत्र भरत की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन कवि पुण्य कुशल ने कवित्वपूर्ण ढंग से किया है। दोनों ही महाकाव्यों (कुमारसम्भव एवं जैन कुमारसम्भव) की तरह इस महाकाव्य का आरम्भ वस्तु निर्देशात्मक मंगलाचरण से हुआ है।

नवम् अध्याय
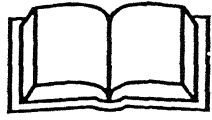
परिशिष्ट एवं उपसंहार

सूक्तियाँ–

किसी काव्य में सूक्तियों का प्रयोग काव्य को जीवन्त बनाना होता है इसके प्रयोग से काव्य को एक आधारभूत बल मिलता है तथा वह कसौटी पर कसे हुए के सदृश दृढ़ता को प्राप्त कर लेता है। सूक्तियाँ प्राय: दो अलङ्कारों से युक्त श्लोक में पाया जाता है अर्थान्तरन्यास और दृष्टान्त अलङ्कार। काव्यप्रकाश में अर्थान्तरन्यास अलङ्कार को इस तरह परिभाषित किया गया है "सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते, यन्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येण परेण वा" अर्थात् जहाँ सामान्य कथन द्वारा विशेष कथन को अथवा विशेष कथन द्वारा सामान्य कथन को समर्थन प्रदान किया जाय वहाँ अर्थान्तरन्यास अलङ्कार होता है जो समान धर्म वाला अथवा असमान धर्म वाला दो प्रकार का होता है तथा दृष्टान्त अलङ्कार की परिभाषा है– "दृष्टान्त पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्वनम्" अर्थात् उपमान उपमेय उनके विशेषण और साधारण धर्म आदि का विम्ब-प्रतिविम्वभाव होने पर दृष्टान्त अलङ्कार होता है। जैनकुमारसम्भव में इन अलङ्कारों के प्रयोग से सूक्तियों का समावेश होना स्वाभाविक है। जिसके प्रयोग से यह महाकाव्य उपदेश परक एवं प्रभावकारी हो गया है। यहाँ जैनकुमारसम्भव में प्रयुक्त कतिपय सूक्तियों का उल्लेख किया जा रहा है। यथा–

१. तारै रनभ्रैः प्रभयानभानु, रभ्रानुलिप्तोऽप्यधरीक्रियेत।।१/३०।।

२. कस्याप्रियः स्यात् पवनेन पारि, प्लवनोऽपि मन्दारतरोः प्रवालः।।१/३१।।

३. लोला स्वयं स्थैर्यगुणं तु सभ्या-नभ्यासयन्ती कुतुकाय किं न।।१/५३।।

४. युनोऽपि तस्याजनि वश्यमश्वः - वारस्य वाजीव सदैव चेतः।

५. सुधा गृहीतारमृते मुधाऽभूत।।१/६९।।

६. मणिर्महार्घ्यः शुचिकान्तिकाञ्चनं, कला कलादस्य कलापि वर्ण्यता

७. न जन्तुरेकान्तसुखी क्वचिद्भवे।।२/८।।

८. विवुधेशिता नयं न भिन्ते।।२/१६।।

९. रतिक्षणालम्बितरोषमानिनी, - स्मयग्रहग्रन्थिभिदे सहायताम्।।२/३९।

१०. तपोधनेभ्यश्चरता वनाध्वना, धनस्य भावे भवता धनीयता।

अदीयताज्यं यदनेन कौतुकं, तवैव शिश्वाय वृषो वृषध्वज।।२/५

११. त्रपा हि तातोतनया सुसूनुषु।।२/६३।।

१२. इयर्तु मेघंकरमारुतत्व, मुदेष्यतः कालवलाद घनस्य।।३/२।।

१३. हृद्यो न कस्येन्दुकलाकलापः, स्वात्मार्धमभ्यूहति तं चकोरः।।३/३

१४. विनेय वृक्षानभिवृष्य साधून्।।३/७।।

१५. अतात्त्विके कर्मणि धीरचित्ताः, प्रायेण नोत्फुल्लमुखी भवन्ति।। ३

१६. नार्यो हि नारीष्वधिकारणीयाः।। ३/४० ।।

१७. वारांनिधेस्तद्धनिनश्चिरत्नो, रत्नोच्चयः फल्गुरभूच्चितोऽपि।। ३/५३

१८. तन्मौलिवासाद बलवान्न कस्य।। ३/६४ ।।

१९. यत्पत्रवल्ल्यो मृगनाभिनीला, निरीक्षितास्तत्परितोऽनुषक्ताः।। ३/६७

२०. को विश्वसेत्तापकरप्रसूतेः।। ३/७४ ।।

२१. हस्तिनः पदेन पदान्तरवद्वयलुप्यत्।। ४/३ ।।

२२. न मोघा महतां हि सङ्गतिः।। ४/२१ ।।

२३. रतिं न भूम्ना भुवि यन्ति देवताः।।४/२९।।

२४. दक्षिणः क्षणफलः क्वनु वामः।।५/३।।

२५. देहिनां हि सहजं दुरपोहम्।।५/८।।

२६. महतां चरितं कः वेद।।५/९।।

२७. हार्द ग्रन्थिरश्लथ इति प्रथितोक्तिः।।५/१०।।

२८. रागमेधयति रागिषु सर्वम्।।५/१६।।

२९. क्षीण एव खलु शुक्तिमगर्वः।।५/२२।।

३०. कुलवधूरवधूय प्रेम पैतृकमुपान्तमुपेता।।५/५९।।

३१. अन्तरेण पुरुषं नहि नारी, तां विना न पुरुषोऽपि विभाति।

पादपेन रुचिमञ्चति शाखा, शाखयैव सकलः किल सोऽपि।।५/६१।।

३२. धीयते न कुलमूर्ध्नि पताका।।५/६४।।

३३. किं प्रकुप्यति नदीषु नदीशः।।५/६५।।

३४. स्त्रैणकंठरसिकोऽपिहि हारः।।५/६६।।

३५. तपस्विनां हि फलिता कदाशा।।६/४।।

३६. कालेन विना क्व शक्तिः।।६/५।।

३७. सारं कलत्रं क्व कलङ्किनों वा।।६/२०।।

३८. किं कृत्रिमं खेलति नेतुरग्रे।।८/३।।

३९. साधारणः सर्ववने वसंतः।।८/२०।।

४०. अब्दागमस्य को निन्दति पङ्क्लित्वम्।।८/४९।।

४१. को वा स्वजातौ नहि पक्षपातम्।।८/५२।।

४२. विना लता वृष्टिमिवेष्टसिद्धयः।।९/१०।।

४३. लज्जते वत सपत्नयत्र कः।।१०/२०।।

उपसंहार–

इस प्रकार भावपक्ष एवं कलापक्ष के समन्वयकर्ता महाकवि जयशेखरसूरि श्रवण परम्परा के एक श्रेष्ठ कवि हैं, जिनके सामने धर्म प्रचार का लक्ष्य विद्यमान था जिसे पूरा करने के लिए उन्होंने काव्य को माध्यम वनाया। इन्होंने अपने महाकाव्य की रचना प्रमुखतः कालिदास कृत कुमारसम्भव की प्रेरणा से की है विशेषतः परिकल्पना, कथानक के विकास एवं घटनाओं के संयोजन में दोनों में पर्याप्त साम्य है इस काव्य की शैली में जो प्रसाद तथा आकर्षण है वह भी कालिदास की शैली की सहजता एवं प्राञ्जलता के प्रभाव के कारण ही है। किन्तु चौदह स्वप्नों के सन्दर्भ में यह हेमचन्द्र के त्रिषष्टिशलाका पुरुष और जिनसेन के आदिपुराण से प्रभावित है। यद्यपि कुमारसम्भव पर अनेकशः शोध कार्य हुए हैं किन्तु जैनकुमारसम्भव पर विशेषतः साहित्यिक दृष्टिकोण से अभी तक शोध कार्य हुआ नहीं है अतः विभिन्न साहित्यिक दृष्टिकोण से विवेचन करने का प्रयास

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में किया गया है जिसका पुनः उल्लेख करना पृष्टप्रेषण मात्र होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

अलङ्कार महोदधि- महेन्द्र प्रभसूरि (संपा०), लालचन्द्र भगवान दास गान्धी जैन पण्डित गायकवाड़ ओरियेन्टल सीरीज, बड़ौदा, १९४२

काव्यप्रकाश- आचार्य मम्मट, (संपा०), डॉ० नगेन्द्र, ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी, प्रथम संस्करण, १९६०

अमरकोश- अमर सिंह, (संपा०), श्री पं० हरगोविन्द शास्त्री चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९७०

काव्यादर्श- आचार्य दण्डी, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी,

अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग- (संपा०), डॉ० रामलाल शर्मा लेशनल पब्लिसिंग हाउस दिल्ली-६, द्वितीय संस्करण-१९६९

काव्यानुशासन- वाग्भट द्वितीय, (संपा०), पं० शिवदत्त शर्मा तुलाराम जावजी निर्णय सागर प्रेस बम्बई, द्वितीय संस्करण-१९१५

काव्यालङ्कारसार- भावदेवसूरि (अलङ्कार महोदधि के अन्त में पृ०-३४३ से ३५६ तक प्रकाशित

हिन्दी काव्यालङ्कार सूत्र- वामन, (संपा०), डॉ० नगेन्द्र आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली-६, सन्- १९५४

चन्द्रालोक- पीयुषवर्ष जयदेव, चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, १९३७

जैनाचार्यों का अलङ्कारशास्त्र में योगदान- डॉ० कमलेश कुमार जैन, (संपा०), पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी-५, वि० स०-२०४१

हिन्दी ध्वन्यालोक- आनन्द वर्धन, (संपा०), गौतम बुक डिपो नई सड़क, नई दिल्ली द्वितीय संस्करण- १९७२

नाट्यशास्त्र- भरत मुनि, (संपा०), बटुक नाथ शर्मा, बलदेव उपा०, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९२९

हिन्दी नाट्यशास्त्र- भरत मुनि, (संपा०), बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९७२

वाग्भटालङ्कार- वाग्भट प्रथम, (संपा०), डॉ० सत्य ब्रत सिंह, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, १९५७

सरस्वती कण्ठाभरण भोज- डॉ० कामेश्वर नाथ मिश्र, चौखम्भा ओरियेन्टालिया, वाराणसी, १९७४

अभिनव भारती- प्रथम तथा द्वितीय भाग गायकवाड़, ओरियन्टल सीरीज, बड़ौदा

ऋग्वेद संहिता– (संपा०), पं० श्रीपाद दामोदर सातवेलकर, बसन्त सातवेलकर, स्वाध्याय मण्डल पारण्डी, बलसाड़

कवि रहस्यम– हलायुध निर्णय सागर प्रेस बम्बई

अष्टाध्यायी– पाणिनि मुनि, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी १९६५

काव्यप्रकाश– आचार्य मम्मट, डॉ० सत्यव्रत सिंह, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी

काव्यालङ्कार– आचार्य भामह, राम देव शुक्ल, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी

भावप्रकाशन– शारदातनय, गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज, गुजरात

कुमारसम्भव– कालिदास, श्री प्रद्युम्न पाण्डेय, चौखम्भा, वाराणसी

श्री जैन सम्भवाख्यम्– जयशेखरसूरि, श्री आर्यरचित पुस्तकोद्धार संस्था, जामनगर सं०–२०००

जैनकुमारसम्भव महाकाव्यम्– श्री जय शेखरसूरि, अुवादक पं० हीरालाल हंस राज भीम सिंह माणेक, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १९००

जैन संस्कृत महाकाव्य– डॉ० सत्यव्रत विश्व भारती, प्रकाशन पन्द्रहवीं, सोलहवीं, सत्तरहवीं शताब्दी में रचित

संस्कृत काव्य के विकाश में जैन कवियों का योगदान- नेम चन्द्र शास्त्री भारतीय ज्ञान पीठ ६२०/२१ नेता जी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

संस्कृत कवि दर्शन- भोला शंकर व्यास, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, १९१७

अभिज्ञान शाकुन्तलम- कालिदास, डॉ० यदुनन्दन मिश्र, चौखम्भा वाराणसी

ऋषभदेव एक परिशीलन- देवेन्द्र मुनि शास्त्री, श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय शास्त्री सर्कल उदय पुर राजस्थान

भरत और भारतीय नाट्य कला- डॉ० सुरेन्द्र नाथ दीक्षित, राजकमल प्रा० लिमिटेड फैजबाजार, दिल्ली-६

संस्कृत साहित्य का इतिहास- बलदेव उपाध्याय, शारदानिकेतन ५ वी० कस्तूरबा नगर सिगरा, वाराणसी

अरस्तु का काव्यशास्त्र- डॉ० नगेन्द्र, हिन्दी अनुसंधान परिषद्, दिल्ली वि०वि०, दिल्ली, वि० सं०-२०१४

रघुवंशम- कालिदास, डॉ० श्रीकृष्ण मणि त्रिपाठी, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी

श्रीमद्वाल्मीकि रामायणम्- महर्षि वाल्मीकि प्रणीत, (संपा०), पं० शिव राम शर्मा वशिष्ठ चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी

कालिदास से साक्षात्कार- डॉ० विद्यानिवास मिश्र,

साहित्य दर्पण- श्री विश्वनाथ कविराज, विद्यावाचस्पति साहित्याचार्य, श्री शालिग्राम शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलोरोड, जवाहर नगर, दिल्ली-११०००७ १९७७